THE REAL UNIVERSE
सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

PART - 3

JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

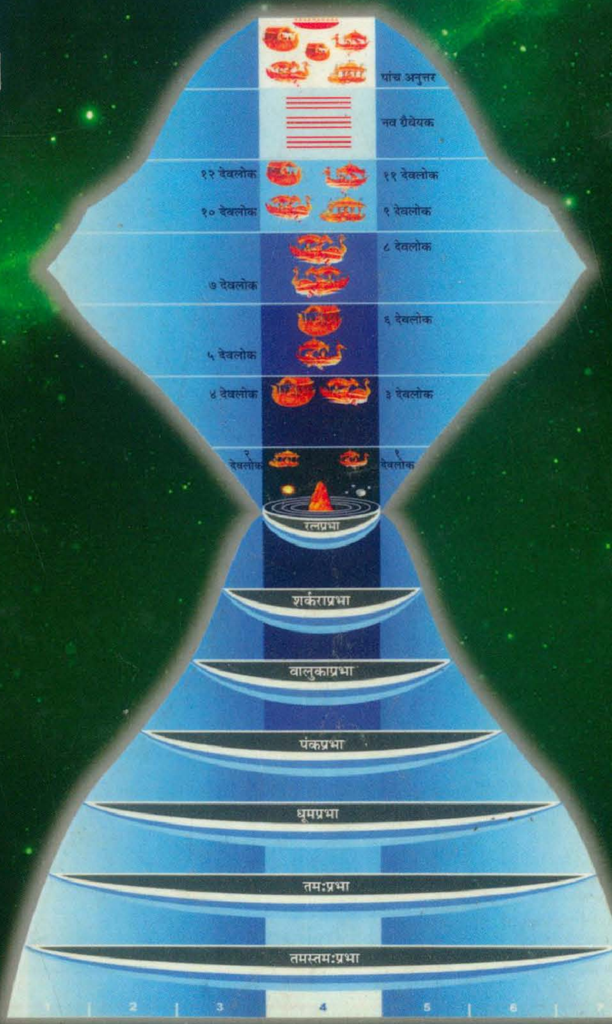

✾ पावन प्रेरणा ✾

प. पू. दीक्षा दानेश्वरी आ. श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा.

प. पू. प्रवचन प्रभावक आ. श्री रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म.सा.

- जो जैनधर्म का अद्वितीय ज्ञान बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सार और असार का भेद बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो हेय और उपादेय का विवेक कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो देह और आत्मा का भेदज्ञान कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जीवन को उच्च गति की तरफ प्रेरे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जीवन को उज्जवल करे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जीवन जीने की कला सिखाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जीव को अहिंसामय बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो इस लोक में समाधि दिलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो परलोक में सद्गति दिलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो परंपरा से परमगति दिलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो आत्मा को कल्याण के तरफ ले जाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जीव को दुर्गति में जाते अटकाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जीवन को आराधनामय बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मृत्यु को महोत्सव बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो आत्मगुणों के निरुपम निधान सम उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो रसलांपट्य को वश कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो कषाय रूपी किचड को सुका दे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अत्यंत विशुद्ध बुद्धि कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जगत के लिए एक महान आदर्श है उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो परम श्रद्धा को उत्पन्न कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पूर्व सूरि (आचार्य) भगवंतो से आया हुआ उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पंचम आरे के अंत तक रहेगा उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो प्रतिसमय सुविशुद्ध परिणाम जगाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो शरणागत ऊपर वात्सल्यवान् बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सच्चिदानंद स्वरूप को बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जैनशासन रूपी रथ के लिए सारथी समान उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सद्गुण रूपी गंगा नदी में पानी समान उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मान रूपी पर्वत को भेदने में वज्र समान उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सर्वशास्त्रों के पदार्थ के हार्द को समझाये उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा द्वारा प्ररूपित उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो द्वादशांगीधारक गणधरों द्वारा ग्रंथीत उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो कल्याणकारी-मंगलकारी-संघहितकारी उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो समता-समाधि-सहिष्णुता का साक्षात्कार कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संसार में रहते हुए भी अलिप्त बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो वर्तमान युग में सर्वश्रेष्ठ ज्ञान उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जिनशासन रूप गगनांगन में ध्रुव तारे के समान उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पंचाचार पालन में तत्पर बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जिनशासन प्रति पूर्ण वफादारी बजाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो कुमत रूपी गंधहस्तिओं के लिए सिंह समान उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो उन्मार्ग का उन्मूलन कर सन्मार्ग में स्थिर कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो कर्म रोग से पिडित के लिए भाव वैद्य समान उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो उत्तमोत्तम पंडित मरण दिलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप रत्नत्रयी संपन्न उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो षड्जीवनिकाय के रक्षण में तत्पर बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो भव्यजीवों को सद्धर्म की देशना का पान कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सौम्यता से भव्यजीवों के चित्त का रंजन कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संसार रूप अग्नि में जलते जीवों के लिए बरसात समान उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो कल्याण रूपी लता के लिए क्यारी (नहेर) के समान उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अपूर्व गुणों के अर्जन में तत्पर बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान

- जो अनेक प्रकार से वृत्तिसंक्षेपादि अभिग्रहों को धारण कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो १० प्रकार के यतिधर्म का पालन कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो धर्मध्यानादि शुभ भावों में सदा रक्त बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो चंद्र के समान सोलह कलाओं से खीला हुआ उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो ग्रहण-आसेवन रूप दो शिक्षाओं को सिखाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जीव को प्रतिदिन उत्तरोत्तर संवेगवान् बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पांच इन्द्रियों को दमन करने में तत्पर बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो हर श्वास में जिनाज्ञा का भान (ज्ञान) कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो ७० प्रकार से चरणसित्तरी के भेद-प्रभेद बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो ७० प्रकार से करणसित्तरी के भेद-प्रभेद बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो गुणिजनों को अत्यंत वल्लभ - प्रिय उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो इस अवनीतल का अलंकार, शासन का शणगार उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पृथ्वी पर वायु के जैसे विचरण कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो १८००० शीलांगरथ को वहन कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जिनशासन रूप सरोवर के लिए राजहंस समान उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संपूर्ण सावद्य व्यापारो का त्याग कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो गुणों के समुह का एक मात्र निवास स्थल उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अकुशल मन-वचन-काया की प्रवृत्ति को रोके उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सर्वज्ञ तीर्थंकरो के सिद्धांतों का प्रचारक उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो १२ प्रकार की मैत्र्यादि भावनाओं का चिंतन कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जिनेश्वरों की आज्ञा का मर्म बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो नित्य पंचविध स्वाध्याय में निमग्न बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सम्यक् रूप से जिनमत की प्ररूपणा करे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संसार के ममत्व का त्याग कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो हृदय में अपार सुख दिलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान

- जो हजारों लाखों श्रावकों को प्रभु भक्ति में लीन करे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सारणा-वारणादि कराने में कुशल बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो कल्याणमित्र की मैत्री कराने में अग्रेसर उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मान-अपमान में समवृत्ति धारक बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो स्व-पर शास्त्राब्धि पारंगत बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सर्व विषयों में एक स्थिर लक्षवाला बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो स्वीकृत जवाबदारी को वहन करने के लिए वृषभ बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो तत्त्वों को समझाने के लिए बुद्धि निधानबनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संघ और शासन प्रति वात्सल्यवान् बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संयम साम्राज्य के सिंहासन पर बिठाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सर्व सावद्य के विसर्जन में उधत बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पृथ्वी के जैसे जीव को भी सर्वंसहा बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो हित-मित-मधुर और स्पष्टभाषी बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो २२ परिषहों को सहने में तत्पर बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो १४ राजलोक के समस्त जीवों को अभय दिलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो करुणा-उपेक्षा-मैत्र्यादि से दिगंत को पूराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो नम्रता की मूरती और समता की सूरती बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो त्याग से भी विशिष्ट वैराग्यवान् बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संघ एकता के प्रखर हिमायती बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मनोजय प्राप्त कर आभ्यंतर तप कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो इन्द्रियजय प्राप्त कर बाह्य तप कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मोह रूप अंधकार को दुर करे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो परपरिणति रूप रमणता का त्याग कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो शुद्ध आनंद के अद्वितीय भोगी बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संघ रूप सरोवर में सुगंधमय स्वर्णकमल उसका नाम तत्त्वज्ञान

- जो सुभाषितों को स्वजीवन में चरितार्थ कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो क्षमा-करुणा-प्रेम-वात्सल्यता का दरिया बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो चंद्र के समान शीतलता प्रगटाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो भारंड पक्षी के जैसे अप्रमत्तता लाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सागर के समान गंभीरता धारण कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सूर्य के समान तेजस्वीता लाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो शास्त्रकारों के वचनो को बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मोक्षमार्ग में सार्थवाह बने उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संसारवास से निरंतर विरक्त बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मैत्री भक्ति और शुद्धि का त्रिवेणी संगम कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो देव-गुरू के गौरव को गगनव्यापी बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो बाह्याभ्यंतर अगणित गुणों का स्वामी बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अज्ञानता के अंधकार को मिटाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो शांती के साम्राज्य का सम्राट बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो शुद्ध चैतन्यभाव में सदा रमण कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो १४ प्रकार की आभ्यंतर ग्रंथीओं को तोडाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो १० प्रकार की सामाचारी का पालन कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो ४२ दोष रहित निर्दोष गोचरी ग्रहण कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो ९ कोटि से शुद्ध आहार ग्रहण कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो इन्द्रिय रूपी अश्वों को वश कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो ९ प्रकार की ब्रह्मचर्य की वाडों को धारण कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो देवतत्त्व एवं गुरुतत्त्व की अनुमोदना कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो विनयधर्म द्वारा परमप्रभुता को प्राप्त कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सम्यक्त्वादि गुणों को कट्टरता से पलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पुण्य-प्रज्ञा-पवित्रतादि वैभव का स्वामी बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो परम-शांती का अनुपम स्थान धराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मूर्तिपूजा के लिए आस्था जगाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सूत्र एवं अर्थ का पारगामी बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जैन संस्कृति और जैनधर्म की गौरवगाथा उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो लोकाग्रगत सिद्ध भगवंतों का ध्यान धराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो परोपकारी अरिहंतों के अतिशयों को बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सम्यग्दर्शन निर्मल बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो नम्रता-निखालसता निराडंबरता जीवन में लाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सम्यग्ज्ञान की गुणवत्ता को बढ़ाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सम्यक्चारित्र की चुस्तता को जीवन में लाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सम्यक् तपोवन में विचरण कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जिनशासन का अनुपम अडग सेनानी उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अखंड ऐसे आत्मतत्त्व का अनुलक्षी बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो देशविरतिधर-सर्वविरतिधर बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सावद्य निवृत्ति एवं निरवद्य प्रवृत्ति का स्वामी बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो नश्वरता का नाश कर शाश्वतधर्म का साद सुनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो शिबिरों के माध्यम से हजारों-लाखों को सन्मार्ग में लाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अर्हद् ज्ञान के अंतरंग रहस्यों का ज्ञाता बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सर्वज्ञ शासन के मर्म को समझाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जन्म-जरा-मरण को दुःख रूप समझाकर संयम दिलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सर्व जीवों प्रति करूणावान बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो इच्छित फल को देने के लिए कल्पवृक्ष समान उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो स्वात्मरक्षक-संप्रदायरक्षक-शासनरक्षक बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो परहित कार्यों में ही एक मात्र आसक्त बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो निर्दोष-निर्मल-निष्पापी प्रवृत्ति का स्वामी बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान

॥ ऐँ नमः ॥ ॥ नमोऽस्तु तस्मै तव शासनाय ॥

॥ श्री तपागच्छाचार्य श्री प्रेम-भुवनभानु-जयघोष-जितेन्द्र-गुणरत्न-रश्मिरत्न-हीररत्नविजय सद्गुरूभ्यो नमः ॥

ग्रन्थ की विशेषताएँ

- ८५० से अधिक पृष्ठों में विस्तारित.....
- पांच विभागों में विभक्त एवं आठ द्वारों से सुशोभित हिन्दी आवृत्ति....
- जैनधर्म से संबंधित भूगोल-खगोलादि का सचित्र वर्णन....
- २०० लेखों के ज्ञानार्जन में सहायक ४०० से अधिक थ्रीडी बहुरंगी चित्रों का विशाल संग्रह........
- ३०० से अधिक आगम - प्रकरण ग्रंथों पर आधारित...
- १५० पृष्ठों में विस्तारित 'जानने जैसी भूमिका' रूप "परिशिष्ट "....
- १०० से अधिक प्राचीन चित्रों की प्रतिकृतियों का अनोखा संकलन....
- तारातंबोल जैसी प्राप्य-अप्राप्य नगरियों का उल्लेख....
- प्राचीन-अर्वाचीन ग्रन्थकारों द्वारा लिखित चौदह राजलोक संबंधित पद्यात्मक भाषा में स्तुति-स्तवन-सज्झाय तथा पूजा की ढालों का अलौकिक "कृतिसंग्रह"...

सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

R-3630

PART - 3

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE

सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY (सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE
सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

PART - 3

JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

दिव्याशीर्वाद

सिद्धांतमहोदधि
आ. श्री प्रेमसूरीश्वरजी म.
युवाशिबिर प्रणेता
आ. श्री भुवनभानुसूरिजी म.
मेवाडदेशोद्धारक
आ. श्री जितेन्द्रसूरिजी म.

शुभाज्ञा-आशिष

सुविशाल गच्छाधिपति
गीतार्थमूर्धन्य
पूज्यपाद आचार्यदेव श्री
जयघोषसूरिजी महाराजा

पावन प्रेरणा

प.पू. दीक्षादानेश्वरी
आ.श्री गुणरत्नसूरिजी म.सा.
प.पू. प्रवचन प्रभावक
आ.श्री रश्मिरत्नसूरिजी म.सा.
प.पू.मु. श्री हीररत्न वि.म.सा.

पदार्थ संशोधक

प.पू. वर्धमान तपोनिधि
आ.श्री भुवनभानुसूरिजी
म.सा. के शिष्यरत्न
प.पू. पं.श्री पद्मसेन वि.म.सा.

पदार्थ संशोधक

प.पू. शासन प्रभावक
आ. श्री रत्नाकरसूरिजी
म.सा. के शिष्यरत्न
प.पू.पं.
श्री रत्नज्योत वि.म.सा.

संकलक
संयोजक-संपादक

मुनि
चारित्ररत्नविजय...

ग्रंथ विषय

जैनधर्म संबंधी
खगोल-भूगोलादि की
विस्तृत सचित्र जानकारी

प्रूफ संशोधक

प.पू.पं.श्री
धर्मशेखरविजयजी म.सा.
प्रो. रमेशभाई बी. शाह (अम.)
कमलेशभाई पुरोहित (सिरोही)
अभिषेकभाई वकील (इंदौर)

ग्रंथ डिझाईनर

ॐकार ग्राफिक्स
पियुषभाई के. शाह
अहमदाबाद- (गुज.)

टाईपिंग एवं मुद्रण

नवरंग प्रिन्टर्स
अपूर्वभाई शाह
अहमदाबाद - (गुज.)

फोटोग्राफी पिक्चर डिझाईनर

जैनिझम ओनलाईन
श्री हितेशभाई शाह
(नवसारी)

चित्रों के संकलन के लिए मुख्य आधारस्तंभ

गीतार्थ गंगा
जैन मर्चन्ट - पालडी
अहमदाबाद

आवृत्ति - प्रतिकृति

आवृत्ति - प्रथम
प्रतिकृति - २०००

प्रकाशक

जिनगुण आराधक ट्रस्ट
राजदा बिल्डीग, ओ.नं. ९/११,
दूसरा माला,
जूनी हनुमान क्रोस लेन,
काल्बादेवी रोड, मुंबई - ३

प्रकाशन वर्ष

वी.सं.२५४१
वि.सं. २०७१
ई.सं. २०१५
विमोचन ता. ३१-५-२०१५
विमोचन ति. जेठ सुद १३

आधार ग्रंथ - साक्षीपाठों के मुख्य आधारस्तंभ

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
आ. श्री कैलाशसागरसूरि
ज्ञानभंडार - कोबा

ग्रंथविभाग एवं पृष्ठ

(१) 67+१३३=२००
(२) 25+१६७=१९२
(३) 27+१६७=१९४
(४) 23+१७३=१९६
(५) 14+५२=६६

मूल्य

पांच भाग रूप
पूरे सेट का
२५००/–

प्राप्ति स्थान

अहमदाबाद
शाह बाबुलालजी सरेमलजी
"सिद्धाचल" सेन्ट एन्ड स्कूल के सामने,
हीराजैन सोसा.,साबरमती, अहमदाबाद - ५
(M) 09426585904
(O) 079-22132543, (R) 079-27505720

सुरत
अशोकभाई एम. नागोत्रा
५०१, समवसरण ऐपार्टमेन्ट
लाल बंगला के सामने,अठवालाईन्स, सुरत
(M) 09825132455
(M) 09428870903,(R) 0261-2669933

पालीताणा
सुघोषा कार्यालय
सोमचंद डी. शाह
तलेटी रोड,पालीताणा
मुकेशभाई
(M) 09898332245

शंखेश्वर
वंदना बुक स्टोर्स
यात्रिक भवन के पास, शंखेश्वर तीर्थ,
गुजरात
(M) 09374169618
(M) 09429297740,(M) 09904786962

मुंबई
मांगीलालजी पारेख
NAKODA CREATION
Shop no. 1, Kshirsagar apt,opp.
Maltibai Hospital, St.John School Road,
THANE (west)
(M)09773329503, (M)09324286481
(O)022-25309655

पुना
मांगीलालजी सोलंकी
श्री सिद्धाचल सोसायटी,
१८-बी, गुलटेकडी फ्लेट, एफ-१२,
पुणे -411037
(M) 09822271372, (R) 020-24265006

हुबली
AMBAR SAKARIYA
156, Kundan Kunj,Arihant Nagar,
Kushgal Road, Keshwapur,
HUBLI-580023
(M) 09886217673

चेन्नाई
पारस डी. जैन
c/o, KOLORS KREATIONS
Shringar Plaza, # 359, Mint Street,
Sowcarpet, Opp. Vardhan Complex,
CHENNAI - 600079
(M) 09840208075,(M) 09884553007
(O) 044-23468276

बैंगलोर
एम. चंपालाल
No.531/532, O.T.C.Road,1st floor,
Near Balpet Circle,
BANGALORE- 560002
(M) 09342727606, (M) 09844760139

दिल्ली
मोतीलाल बनारसीदास
४१, U.A., बंगला रोड,
दिल्ली - ११०००७
Email-mlbd@mlbd.com
रवि जैन
(M) 08800666090, (O) 011-23851985

कायमी संपर्क सूत्र
अरुणभाई - साबरमती, अहमदाबाद
09427522101, 09408252201
मोहितभाई - गीरधरनगर,अहमदाबाद
09426707301

लाभार्थी परिवार

श्री जिनगुण
आराधक ट्रस्ट
मुंबई

स्व. श्री छोटालाल रीखवचंद
दोशी के आत्मश्रेयार्थे
ह. रीखवचंद त्रीभोवनदास
दोशी परिवार

श्रीमती मोहिनीदेवी
एस. देवराजजी जैन
घाणेराव - (राज.)
चैन्नई, बेंगलोर

-: विशेष सूचना :-

यह ग्रंथ ज्ञानद्रव्य में से छपा हुआ होने से गृहस्थो द्वारा मूल्य दिये बिना मालिकी करनी नहीं ।

प्रकाशकीय निवेदनम्

जैनधर्म वो अनादिकाल से चला आ रहा है एवं अनादिकाल तक यह अनंतानंत आत्माओ को मोक्ष मुक्ति में जाने के लिए निमित्त बन रहा है तथा जैनशास्त्रों (जिनागमों) में विश्व संबंधि संपूर्ण विश्व व्यवस्था (ब्रह्मांड का स्वरूप) असंख्य द्वीप-समुद्रो से व्याप्त मध्यलोक, खगोलीय (आकाश संबंधी) सूर्य-चंद्र-ग्रह-नक्षत्र एवं तारा इत्यादि, ऊर्ध्वलोक के रूप में रहे हुए १२ देवलोक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तरादि, अधोलोक के रूप में ७ नरको की व्यवस्था, भवनपति-व्यंतर-वाणव्यंतरादि देवो की बाते और प्रकीर्णक रूप में आये हुए जैनशासन के छुटे छुटे पदार्थो की सूक्ष्म एवं स्थूलादि सर्व ठोस हकिकतों को बताने में आई है जो संपूर्ण वैज्ञानिक एवं तर्कबद्ध है।

इस ब्रह्मांड का और उसमें रहे हुए पदार्थो का जो सच्चा स्वरूप बताते है उसे जैनदर्शन में "द्रव्यानुयोग" कहा जाता है। उन द्रव्यों के गुणों से होती हुई गिनती को "गणितानुयोग" कहा जाता है। इन द्रव्यो को परखकर मोक्ष प्राप्त करने का जो भव्य पुरुषार्थ किया जाता है उसे "चरणकरणानुयोग" कहा जाता है एवं जो उस चरणकरणानुयोग को साधकर मोक्ष में चले जाते है उस विशिष्ट आत्मसाधकों की कथा को "धर्मकथानुयोग" कहा जाता है।

प.पू. त्रिशताधिक दीक्षा दानेश्वरी आचार्य श्री विजय गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा. तथा प.पू. प्रवचन प्रभावक आचार्य श्री विजय रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म.सा की पावन प्रेरणा को झिलकर (ग्रहणकर) प.पू. मुनिराज श्री हीरत्नविजयजी म.सा. के शिष्यरत्न मुनिराज श्री चारित्ररत्नविजयजी म.सा.ने **Jain Cosmology** (सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) नामक ग्रंथ का सफल संपादन कर जिनशासन के चरणों में अब उनके द्वारा दुसरे कदम स्वरूप **THE REAL UNIVERSE** (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) नाम का ग्रंथ जो तैयार किया गया है वह जैनशासन के चरणों में एक अद्भूत ग्रंथ की भेंट होगी... जो वस्तुतः बहुत ही उपयोगी एवं अनुमोदनीय है। ऐसे अनेकानेक लोकभोग्य ग्रंथो का सर्जन मुनिराजश्री के हाथों होते रहे....ऐसी भावभरी विनंती....

THE REAL UNIVERSE (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ की प्रथम आवृत्ति का चतुर्विध श्री संघ के चरणों मे प्रकाशन करते हम आनंद की अनुभूति कर रहे है... तथा आधुनिक विज्ञान कि कल्पित बातों में अंधश्रद्धा धारण करनेवाले सर्वजन इस ग्रंथ को पढ़कर ब्रह्मांड (विश्व) के सच्चे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर उसका उपयोग स्व - पर की आत्मा के उद्धार के लिए करे...

ऐसी अंतर की भावना के साथ ही....

लि. जिनगुण आराधक ट्रस्ट

सदा न कोयल बोलती, सदा न खिलते फूल; सद्गुरुवर मिलते तभी, जब पुण्य हो अनुकूल... ।।

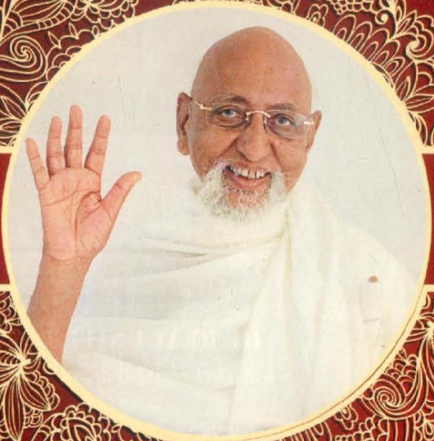

Devotement

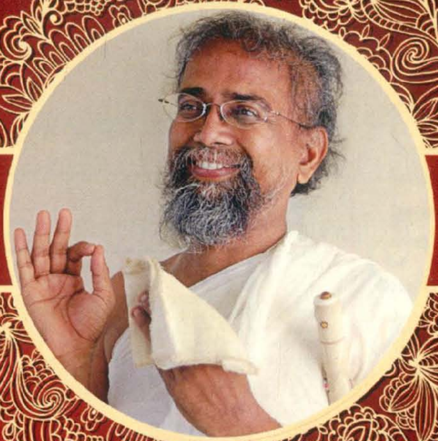

सादर समर्पणम्

युवाजागृति प्रेरक, भवोदधितारक, सार्धत्रिशताधिक दीक्षा दानेश्वरी
प.पू.आचार्य भगवंत
श्रीमद् विजय गुणरत्नसूरीश्वरजी महाराजा

प्रवचन प्रभावक, षड्दर्शन निष्णात, साध्वीगणाधिपति
प.पू. आचार्य भगवंत
श्रीमद् विजय रश्मिरत्नसूरीश्वरजी महाराजा

Oh Gurudeva !
I know that Im not perfect,
I know I have Questioned my faith,
I know sometimes I loose my temper,
but thank you for loving me
unconditionally and giving me
another day to start
over again...

Dear Gurudeva !
You hear more than we say,
Answer more than we ask,
& Give more than we imagine...
Really Gurudeva...
You are Great...

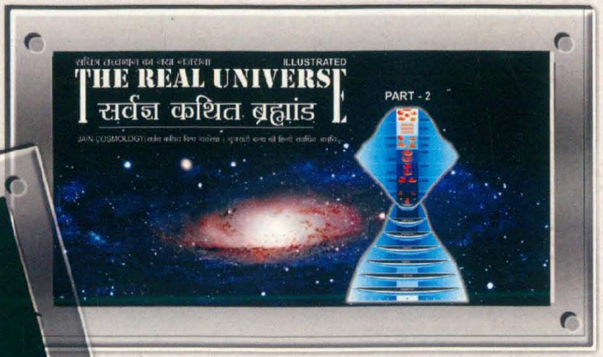

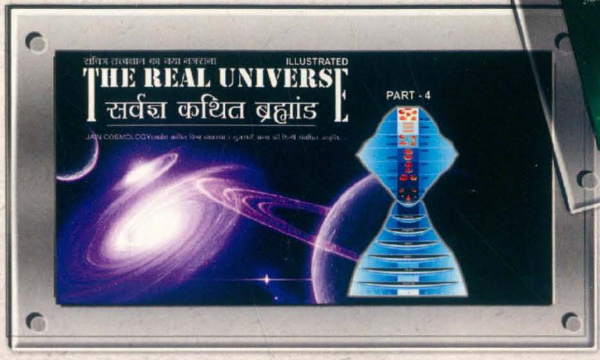

ग्रंथ विभागीकरण एवं परिचय

यह ग्रंथरत्न एक सामान्य पुस्तक के रूप में ही प्रकाशित नहीं हो रहा है... परंतु एक प्रकरण ग्रंथ - अभ्यासिक ग्रंथ के स्वरूप में प्रकाशित हो रहा है जिसमें सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवंतों के द्वारा बताया गया विश्व क्या है ? उसकी व्यवस्था कैसी है ? तथा ऊर्ध्व-अधो-मध्य (तीर्छा) लोक में क्या क्या रहा हुआ है ? और तो और जैनशासन की जनरल फिलोसोफी एवं मान्यताएँ तथा जैनशासन के विशिष्ट पदार्थ क्या है ? इत्यादि बहुत सारी जानकारी से परिपूर्ण यह एक श्रेष्ठ ग्रंथ है.... इसलिये बाह्य दृष्टि से देखने जाये तो जैसा आकर्षण VIP अथवा 3D के ग्रंथादि में होता है वैसा आकर्षण इस ग्रंथ में देखने को शायद नहीं भी मिलेगा वह स्वाभाविक है फिर भी एक प्रयत्न इस तरफ किया है अतः अभ्यंतर दृष्टि से देखने जाये तो यह ग्रंथ वाचकवर्ग (अभ्यासुवर्ग) के लिये यह अनेकानेक प्रकारो से उपयोगी होगा... बस ! इसी अभ्यर्थना के साथ......

संपादक - मुनि चारित्ररत्नविजय....

THE REAL UNIVERSE (PART - 1)

(द्वार - १) लोक विभाग

(1) श्री २४ तीर्थंकर भगवान (2) श्री पंच परमेष्ठी के१०८ गुण..... (3) क्या ईश्वर जगत का निर्माणकर्ता हो सकता है ?.... (4) जैनधर्म वह विश्वधर्म है..... (5) १४ राजलोक रूप विश्व-व्यवस्था..... (6) १४ राजलोक का यथार्थ स्वरूप..... (7) १४ राजलोक तथा तीन लोक के मध्यस्थान..... (8) ८ रुचक प्रदेश अर्थात् समभूतला..... (9) षड्द्रव्यात्मक लोक (विश्व)..... (10) धर्मास्तिकाय..... (11) अधर्मास्तिकाय..... (12) आकाशास्तिकाय (लोकाकाश)..... (13) आकाशास्तिकाय (अलोकाकाश)..... (14) काल द्रव्य..... (15) पुद्गल द्रव्य..... (16) जीव द्रव्य..... (17) षड्द्रव्यों के २३ द्वार.....★ लोक स्वरूप चिन्तन से मानसिक शान्ति....

(पेज नं. १से ३५)

(द्वार - २) मध्यलोक

(18) जैन गणितानुसार एक योजन के माईल कितने होते है ?..... (19) मध्यलोक का स्वरूप..... (20) मध्यलोक का मध्यद्वीप = जंबूद्वीप..... (21) जंबूद्वीप की जगती = किल्ला..... (22) भरत क्षेत्र..... (23) भरत क्षेत्र के मध्यखंड की विशेष जानकारी..... (24) ऋषभकूट पर्वत की विशेष जानकारी..... (25) भरत क्षेत्र में समुद्र कहाँ से आये...? (26) दीर्घ वैताढ्यपर्वत..... (27) जंबूद्वीप के ७ महाक्षेत्र..... (28) जंबूद्वीप के ६ वर्षधर पर्वत..... जंबूद्वीप के ६ महाद्रह..... (29) जंबूद्वीप अंतर्गत लघुहिमवंत पर्वत का वर्णन..... (30) लघुहिमवंत पर्वत पर पद्मद्रह सरोवर..... (31) जंबूद्वीप अंतर्गत हिमवंत क्षेत्र..... (32) जंबूद्वीप अंतर्गत महाहिमवंत पर्वत..... (33) जंबूद्वीप अंतर्गत हरिवर्ष क्षेत्र..... (34) जंबूद्वीप अंतर्गत निषध पर्वत (पार्ट - २) ..... (35) महाविदेह क्षेत्र..... (36) महाविदेह क्षेत्र..... (37) १ लाख योजन प्रमाण महाविदेह क्षेत्र कैसे होता है ?... (38) महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत १६ वक्षस्कार पर्वत..... (39) महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत १२ अन्तर नदियाँ.....(40) महाविदेह क्षेत्र में आये हुए वनमुख का दृश्य..... (41) महाविदेह क्षेत्र में रहे हुए ४ गजदंत पर्वत..... (42) महाविदेह क्षेत्र में रहे हुए ४ गजदंत पर्वत..... (43) महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत उत्तरकुरु क्षेत्र..... (44) उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत यमक-समक पर्वत..... (45) उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत ५ लघुद्रह..... (46) उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत १०० कंचनगिरि पर्वत..... (47) उत्तरकुरु क्षेत्र में आया हुआ जंबूवृक्ष (पार्ट - १) ..... (48) उत्तरकुरु क्षेत्र में आया हुआ जंबूवृक्ष (पार्ट - २) ..... (49) महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत देवकुरु क्षेत्र..... (50) जंबूद्वीप में रहा हुआ मेरुपर्वत..... (51) मेरुपर्वत के चारों तरफ रहा हुआ भद्रशालवन..... (52) मेरुपर्वत पर आया हुआ नंदनवन (पार्ट - १)..... (53) मेरुपर्वत पर आया हुआ नंदनवन (पार्ट - २) ..... (54) मेरुपर्वत पर आया हुआ सौमनसवन..... (55) मेरुपर्वत पर आया हुआ पाण्डकवन(पार्ट - १) ..... (56) मेरूपर्वत पर आया हुआ पाण्डकवन(पार्ट - २) ..... (57) मेरुपर्वत पर आई हुई चूलिका..... (58) जंबूद्वीप अंतर्गत नीलवंत पर्वत..... (59) जंबूद्वीप अंतर्गत रम्यक् क्षेत्र और रुक्मि पर्वत.... (60) जंबूद्वीप अंतर्गत हिरण्यवंत क्षेत्र..... (61) जंबूद्वीप अंतर्गत शिखरी पर्वत..... (62) जंबूद्वीप का ऐरावत क्षेत्र..... (63) जंबूद्वीप में रहे हुए वृत्त (गोल) पदार्थों का यंत्र.....★ THE REAL UNIVERSE ग्रंथ के आधार ग्रंथों की सूची (द्वार १ से ५)

(पेज नं. ३६ से १३३)

THE REAL UNIVERSE (PART - 2)

(64) इस अवसर्पिणी काल के १२ चक्रवर्ती (65) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - १) (66) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - २) (67) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - ३) (68) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ पंचेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - ४) (69) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ पंचेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - ५) (70) चक्रवर्ती के नवनिधान = नवनिधि..... (पार्ट -१) (71) चक्रवर्ती के नवनिधान = नवनिधि..... (पार्ट -२) (72) वासुदेव के ७ रत्न..... (73) कोटिशिला संबंधी विशेष जानकारी..... (74) ६३ शलाकापुरुष और अन्य महापुरुषो का क्रमादि..... (75) श्री प्रभुवीर के ११ गणधरों का जीवन परिचय..... (76) लवणसमुद्र..... (77) लवणसमुद्र अंतर्गत गौतमद्वीप..... (78) लवणसमुद्र अंतर्गत ५६ अंतर्द्वीप..... (79) लवणसमुद्र के तीन मागधादि तीर्थ..... (80) गोतीर्थ और जलवृद्धि का दो तरफ से दृश्य..... (81) जैन दृष्टि से ज्वार-भाटा का कारण..... (पार्ट - १) (82) जैन दृष्टि से ज्वार-भाटा का कारण..... (पार्ट - २) (83) धातकीखंड..... (84) कालोदधि समुद्र..... (85) पुष्करवरार्ध द्वीप..... (86) मानुषोत्तर पर्वत..... (87) अढाईद्वीप..... (88) अढाईद्वीप में रहे हुए शाश्वत पदार्थों का यंत्र..... (पार्ट - १) (89) अढाईद्वीप में रहे हुए शाश्वत पदार्थों का यंत्र..... (पार्ट - २) (90) अढाईद्वीप में शाश्वत चैत्य-प्रतिमाओं का वर्णन..... (91) तीनों लोक में रहे हुए शाश्वत प्रासादादि का यंत्र .....(पार्ट -१) (92) तीनों लोक में रहे हुए शाश्वत प्रासादादि का यंत्र .....(पार्ट -२) (93) सात द्वीप-सात समुद्र की बातें क्या सच है ?..... (94) नंदीश्वरद्वीप..... (95) श्री नंदीश्वरद्वीप विषयक किंचित् वर्णन..... (96) नंदीश्वरद्वीप में आया हुआ अंजनगिरि.....

(97) नंदीश्वरद्वीप के दधिमुख पर्वत और रतिकर पर्वत..... (98) कुंडलद्वीप की विशेष जानकारी..... (99) रुचकद्वीप..... (100) तिर्च्छालोकवर्ती क्रमशः द्वीप-समुद्र स्थापना..... (101) समस्त द्वीप-समुद्रों का आकार तथा प्रमाण..... (102) प्रत्येक समुद्रवर्ती जल का स्वाद और मत्स्यादि का प्रमाण..... (103) तिर्च्छालोक में रहे हुए द्वीप-समुद्रों का प्रमाणादि..... (104) तमस्काय का स्वरूप..... (105) ज्योतिष चक्र का स्वरूप..... (106) ज्योतिष चक्र के विमानों का आकारादि..... (107) सूर्य-चंद्रादिक के आभियोगिक विमान-वाहक देव..... (108) सूर्य-चंद्र की तीन पर्षदाएँ..... (109) ज्योतिष चक्र के चन्द्रादि की अग्रमहिषियाँ (पट्टराणियाँ)..... (110) ज्योतिष चक्र का प्रभाव मनुष्यों पर..... (111) सूर्यग्रहण-चंद्रग्रहणादि का स्वरूप क्या है ?.... (112) मनुष्य क्षेत्र के बाहर रहे हुए सूर्य-चन्द्रादि..... (113) मनुष्य क्षेत्र में सूर्य-चन्द्र की ६६-६६ पंक्तियाँ..... (114) चर ज्योतिष देवों के द्वारा मनुष्यलोक में काल का विभाग..... (115) जंबूद्वीप के सूर्य तथा चंद्र के मंडलादि का प्रमाण-अंतर इत्यादि.....★ जीव और पुद्गलों की रंगभूमी....

(द्वार - ३) अधोलोक

(116) रत्नप्रभा पृथ्वी अर्थात् प्रथम नरक..... (117) सातों नरकों में रहें हुए प्रतरों के नामादि..... (118) ८ व्यंतर देव..... (119) ८ व्यंतर देवों की अग्रमहिषी..... 120) व्यंतर देवों की ८७ जाति..... (121) ८ प्रकार के वाणव्यंतर देव..... (122) १० प्रकार के भवनपति देव..... (123) भवनपति निकाय के १० भेद.....(124) चमरेन्द्र महाराजा की चमरचंचा और उत्पातपर्वत..... (125) चमरेन्द्र कौन ? व कहाँ से आया ?..... (126) चमरेन्द्र का सोधर्मेन्द्र तरफ प्रयाण..... (127) बन्धनादि १० प्रकार की क्षेत्रवेदना... (128) नरक में १० प्रकार की क्षेत्रवेदना..... (129) नरक में परस्पर कृत वेदना..... (130) नरक में परमाधामी कृत वेदना..... (131) १५ प्रकार के परमाधामी देव..... (132) परमाधामी देवों की गति ?..... (133) परमाधामी संबंधी कुछ और जानने जैसा..... (134) द्वितीय शर्कराप्रभा नामक पृथ्वी..... (135) तृतीय वालुकाप्रभा नामक पृथ्वी..... (136) चतुर्थ पंकप्रभा नामक पृथ्वी..... (137) पांचवीं धूमप्रभा नामक पृथ्वी..... (138) छठवीं तमःप्रभा नामक पृथ्वी.....(139) सातवीं तमस्तमःप्रभा नामक पृथ्वी.....(140) पापीयों को सजा भुगतने का स्थान अर्थात् ७ नरक..... (141) कौन - से जीव नरकायुष्य को बान्धते है.... (142) क्या नारकी जीव कभी सुखी हो सकते है ?.....(143) कौन से जीव कौन-सी नरक तक जा सकते है !.....(144) नरक संबंधी कुछ जानने जैसा....

(पेज नं. १ से १६६)

(द्वार - ४) ऊर्ध्वलोक

(145) ऊर्ध्व वैमानिक देवलोक..... (146) वैमानिक देवलोक की व्यवस्था..... (147) १२ वैमानिक देवों के संबंध में कुछ जानने जैसा..... (पार्ट - १) (148) १२ वैमानिक देवों के संबंध में कुछ जानने जैसा..... (पार्ट - २) (149) अष्ट कृष्णराजी.....(150) नव (नौ) लोकांतिक देव..... (151) कल्पोपपन्न देवों के १० प्रकार..... (152) देवलोक के प्रतरों की व्यवस्था किस तरह है ?..... (153) ६२ प्रतर के कुल ६२ इन्द्रक विमान तथा नामादि..... (154) देवों का उत्तरवैक्रिय शरीर..... (155) किल्बिषिक देवों के प्रकार और उनके निवासस्थलादि..... (156) देव किन कारणों से मनुष्यलोक में आते है ?..... (157) किन कारणों से देव मनुष्यलोक में नहीं आते है ?..... (158) देवों की तथाविध भवप्रत्ययिक संपत्ति..... (159) वैमानिक देवलोक के विमानों का संख्या-दर्शक यंत्र..... (160) नव ग्रैवेयक के ९ विमान..... (161) नव ग्रैवेयक तक कौन उत्पन्न हो सकता है ?..... (162) ५ अनुत्तरवासी देव.... .(163) देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र और आकार..... (पार्ट - १) (164) देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र और आकार..... (पार्ट - २) (165) चारों निकाय के देव तीन विभागों में विभक्त है ..... (पार्ट - १) (166) चारों निकाय के देव तीन विभागों में विभक्त है ..... (पार्ट - २) (167) चारों निकायी देवों के १९८ भेद किस प्रकार होते है ?..... ★ उत्पाद - व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्...

(द्वार - ५) प्रकीर्णक

(168) पृथ्वीकायादि ५ स्थावर जीव.....(169) त्रसकाय-विकलेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव..... (170) संसारी जीवों के ५६३ भेद... (मनुष्य-देव-नारकी)..... (171) संसारी जीवों के ५६३ भेद पर कुछ विचारणा..... (172) निगोद के जीवों का स्वरूप..... (173) औदारिकादि ५ शरीर..... (174) ऋजु और वक्रगति का स्वरूप.....(पार्ट - १) (175) ऋजु और वक्रगति का स्वरूप.....(पार्ट - २) (176) सिद्धों का सुख कैसा है ?..... (177) सिद्धशिला एवं सिद्धात्माएँ..... (178) सिद्धात्मा की अवगाहना..... (179) सिद्ध के १५ भेद और अनंतरादि प्रकार..... (180) आहारादि ६ पर्याप्ति..... (181) जीव के छः संस्थान और अजीव के पांच संस्थान..... (182) छः प्रकार के संघयण..... (183) ६ लेश्या का स्वरूप..... (184) आत्मा का विकासक्रम एवं १४ गुणस्थानक..... (पार्ट - १) (185)आत्मा का विकासक्रम एवं १४ गुणस्थानक..... (पार्ट - २) (186) आत्मा का विकासक्रम एवं १४ गुणस्थानक..... (पार्ट - ३) (187) केवली समुद्घात.....

(पार्ट - १) (188) केवली समुद्घात..... (पार्ट - २) (189) तीर्थंकर नामकर्म बंध कारण वीस स्थानक पद..... (190) पुद्‌गल (अजीव) के ५३० भेद..... (191) आठ कर्मों का स्वभाव..... (पार्ट - १) (192) आठ कर्मों का स्वभाव..... (पार्ट - २) (193) अवसर्पिणी काल के ६ आराओं का स्वरूप..... (पार्ट - १)(194) अवसर्पिणी काल के ६ आराओं का स्वरूप.....(पार्ट - २) (195) उत्सर्पिणी काल के ६ आराओं का स्वरूप..... (196) ६ प्रकार के बाह्य तप..... (197) ६ प्रकार के अभ्यंतर तप..... (198) श्री अष्टापदजी महातीर्थ..... (पार्ट - १) (199) श्री अष्टापदजी महातीर्थ..... (पार्ट - २) (200) क्या तुम्हें पता है भूकंप किस कारण से होता है ?.....

★ सुविदितं जगत्स्वभावम्...

(द्वार - ६) प्राचीन चित्रावली

(सैंकड़ों वर्ष प्राचीन हस्तलिखित-ताडपत्रीय ग्रंथो में दिये हुए १४ राजलोक एवं उसके अंतर्गत दुसरे पदार्थों संबंधी १०० से अधिक प्राचीन चित्रों का संग्रह...

(पेज नं. १ से १६७)

THE REAL UNIVERSE (PART - 4)

(द्वार - ७)

(१) जैनधर्म की प्राचीनता के प्रमाण... (२) जैनधर्म की अतिप्राचीनता के प्रमाण... (३) जैन दिगंबर मान्यतानुसार लोक वर्णन... (४) बौद्ध मतानुसार लोक वर्णन.... (५) वैदिक धर्मानुसार लोक वर्णन... (६) भारतवर्ष का नामकरण..... (७) वैज्ञानिकों के मतानुसार आधुनिक विश्व (८) चातुर्द्वीपिक भूगोल परिचय (९) चलिए ! पृथ्वी की जानकारी प्राप्त करते हैं... वैज्ञानिकों के मुख से (१०) अमेरिका की "फ्लेट अर्थ सोसायटी" भी पृथ्वी को सपाट मानती हैं (११) रहस्यमय उत्तरध्रुव... (१२) पृथ्वी गेंद जैसी गोल नहीं है और वह घूमती भी नही हैं उसके १०१ प्रमाण... (१३) ईसाई धर्म भी पृथ्वी को समतल मानता है ... (१४) ईस्लाम दर्शन (धर्म) में भी पृथ्वी स्थिर हैं .... (१५) पृथ्वी के गोल होने के वैज्ञानिकों के पास कोई प्रमाण नही है... (01) प्लेटो व एरिस्टोटल पृथ्वी को समतल मानते थे... (02) आर्यभट्ट पृथ्वी को गोल मानते थे... (03) ब्रह्मगुप्त पृथ्वी को समतल मानते थे... (04) निकोलस कोपरनिकसने पृथ्वी के घूमते रहने का तुक्का लगाया.... (05) कोपरनिकस में इस पुस्तक को प्रकाशित करने की हिम्मत नही थी.... (06) टायको ब्राह पृथ्वी को समतल मानता था... (07) जोहानिस केप्लर था टायको ब्राह के शिष्य... (08) जोहानिस केप्लर बने टायको ब्राह के वारिस... (09) गैलीलियो गैलिली पृथ्वी को घूमती हुई मानते थे ...(10) आँइजक न्युटन ने गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत की शोध की थी... (11) अल्बर्ट आइंस्टाइनने न्युटन की परिकल्पना को गलत सिद्ध किया था... (12) गोलाकार सतह पर प्रकाश सरल रेखा में गति नही करता है... (13) आइंस्टाइन की फ्रेम ड्रेगिंग परिकल्पना... (14) ब्लेक होल की अजीबोगरीब परिकल्पना...(15) आइंस्टाइन के सिद्धांत के समक्ष गुजरात के वैज्ञानिक की चुनौती...(१६) पू. आत्मारामजी महाराज के अंतरोद्‌गार... (१७) जानने जैसी तारातंबोल नगरी... (१८) हिमालय के उस पार... (१९) पल्योपम और सागरोपम का स्वरूप... (२०) पृथ्वी के आकार और स्थिरता संबंधी सुंदर साहित्य वर्णन... (२१) इन विषयों को जानने के लिए ये पढो... (२२) लोक के नामादि ८ निक्षेप.... (२३) **jain cosmology** ग्रंथ के लिए आए हुए अभिप्रायः पत्र.... (२४) पूज्यश्री के द्वारा अध्ययन-उपदेशात्मक एवं आगामी साहित्यों की सूची.... (२५) ग्रंथ प्रशस्ति....

(पेज नं. १ से १७३)

THE REAL UNIVERSE (PART - 5)

(द्वार - ८) ''कृतिसंग्रह''

• प्राचीन-अर्वाचीन ग्रन्थकारों द्वारा लिखित चौदह राजलोक संबंधित पद्यात्मक भाषा में स्तुति-स्तवन-सज्झाय तथा पूजा की ढालों का अलौकिक ''कृतिसंग्रह''...

(पेज नं. १ से ५२)

विशेष सूचना :- THE REAL UNIVERSE (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ में बताये गये खगोल-भूगोल संबंधी १ से २०० तक के लेखों को हिन्दी भाषा में संगृहित कीया गया है। तथा इन लेखों के पदार्थों को जिन जिन शास्त्रसंदर्भ पाठों से युक्त बताना है उन उन स्थानों में छोटे-छोटे अक्षरो में (फोन्ट में) १-२-३-४-५-६-७ इत्यादि करके आंकड़ों में रख दिये गये है और उसके शास्त्रपाठ उसी पेज में नीचे टिप्पन के स्वरूप उन ग्रंथों के नाम एवं श्लोक संख्यादि के साथ बताया गया है।

ऋण मुक्ति नहीं परंतु स्मृति...

- जिसने मुझे अव्यवहारराशी निगोद में से बाहर निकालकर व्यवहाराशी में प्रवेश दिलाया एसे **सिद्ध भगवंतों** को मैं सर्वप्रथम नमस्कार करता हुँ।
- जिन्होने जन्म देकर सुसंस्कारों का सिंचन किया तथा मेरी दीक्षा की भावना को देख अपने मोह को छोड मुझे संयमधर्म के पालन की अनुमति दी, एसे **माताश्री पवनबहेन** एवं **पिताश्री ओटरमलजी** का भी मुझ पर महान् उपकार हैं।
- चरम तीर्थपति, आसन्नोपकारी श्री महावीरस्वामीजी, तथा अनंत लब्धिभंडार **श्री गुरु गौतमस्वामीजी** और पंचम गणधर **श्री सुधर्मास्वामीजी** महाराज के श्रुतवारसा का मैं वारसदार बना।
- सिद्धांत महोदधि **प. पू. आ. श्री प्रेमसूरीश्वरजी म.सा.**, न्यायविशारद **प. पू. आ. श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा.** तथा मेवाडदेशोद्धारक **प. पू. आ. श्री जितेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** रूप तीनो महापुरूषों की निरंतर कृपा-दृष्टि से मैं पावन बना।
- सिद्धांतदिवाकर, सुविशालगच्छाधिपति **प. पू. आ. श्री जयघोषसूरीश्वरजी म.सा.** के प्रसंगोपात प्रेरणा के पावन अमृतांजन से मैं और मेरी प्रज्ञाचक्षु (बुद्धि) आज इस ग्रंथ के संपादन को देखने में समर्थ बनी।
- दीक्षा के दिव्यमंदिर में आत्म भगवान की प्रतिष्ठा करने की अमूल्य प्रेरणा करनेवाले प. पू. दीक्षा दानेश्वरी, युवा जागृति प्रेरक **आ. श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा.** के जिन्होंने मुझ जैसे अज्ञानी को अंगार भरे आलम में से उगारकर, मतलबीयों के मोह से मुक्त कराकर, परमपथ की पगदंडी बताकर मुझे संयम के साम्राज्य के ऊपर बैठने का अवसर प्रदान किया, आज उन्हीं की कृपा से मैं चारित्र रूपी रत्न को धारण कर सका हुँ।
- प्रवचन प्रभावक, षड्दर्शन निष्णात **प. पू. आ. श्री रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म.सा.** के जिनकी अवसरोचित प्रेरणा, प्रोत्साहन और योग्य योगक्षेम के बल से मुझ जैसे पामर भी संयमधर्म के अनेकानेक योगों को पूर्ण करने में परम बने...।
- दीक्षा के प्रथम दिन से ही जिन्होने मुझे ग्रहण तथा आसेवन शिक्षा देकर संयमपालन के योग्य किया तथा अवसरोचित मुझे उस उस काल (समय) में पढ़ा-लिखाकर समर्थ किया... ऐसे बड़े भाई महाराजश्री (गुरुदेवश्री) **प. पू. मुनिराज श्री हीररत्नविजयजी म. सा.** को भी आज कैसे भुला जाय...? के जिनकी अपूर्व उदारता के कारण ही मैं आज यह सब कार्य करने को समर्थ बना हुँ।

पू. बहन म.सा. (सा.श्री भव्यज्ञरेखाश्रीजी म.सा.) को भी आज के दिन मैं भूल नहीं सकता । क्योंकी उनकी अवसरोचित टकोर के कारण ही मैं आज इस महाभिनिष्क्रमण रूप संयमरथ में आरूढ हो सका हुँ ।

प. पू. वर्धमान तपोनिधि आ.श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न प. पू. पं. श्री पद्मसेनविजयजी म.सा. एवं प.पू. शासनप्रभावक आ.श्री रत्नाकरसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न प. पू. पं. श्री रत्नज्योतविजयजी म.सा. के जिन्होने जैनशासन + संघों की बहुत सारी जवाबदारी सिर पर होते हुए भी प्रस्तुत ग्रंथ का निःस्वार्थ भाव से सूक्ष्मता पूर्वक संशोधन किया ।

इस ग्रंथ में भाषाकीय शुद्धिकरण करनेवाले प. पू. आ. श्री राजशेखरसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न प. पू. पं. श्री धर्मशेखरविजयजी म.सा., प्रोफेसर रमेशभाई शाह (साबरमती), कमलेशजी पुरोहित (सिरोहि) एवं अभिषेकभाई वकिल (इंदौर) को भी मैं आज के दिन स्मरण कर रहा हुं, क्योकि उन्होंने शुद्धिकरण करके तो अविस्मरणीय उपकार किया हैं ।

आधारग्रंथों के साक्षीपाठों के लिए मुख्य आधारस्तंभ श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, आ. श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानभंडार (कोबा) रहा है एवं अन्य अन्य पुस्तकादि में रहे चित्रों के संकलन के लिए मुख्य आधारस्तंभ रूप ''गीतार्थ गंगा'' संस्था रही हैं, इसलिए इनकी भी उत्कृष्ट श्रुतभक्ति के लिए मैं अनुमोदना करता हुँ ।

The Real Universe (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ में दिए गये 3D/2D वगैरे सर्व प्रकार के चित्रों (Pichres) को तैयार करनेवाले जैनिझम ओनलाइन के सर्वेसर्वा श्रीमान् हितेषभाई (नवसारीवाले) को भी मैं विशेष धन्यवाद देता हुँ, क्योकि इनके कारण ही इस ग्रंथ में चार चांद लगे है एवं ग्रंथ सर्वमान्य-सर्वग्राह्य बना हैं ।

ऊँकार ग्राफिक्स के माननीय श्री पियुषभाई को भी इस अवसर पर भूलाया नही जा सकता क्योंकि संपूर्ण ग्रंथ के डिजाइनिंग का कार्य इन्हि महानुभाव के हाथों से सुसंपन्न हुआ है ।

सुश्रावक श्री अपूर्वभाई जो नवरंग प्रिन्टर्स के मालिक है, उनके द्वारा भी इस ग्रंथ का कंपोजिंग कार्य एवं मुद्रण कार्य एकदम व्यवस्थित रूप से हुआ है अतः उनका भी इस ग्रंथ में अपूर्व योगदान रहा हैं ।

यह **The Real Universe** (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथरत्न सर्व गच्छ एवं सर्व समुदाय में मान्य बने तथा ग्रंथ की उपादेयता श्री चतुर्विध संघ में बढ़े तदर्थे अपने अपने अणमोल अभिप्रायः भेजनेवाले ऐसे... प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री जयघोषसूरिजी म.सा., प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी म.सा., प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री हेमप्रभसूरिजी म.सा. (नीतिसूरि समुदाय), प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री कलाप्रभसूरिजी म.सा., प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री पुण्यपालसूरिजी म.सा., प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री हेमप्रभसूरिजी म.सा. (गिरिविहारवाले), प.पू.आ.श्री अशोकसागरसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री गुणरत्नसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री सूर्योदयसूरिजी / राजरत्नसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री जितरत्नसागरसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री मुनिचंद्रसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री रत्नचंद्रसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री रत्नसुंदरसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री जयसुंदरसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री रश्मिरत्नसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री रविशेखरसूरिजी म.सा., प.पू.पं.श्री रत्नज्योतविजयजी म.सा., प.पू.पं.श्री मोक्षरतिविजयजी म.सा. ...इत्यादि का मैं बहुत ही ऋणी हुं ।

परम पूज्य शास्त्र संशोधक आचार्य श्री विजय मुनिचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. एवं प.पू.षड्दर्शन निष्णात आ.श्री विजय रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म.सा. एवं प.पू.प्रवचन प्रभावक, शासन उन्नतिकारक आ.श्री विजय मुक्तिवल्लभसूरीश्वरजी म.सा. तथा **Prof. Dr.** सुधीरभाई वी. शाह (अम.) और माननीय श्री पंडितजी जितेन्द्र बी. शाह **(L.D. Institute of Indology)** के उपकारों को भी मैं कभी भी अदा नहीं कर सकता... क्योंकि इन्होंने तो प्रस्तुत ग्रंथोद्यान को प्रस्तावना के द्वारा पल्लवित किया हैं ।

विशेष में एक बात आपको बतानी हैं कि... प्रकरण एवं आगम ग्रंथों का अभ्यास करते समय तथा इस ग्रंथ के लेखन करते समय कितनेक विषय मुझे बहुत ही सुंदर एवं सरल शैली में प्रस्तुत किये हुए लगे अतः इस ग्रन्थ में कितनेक विषयों को उन उन ग्रंथो में से सीधे युं ही प्रस्तुत किया गया हैं ।

इस ग्रंथरत्न का लेखन करते समय जो कोई भी जैनागम-प्रकरण ग्रंथ- अन्य शास्त्र अथवा पुस्तकों तथा इतर ऐसे वेद-पुराणादि ग्रंथों की सहाय ली हैं उन सभी का नामोल्लखन उन उन विषयों की शरुआत में रहे हुए आधार ग्रंथों की सूची में किया गया है, फिर भी जो छद्मस्थता के वश से बाकी रह गया हो तो मैं हृदय से क्षमा प्रार्थता हुं ।

इस **The Real Universe** (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथरत्न लेखन-संपादन में नामी / अनामी सर्व व्यक्ति के जो भी प्रत्यक्ष के परोक्ष रूप से इस कार्य में सहाय-मदद रूप बने हों... उनका भी में हृदय से सदा ऋणी हुं एवं सदा ऋणी रहुँगा ।

गुरुगुणरश्मिमहीरपादपद्मरेणु

मुनि चारित्ररत्नविजय

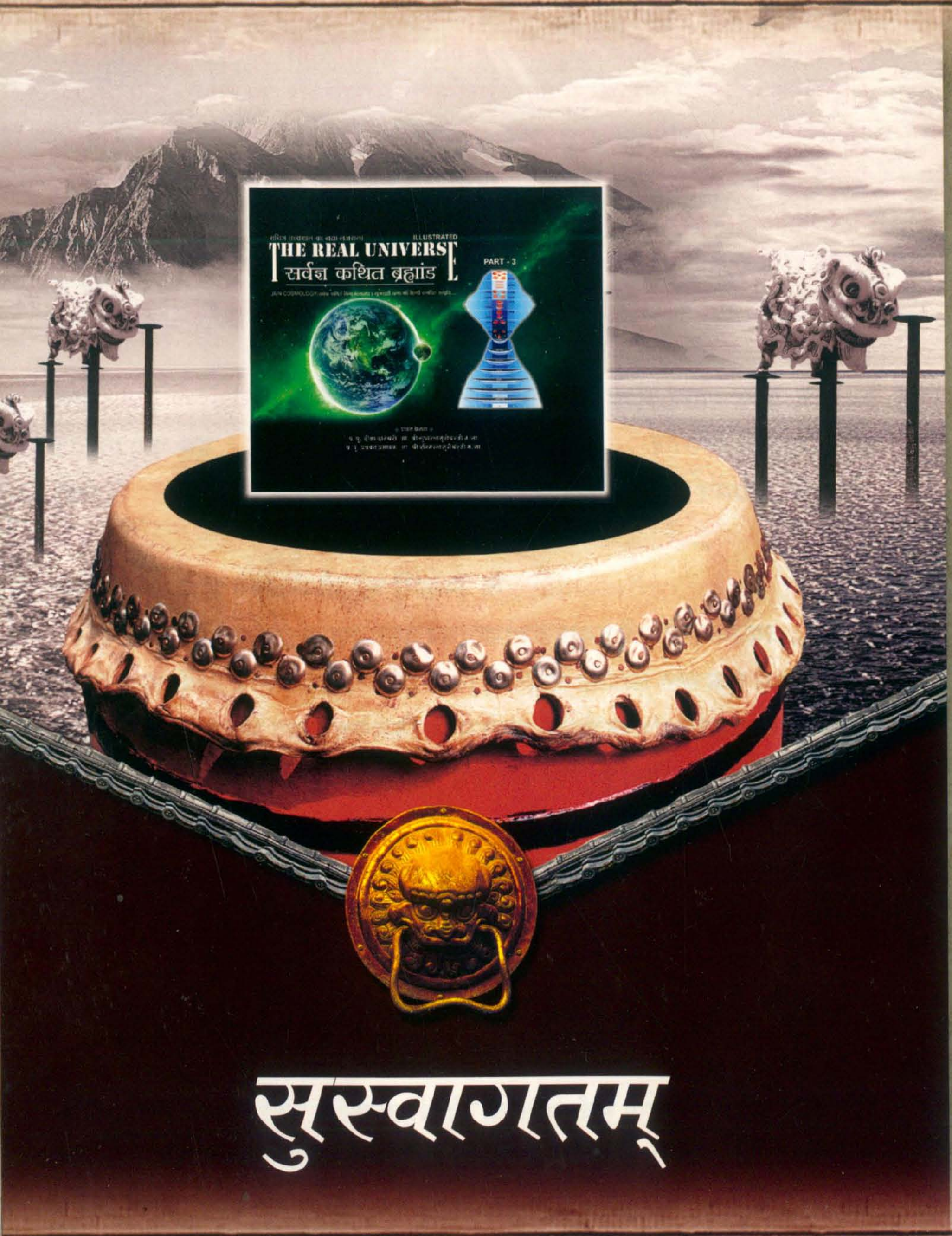

जगत्कायस्वभावौ च संवेगवैराग्यार्थम् ॥ ७-७ ॥

(तत्त्वार्थ सूत्र)

संवेग एवं वैराग्य के लिए जगत् के स्वभाव का एवं शरीर के स्वभाव का चिंतन करना चाहिए।

आज संपूर्ण संसार भय एवं आतंक के कगार पर खड़ा हुआ है। सर्वत्र हिंसा का ही साम्राज्य बढता जा रहा है। आतंक के कारण समग्र मानवजाति भयाक्रान्त है। यह संसार दुःख से भी अधिक भय के कारण पीडा का अनुभव कर रहा है। इसका मूल कारण है कि मनुष्य के अंदर अहिंसा के संस्कार नष्ट होते जा रहे है। अहिंसा का उपदेश प्रायः सभी धर्मो ने दिया है, किन्तु अहिंसा का मूल आधार तो संवेग और वैराग्य है, यह बात केवल जैनधर्म ने ही कही है। संवेग एवं वैराग्य के बिना अहिंसा आदि व्रतों का संभव नहीं हो सकता है और संवेग एवं वैराग्य की उत्पत्ति स्थान जगत्स्वभाव एवं शरीरस्वभाव के चिन्तन में है। जगत् स्वभाव के चिन्तन से मोह का विनाश होता है और काया के स्वभाव के चिन्तन से संसार के सभी जीवों के प्रति मैत्री पैदा होती है। अंतः जैनधर्म ने जगत् के स्वरूप एवं काया के स्वरूप के चिन्तन को दिया है।

भारत की भूमि केवल शुष्क ज्ञान की भूमि नहीं है यह वह भूमि है, जहां से जगत के सभी जीवों के कल्याण के स्वर उठे और हमारे पूर्व मनिषियों ने साधना द्वारा प्राप्त ज्ञान से लोक कल्याण का अद्भूत कार्य किया। अतः भारतीय मनिषियों के चिन्तन में आरंभ से ही पदार्थ के यथार्थ तत्त्व को जानने की जिज्ञासा दिखाई देती है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में मुख्य रूप से तीन तत्त्वो पर चिन्तन पाया जाता है। ये है जीव, जगत् एवं ईश्वर।

इन तीनों तत्त्वों के स्वरूप के विषय में इतना गहन चिन्तन पाया जाता है कि कोई भी जिज्ञासु इनको पढकर आश्चर्य चकित हो सकता है। इन सभी ने जैनधर्म का चिन्तन अत्याधिक वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित है। जीव के मूल स्वरूप का चिन्तन जैनधर्म ने बखूबी किया है।

"उपयोगो लक्षणम्" अर्थात् उपयोग को जीव का लक्षण बताकर न केवल अजीव से ही भिन्न किया है, अपितु जीव के स्वरूप को स्पष्ट करके सभी प्रकार के संशयो से मुक्त किया है। इसी एक मात्र लक्षण पर ही जैनधर्म की विशिष्टता स्वतः सिद्ध हो जाती है। आज सारे संसार में कोन्सीयसनेस (चेतना) पर चिंतन हो रहा है। सारे विश्व के वैज्ञानिक, दार्शनिक, धार्मिक नेता इस विषय पर चिंतन कर रहे है। चेतना का मूल लक्षण निर्धारित करने के लिए मन्थन कर रहे है। इसमें जैनधर्म की व्याख्या सर्वाधिक सुस्पष्ट है। बस आवश्यकता है इसको हमें जगत् के वैज्ञानिकों तक पहुंचाने की।

यद्यपि भारतीय दार्शनिकों ने जगत् के स्वरूप के विषय में गंभीर चिंतन किया है। जगत् नित्य है या अनित्य ? सत् है या असत् ? प्रलय होता है या नहीं ? आदि विषयों पर गहन चिन्तन किया है। इस विषय में भारतीय दार्शनिकों में वैमत्य है। बौद्ध जगत् को क्षणिक मानते है, वही नैयायिक जगत् को नित्य मानते है। जैन दार्शनिको की अपनी अलग ही मान्यता है। जैनदर्शन अनेकान्तवादी दर्शन है। तदनुसार विश्व नित्य भी है और अनित्य भी अर्थात् नित्यानित्यात्मक है। इस सृष्टि का कोई कर्ता नहीं है, अतः उसके कर्ता मानने की आवश्यकता हुई और वह कर्ता समर्थ होना चाहिए। इसके चलते ईश्वर को जगत् के कर्ता के रूप में स्वीकार किया, किन्तु ईश्वर वीतरागी है, अतः उनके द्वारा सृष्टि की संरचना का प्रश्न ही नहीं उठता और वास्तव में जगत् का ही स्वभाव है कि वह सतत परिवर्तन होता रहता है। ऐसा मानने पर ईश्वर का ईश्वरत्व नष्ट नहीं होता है।

जैनधर्म में भूगोल एवं खगोल संबंधी जो सूक्ष्म चिंतन प्राप्त होता है जो अन्यत्र कही भी नहीं मिलता है। जैनधर्म में नरकभूमियों का, उसके आधारभूत धन, सलिल, वात, आकाश, नारक जीवों, मध्यलोक, मेरू, निषध - नील आदि पर्वत, भरत, इलावृक्ष आदि क्षेत्र, जंबूद्वीप - लवणसमुद्र आदि द्वीपों एवं समुद्रों, ऊर्ध्वलोक, विविध स्वर्ग, उसमें रहनेवाले देवों, देवीओं, उनकी जातियां, आयुष्य, उनकी स्त्रीयां, उनके परिवार, उनके रहन-सहन आदि का वर्णन न तो योगदर्शन में और न ही बौद्धदर्शन में मिलता है।

जैनदर्शन में इस विषय में गंभीर चिंतन, सविस्तार एवं सुस्पष्ट प्राप्त होता है। यह विषय गणितानुयोग का है। गणितानुयोग में मुख्यरूप से लोक के विषय में चिन्तन किया जाता है। इसमें

(१) नामलोक, स्थापनालोक, द्रव्यलोक

(२) द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक, भावलोक

(३) अधोलोक, तिर्यक्लोक, ऊर्ध्वलोक

(४) ज्ञानलोक, दर्शनलोक, चारित्रलोक

आदि का अनेक दृष्टियों से विचार किया जाता है। जैसे स्थापनालोक में लोक के आकार का विचार किया जाता है। शास्त्रीय भाषा में इसे लोक के संस्थान का विचार कहा जाता है। दृश्यमान जगत् के आकार के विषय में अनेक प्रश्न उपस्थित होते है। क्या यह जगत् थाली जैसा गोल है या गेंद जैसा गोल है ? लोकपुरुष का आकार कैसा है ? द्रव्यलोक में गतिसहायक द्रव्य धर्मास्तिकाय, स्थितिसहायकद्रव्य अधर्मास्तिकाय, आश्रयदाताद्रव्य आकाश, स्थिति नियन्ताद्रव्य कालद्रव्य, चेतनाशील जीवास्तिकाय, मूर्त जडद्रव्य पुद्गलास्तिकाय का स्वरूप एकानेकत्व

आदि का रोचक वर्णन गणितानुयोग में किया गया है। अतः गणितानुयोग नितान्त पठनीय विषय है। कुछ वर्षो से यह विषय अनेक कारणों से उपेक्षणीय रहा है। कुछ लोगों ने कल्पित विषय कहकर और कुछ ने इस विषय की महत्ता समझे बिना ही उसके अध्ययन को अनावश्यक कहा। किन्तु इस गणितानुयोग से लोक स्वरूप का बोध होता है। जिससे संसार कि संरचना एवं तत् तत् क्षेत्रवर्ती जीवों का शरीर, जन्म, मरण, आयुष्य, स्वकायस्थिति आदि अनेक विषयो का बोध होता है। यह चिन्तन धर्ममार्ग में आगे बढने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वैसे तो धर्मध्यान का एक प्रकार संस्थान विचय अर्थात् लोक स्वरूप का चिन्तन आवश्यक माना है। इससे धर्मध्यान की गहराईओं में प्रवेश प्राप्त होता है। इस प्रकार लोक का विचार मात्र वाणी विकास या कपोल कल्पना मानकर छोड़ देना उचित नहीं है। इस विषय का शास्त्रीय अध्ययन हमारे जीवन को नई दिशा प्रदान करता है।

कुछ वर्ष पूर्व फ्रांस की भारतीय विद्या की विदूषी मादम कैया ने जैन कोस्मोलोजी नामक ग्रंथ प्रकाशित किया था। उसमें उन्होंने लोक सम्बन्धी जैन विचारो का संक्षेप में वर्णन किया है और प्राचीन पाण्डुलिपियों के कुछ चित्र भी प्रगट किये है। किन्तु ग्रंथ पढने से जिज्ञासुओं के कई प्रश्न अनुत्तरित ही रहते थे। अतः एक एसे ग्रंथ की आवश्यकता थी जिसमें लोक संबंधी समस्त जिज्ञासाओं का समाधान हो सके। समाधान स्पष्ट और सरल होने चाहिए। अतः इसकी क्षतिपूर्ती पूज्य मुनिराज श्री चारित्ररत्नविजयजी महाराज ने **JAIN COSMOLOGY** (सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) नामक गुजराती ग्रंथ - प्रकाशित करके की है। प्रस्तुत गुजराती ग्रंथ अपने आप में सर्वप्रथम ग्रंथ था। प्रस्तुत ग्रंथ में मुनिश्री ने लोक आदि विषयक अनेक विषयों का सरलभाषा में वर्णन किया है। इतना ही नहीं उन सभी विषयों को शास्त्रीय आधार भी दिया है। विश्व संरचना विषयक यह जैन इन्साइक्लोपिडिया ग्रंथ था और इतना स्पष्ट ग्रंथ पूर्व में प्रकाशित भी नहीं हुआ था। अतः यह ग्रंथ प्रकाशित होते ही जिज्ञासुओंने सार्थ प्राप्त किया, जिसमें कुछ ही समय में यह ग्रंथ अप्राप्य हो गया और उसको देखकर हिन्दी भाषी भाईओं बहनो ने हिन्दी प्रकाशन की मांग की। तत् पश्चात् मुनिश्री ने गुजराती ग्रंथ का केवल हिन्दी अनुवाद ही नहीं किया अपितु समग्र ग्रंथ को नया स्वरूप दे दिया। सभी विषयों को चित्रो द्वारा स्पष्ट करने का परिश्रम किया। मुनिश्री को कोटि-कोटि धन्यवाद तो इस कार्य के लिए देना ही चाहिए, किन्तु मुख्य बात तो यह है कि मुनिश्री ने अपार परिश्रम करके, आधुनिक शैली द्वारा चित्रों के माध्यम से विषय को अधिक स्पष्ट कर दिया है। वास्तव में देखा जाय तो यह ग्रंथ तो जैन विश्वसंरचना को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। प्रत्येक पाठशाला में इस ग्रंथ को पाठ्यपुस्तक के रूप में पढ़ाना चाहिए। प्रत्येक पंडितश्रीओं को मेरा नम्र निवेदन है कि जैनधर्म का खगोल एवं भूगोल रूप विज्ञान को स्पष्ट करनेवाला यह ग्रंथ अवश्य पढ़े और उसका अध्यापन करावे।

पंडितजी - जितेन्द्र बी. शाह
(L. D. Institute of Indology) Ahmedabad.

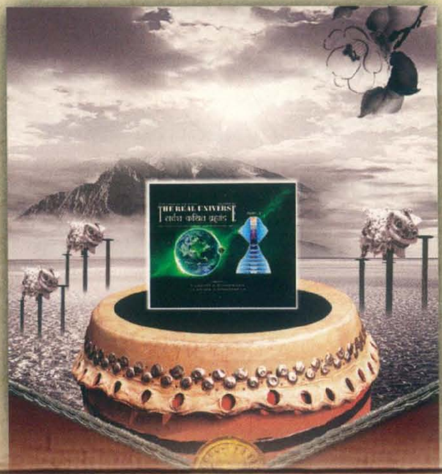

॥ ॐ ह्रीँ वद वद वाग्वादिनी ! भगवति ! सरस्वती ! श्रुतदेवी !
मम जाड्यं... हर हर श्री भगवत्यैक ठः ठः ठः स्वाहा ॥

॥ ऐँ नम ॥

कविजनों के मनोवांछितों को पूर्ण
करने के लिए कल्पलता के समान
हे श्रुताधिष्ठायिका ! सरस्वती माते !

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE
सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

विषयक ग्रंथ का सुंदर आलेखन हो इसलिए सान्निध्य करने की प्रार्थना के साथ आपका प्रणिधान कर रहा हुं ..... अतः हे माँ शारदे ! आप प्रसन्नता पूर्वक सानिध्य करना... बस ! इतना मंगल करने के बाद इस ग्रंथ का प्रारंभ कर रहा हुं।

श्री नमस्कार महामंत्र

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहुणं
एसो पंच नमुक्कारो
सव्व पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं
पढमं हवइ मंगलं

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE
सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

(PART - 3)

INDEX

145 ऊर्ध्व वैमानिक देवलोक..... २

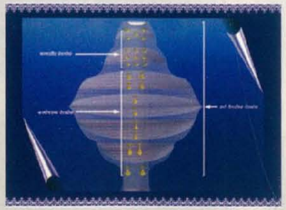

146 वैमानिक देवलोक की व्यवस्था..... ४

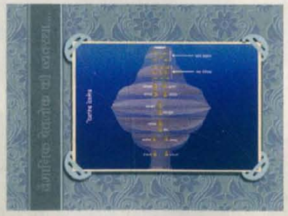

147 १२ वैमानिक देवों के संबंध में कुछ जानने जैसा..... (पार्ट - १) ६

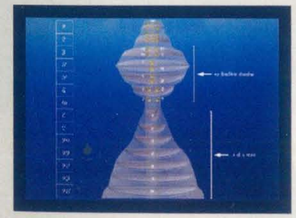

148 १२ वैमानिक देवों के संबंध में कुछ जानने जैसा..... (पार्ट - २) ८

149 अष्ट कृष्णराजी..... १०

150 नव (नौ) लोकांतिक देव..... १२

151 कल्पोपपन्न देवों के १० प्रकार..... १४

152 देवलोक के प्रतरों की व्यवस्था किस तरह है ?..... १६

153 ६२ प्रतर के कुल ६२ इन्द्रक विमान तथा नामादि..... १८

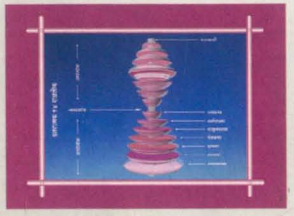

154 देवों का उत्तरवैक्रिय शरीर..... २०

155 किल्बिषिक देवों के प्रकार और उनके निवासस्थलादि..... २२

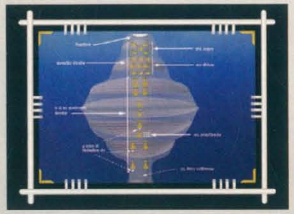

156 देव किन कारणों से मनुष्यलोक में आते है ?..... २४

157 किन कारणों से देव मनुष्यलोक में नहीं आते है ?..... २६

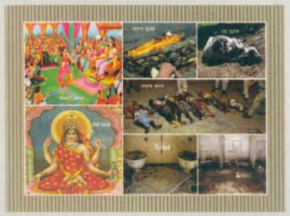

158 देवों की तथाविध भवप्रत्ययिक संपत्ति..... २८

INDEX

159
वैमानिक देवलोक के विमानों का संख्या-दर्शक यंत्र.....
३०

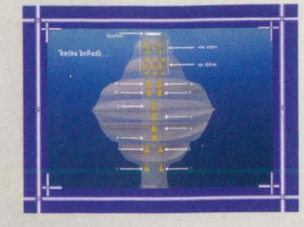

160
नव ग्रैवेयक के ९ विमान.....
३२

161
नव ग्रैवेयक तक कौन उत्पन्न हो सकता है ?.....
३४

162
५ अनुत्तरवासी देव.....
३६

163
देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र और आकार..... (पार्ट - १)
३८

164
देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र और आकार..... (पार्ट - २)
४०

165
चारों निकाय के देव तीन विभागों में विभक्त है ..... (पार्ट - १)
४२

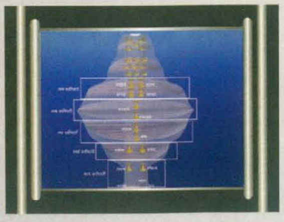

166
चारों निकाय के देव तीन विभागों में विभक्त है ..... (पार्ट - २)
४४

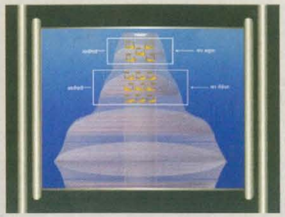

167
चारों निकायी देवों के १९८ भेद किस प्रकार होते है ?.....
४६

INDEX

प्रकीर्णक

द्वार-५

४८

168 पृथ्वीकायादि ५ स्थावर जीव.....

५०

169 त्रसकाय-विकलेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव.....

५२

170 संसारी जीवों के ५६३ भेद.. (मनुष्य-देव-नारकी).....

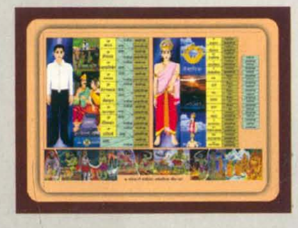

५४

171 संसारी जीवों के ५६३ भेद पर कुछ विचारणा.....

५६

172 निगोद के जीवों का स्वरूप.....

५८

173 औदारिकादि ५ शरीर.....

६०

174 ऋजु और वक्रगति का स्वरूप.....(पार्ट - १)

६२

175 ऋजु और वक्रगति का स्वरूप.....(पार्ट - २)

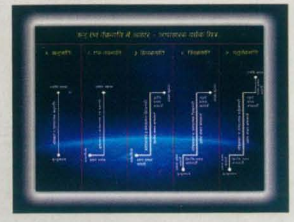

६४

INDEX

176 सिद्धों का सुख कैसा है ?..... ६६

177 सिद्धशिला एवं सिद्धात्माएँ..... ६८

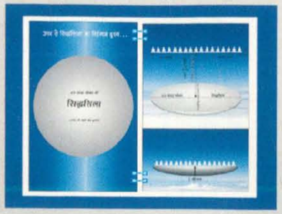

178 सिद्धात्मा की अवगाहना..... ७०

179 सिद्ध के १५ भेद और अनंतरादि प्रकार..... ७२

180 आहारादि ६ पर्याप्ति..... ७४

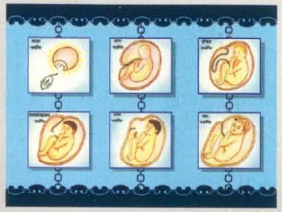

181 जीव के छः संस्थान और अजीव के पांच संस्थान..... ७६

182 छः प्रकार के संघयण..... ७८

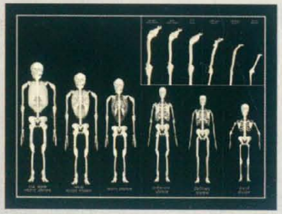

183 ६ लेश्या का स्वरूप..... ८०

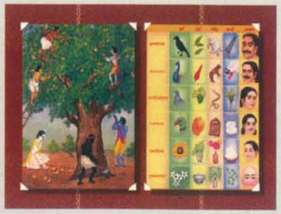

184 आत्मा का विकासक्रम एवं १४ गुणस्थानक..... (पार्ट - १) ८२

INDEX

185
आत्मा का विकासक्रम एवं
१४ गुणस्थानक..... (पार्ट - २)

८४

186
आत्मा का विकासक्रम एवं
१४ गुणस्थानक..... (पार्ट - ३)

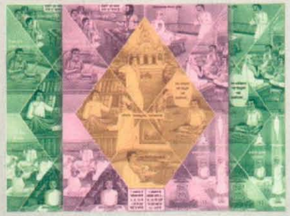

८६

187
केवली समुद्घात..... (पार्ट - १)

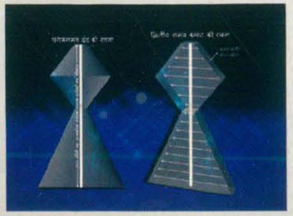

८८

188
केवली समुद्घात..... (पार्ट - २)

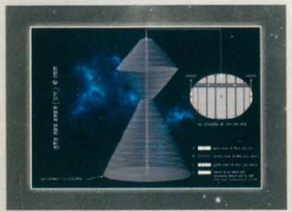

९०

189
तीर्थंकर नामकर्म बंध
कारण वीस स्थानक पद.....

९२

190
पुद्गल (अजीव) के
५३० भेद.....

९४

191
आठ कर्मों का स्वभाव..... (पार्ट - १)

९६

192
आठ कर्मों का स्वभाव..... (पार्ट - २)

९८

193
अवसर्पिणी काल के ६
आराओं का स्वरूप..... (पार्ट - १)

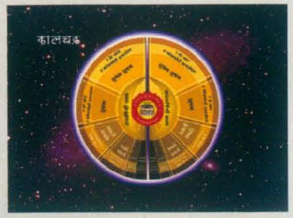

१००

INDEX

194
अवसर्पिणी काल के ६ आराओं का स्वरूप.....(पार्ट - २)
१०२

195
उत्सर्पिणी काल के ६ आराओं का स्वरूप.....
१०४

196
६ प्रकार के बाह्य तप.....
१०६

197
६ प्रकार के अभ्यंतर तप.....
१०८

198
श्री अष्टापदजी महातीर्थ..... (पार्ट - १)
११०

199
श्री अष्टापदजी महातीर्थ..... (पार्ट - २)
११२

200
क्या तुम्हें पता है भूकंप किस कारण से होता है ?.....
११४

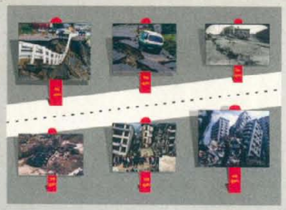

द्वार - ६
प्राचीन चित्रावली
सैंकड़ों वर्ष प्राचीन हस्तलिखित-ताडपत्रीय ग्रंथो में दिये हुए १४ राजलोक एवं उसके अंतर्गत दुसरे पदार्थो संबंधी १०० से अधिक प्राचीन चित्रों...
११६ — १६७

INDEX

सद्वांचन की महिमा....

सद्वांचन अनेक प्रकार का होता है । उसमें से कौन-सा वांचन किस को हितकर है अथवा किसको अहितकर है ? उसका निर्णय स्वयं (खुद) नहीं करके सद्गुरु के द्वारा करवाना चाहिए। जिस तरह रोगी इंसान (मनुष्य) स्वयं को कौन-सा औषध लाभ करे वैसा है... उसका निर्णय स्वयं नहीं करके निष्णात (स्पेश्यालिस्ट) वैद्य (डॉक्टर) के द्वारा ही कराता हैं तथा सीधे फार्मसी में से भी कोई ऊँची जात की दवाईयां लाकर सीधे खाने नहीं लगता...।

तथा जिस तरह जगत में शरीर की व्याधि मिटाने के लिए स्पेश्यालिस्ट वैद्य की सलाह-सूचन के अनुसार ही औषध तथा पथ्यापथ्य का ख्याल रखना आवश्यक माना जाता हैं इस बाबत में कोई भी समझदार इंसान अपनी स्वयं की बुद्धि के ऊपर चलता नहीं है परंतु निपुण वैद्य की आधीनता ही स्वीकार करता हैं, ठीक उसी प्रकार कर्मरोग को नाबुद करने के लिए भी उसका समूल उच्छेद करनेवाले महाधन्वंतरी वैद्य समान सर्वज्ञ परमात्मा की आज्ञानुसार शुद्ध संयम का पालन करनेवाले परोपकार परायण ऐसे आयार्य भगवंतादि की आधीनता को स्वीकार करके उनकी सलाह सूचन के अनुसार ही सद्वांचन भी करना चाहिए...।

उसी सद्वांचन की श्रेणि में आया हुआ एक अद्वितीय कक्षा का अनमोल ग्रंथ... अर्थात्...

The Real Universe (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड)

जिसके चिंतन-मनन से समस्त कर्मों का क्षय करके अपनी आत्मा परमानंद का भोक्ता बने...

इसी अभ्यर्थना के साथ... देखते है आगे का विषय... "ऊर्ध्वलोक"

द्वार-४

ऊर्ध्वलोक

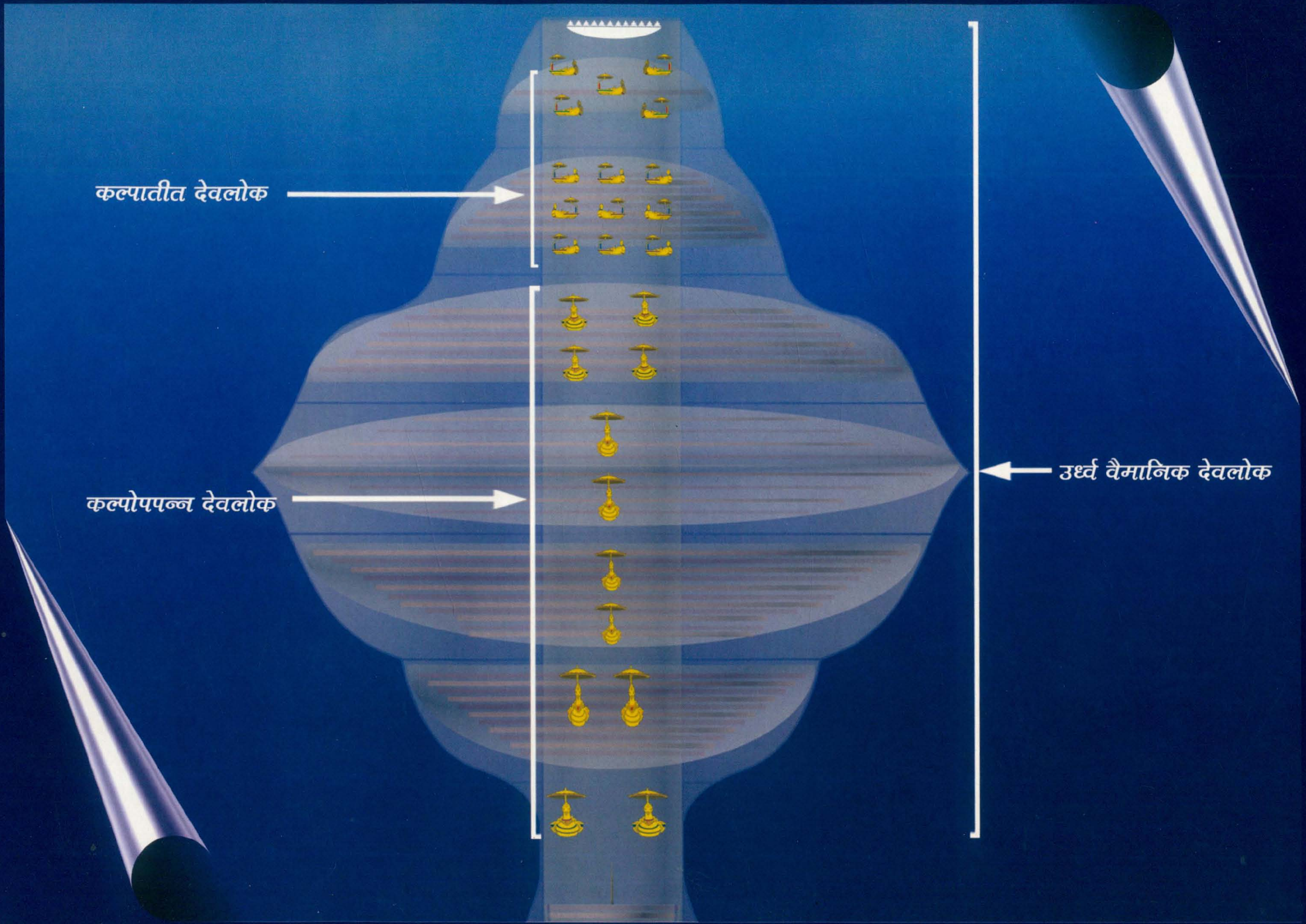
कल्पातीत देवलोक
कल्पोपपन्न देवलोक
उर्ध्व वैमानिक देवलोक

ऊर्ध्व वैमानिक देवलोक.....

यहाँ से वैमानिक देवों का अधिकार प्रारंभ होता है, इसलिए चतुर्थ निकाय का नाम वैमानिक देवलोक है। विमानों में उत्पन्न होनेवाले अथवा रहनेवालों को "वैमानिक" कहते है। अर्थात् वैमानिक देव विमान में उत्पन्न होते हैं, इसलिए ये वैमानिक कहे जाते हैं। वैमानिक नाम पारिभाषिक है, कारण यही है कि ज्योतिष देवगण भी विमान में ही उत्पन्न होते हैं।

विशेष - विमान तीन प्रकार के होते हैं। इन्द्रक, श्रेणिबद्ध तथा पुष्पावकीर्ण। जो सबके मध्य में है उसे **इन्द्रक** विमान कहते हैं। जो पूर्वादिक दिशाओं के क्रम से श्रेणिरूप अर्थात् एक पंक्ति में उपस्थित है, उनको **श्रेणिबद्ध** विमान कहते हैं। तथा जो बिखरे पुष्पों-फूलों की तरह अनवस्थित रूप से जहाँ तहाँ रहे हुए है, उनको **पुष्पावकीर्ण** विमान कहते हैं। इनमें रहनेवाले देवों का नाम वैमानिक देव हैं।

इन वैमानिक देवों के दो भेद हैं। (१) कल्पोपपन्न (२) कल्पातीत। कल्प-आचार तथा व्यवहार ये सभी एकार्थवाची शब्द है। जो देवादि श्री अरिहंत-तीर्थंकर भगवन्तादि के जन्मकल्याणक इत्यादि शुभ कार्यों में जाते है, वे देव "कल्पोपपन्न" कहलाते है। अथवा जिनमें स्वामी और सेवक इत्यादि न्यूनाधिकपने का व्यवहार होता है वे "कल्पोपपन्न" कहलाते हैं। तथा जिन देवों को किसी भी प्रकार का आचार और व्यवहार नहीं करना पड़ता है, और जहाँ स्वामी और सेवकादि का भाव नहीं होता है एवं सभी सामान्य रूप से रहते हैं उसे "कल्पातीत" कहते हैं। **सारांश** यही है कि - आगे कहे जानेवाले इन्द्रादि १० प्रकार की व्यवस्था (कल्प) जिनमें पाई जाती है, उनको कल्प कहते हैं। यह कल्प (व्यवस्था) प्रथम सौधर्म देवलोक से लेकर बारहवें अच्युत देवलोक पर्यन्त ही पाई जाती हैं इनमें उत्पन्न होनेवालों को "कल्पोपपन्न" कहते हैं। इस कल्प (व्यवस्था) से जो रहित है, उनको "कल्पातीत" कहते हैं। बारहवें अच्युत देवलोक से ऊपर नौ ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर में जो उत्पन्न होनेवाले हैं उनको "कल्पातीत" जानना चाहिए। अर्थात् प्रथम के १२ देवलोकों में कल्प होने से, उनमें उत्पन्न हुए देव कल्पोपपन्न है। तथा बाद में नौ ग्रेवेयक और पांच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए देव कल्पातीत हैं। भवनपति-व्यंतर तथा ज्योतिष यह तीन निकाय के देवगण तो कल्पोपपन्न ही है क्योंकि वहाँ कल्प का अस्तित्व हैं।

विशेष- नाम निर्देश के अनुसार कल्पों और कल्पातीतों का अवस्थान है। अर्थात् निर्देश के अनुसार सौधर्मकल्प के ऊपर, ईशानकल्प तथा ईशानकल्प के ऊपर सनत्कुमार कल्प है। इसी क्रम से अच्युत कल्प पर्यन्त कल्पों का अवस्थान ऊपर-ऊपर हैं। ये कल्प न तो एक क्षेत्र में हैं अर्थात् समस्त के समस्त एक ही जगह पर अवस्थित नहीं हैं, सारांश यही है कि वैमानिक निकाय के देवलोक ऊपर-ऊपर आये हुए हैं। वैमानिक निकाय का अवस्थान व्यंतर-निकाय की माफिक अवस्थित नहीं हैं। तथा ज्योतिष की तरह तिर्च्छा भी नहीं है, किन्तु ऊपर-ऊपर ही हैं।

145

If the Earth is round

Captain mill reports in the account of his travels that in the Arctic Regions one can see as far as 40 miles but the explorers of the North Pole say that one can very easily see there as far as 150 to 200 miles Why and how does this happen ?

If the Earth is round

Water seeks it's own level. It rolls down on uneven surface. Then how is it that the water of the seas and oceans remain on all sides?

वैमानिक देवलोक की व्यवस्था...

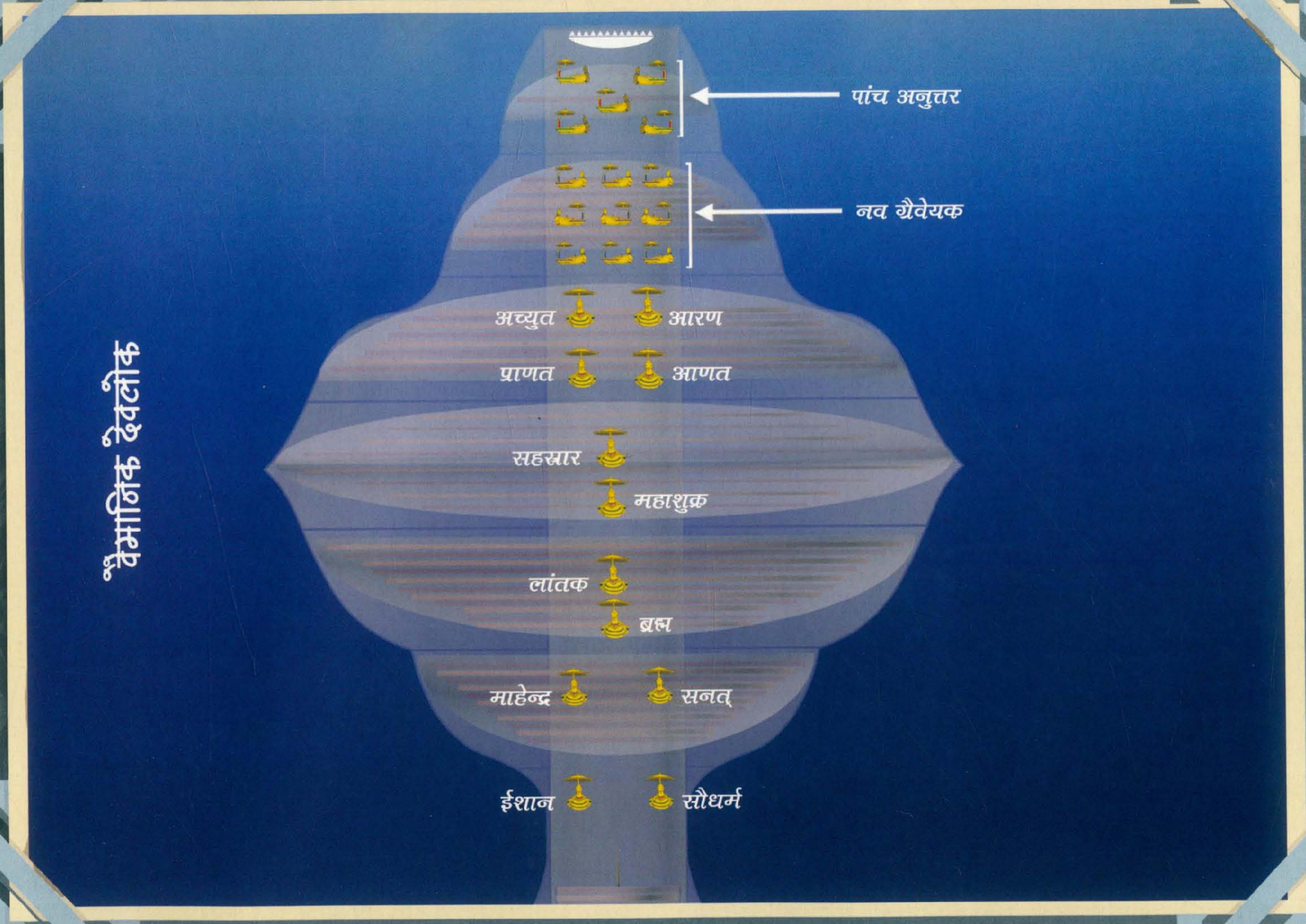

वैमानिक देवलोक की व्यवस्था कुछ इस प्रकार है तथा इनके निवासस्थान सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लांतक, महाशुक्र, सहस्त्रार, आणत-प्राणत, आरण और अच्युत ये बारह कल्प-देवलोक हैं। ज्योतिष देवलोक से असंख्यात योजन ऊपर पहला **सौधर्म देवलोक** हैं। वह मेरुपर्वत से दक्षिण दिशा के आकाश प्रदेशों में अवस्थित हैं। यह पूर्व-पश्चिम लम्बा और उत्तर-दक्षिण चौड़ा है। इसकी लंबाई तथा चौड़ाई असंख्यात कोटाकोटी योजन की है। इस सौधर्म कल्प का विस्तार लोक के अन्त तक का है। इसकी आकृति-आकार चन्द्रमाँ के समान है तथा सर्वरत्नमय से समलंकृत है।

इसकी उत्तर दिशा में दूसरा **ईशान कल्प** है। वह सौधर्मकल्प से कुछ ऊपर के भाग में हैं। दोनों कल्प समश्रेणी में नहीं हैं। सौधर्मकल्प से समश्रेणी असंख्य योजन ऊपर जाने के बाद तीसरा **सनत्कुमार कल्प** आता है। ईशानकल्प से असंख्य योजन ऊपर जाने के बाद ईशान की समश्रेणी में चौथा **माहेन्द्र कल्प** है। इन दोनों के ऊपर पूर्णचन्द्रमां के आकारवाला मध्यवर्ती पांचवाँ **ब्रह्मलोक कल्प** है। अर्थात् वह ठीक मेरु की शिखा की समश्रेणी पर है। इसके ऊपर समश्रेणी में अनुक्रम से छट्ठा **लान्तक कल्प**, सातवाँ **महाशुक्र कल्प**, आठवाँ **सहस्त्रार कल्प** रूप ये तीन कल्प आये हुए हैं। अर्थात् ब्रह्मलोक के ऊपर समश्रेणी में लान्तक, लान्तक के ऊपर समश्रेणी में महाशुक्र और महाशुक्र के ऊपर सहस्त्रार देवलोक आता है।

अब इसके ऊपर सौधर्म और ईशानकल्प के समान उत्तर-दक्षिण दिशा में नौवाँ **आणत कल्प** तथा दसवाँ **प्राणत कल्प** है। अर्थात् दक्षिणदिशा में आणत कल्प आया हैं। आणतकल्प से प्राणत कल्प कुछ ऊपर है। इनके ऊपर समश्रेणी में सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के समान अग्यारहवाँ **आरण कल्प** और बारहवाँ **अच्युत कल्प** आया हुआ है। यहां भी आरण से अच्युत कुछ ऊपर है। इस प्रकार बारह कल्प अर्थात् देवलोक है। अब इन कल्पों के ऊपर क्रमशः एक-दूसरे के ऊपर-ऊपर नौ विमान है। वे पुरुषाकृति रूप लोक के ग्रीवास्थान (प्रदेश) पर अवस्थित हैं। अथवा उस ग्रीवा के ये सब आभरण रूप है। इसलिए इनको **ग्रैव, ग्रीव्य, ग्रैवेय** तथा **ग्रैवेयक** भी कहते हैं। इनके ऊपर विजयादिक पांच महाविमान हैं। जो **विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित** और **सर्वार्थसिद्ध** नामों से सुप्रसिद्ध है। ये पाँचों विमान सबसे ऊपर यानी प्रधान होने से अनुत्तर विमान कहलाते हैं। सौधर्मकल्प से लेकर नौ ग्रैवेयक पर्यन्त सभी का अवस्थान क्रम से ऊपर-ऊपर हैं। नौ ग्रेवेयक से ऊपर के विमानों में उत्पन्न हुए जीव (देव) अल्प संसारी होने से उत्तम हैं। उन देवों से कोई भी देव प्रधान-उत्तम नहीं है। इसलिए उनके विमानों को अनुत्तर विमान कहते हैं। अथवा देवलोक के अन्त में आये हुए होने से ही उनके उत्तर कोई भी विमान न होने से **पाँच अनुत्तर विमान** कहलाते हैं।

सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवंतों द्वारा उक्त सद् - असद् वस्तु और तत्त्वों का श्रद्धान सम्यग् दर्शन है। सद् और असद् वस्तु तथा तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान ही सम्यग् ज्ञान है। असद् वस्तु तथा तत्त्वों को छोड़कर सद्वस्तु और तत्त्वों का स्वीकरण तथा तदर्थ आचारण सम्यक् चारित्र है। इन तीनों तत्त्वों का जिस किसी भी अनुष्ठान में समन्वय दिखे, वही मुक्तिमार्ग हैं।

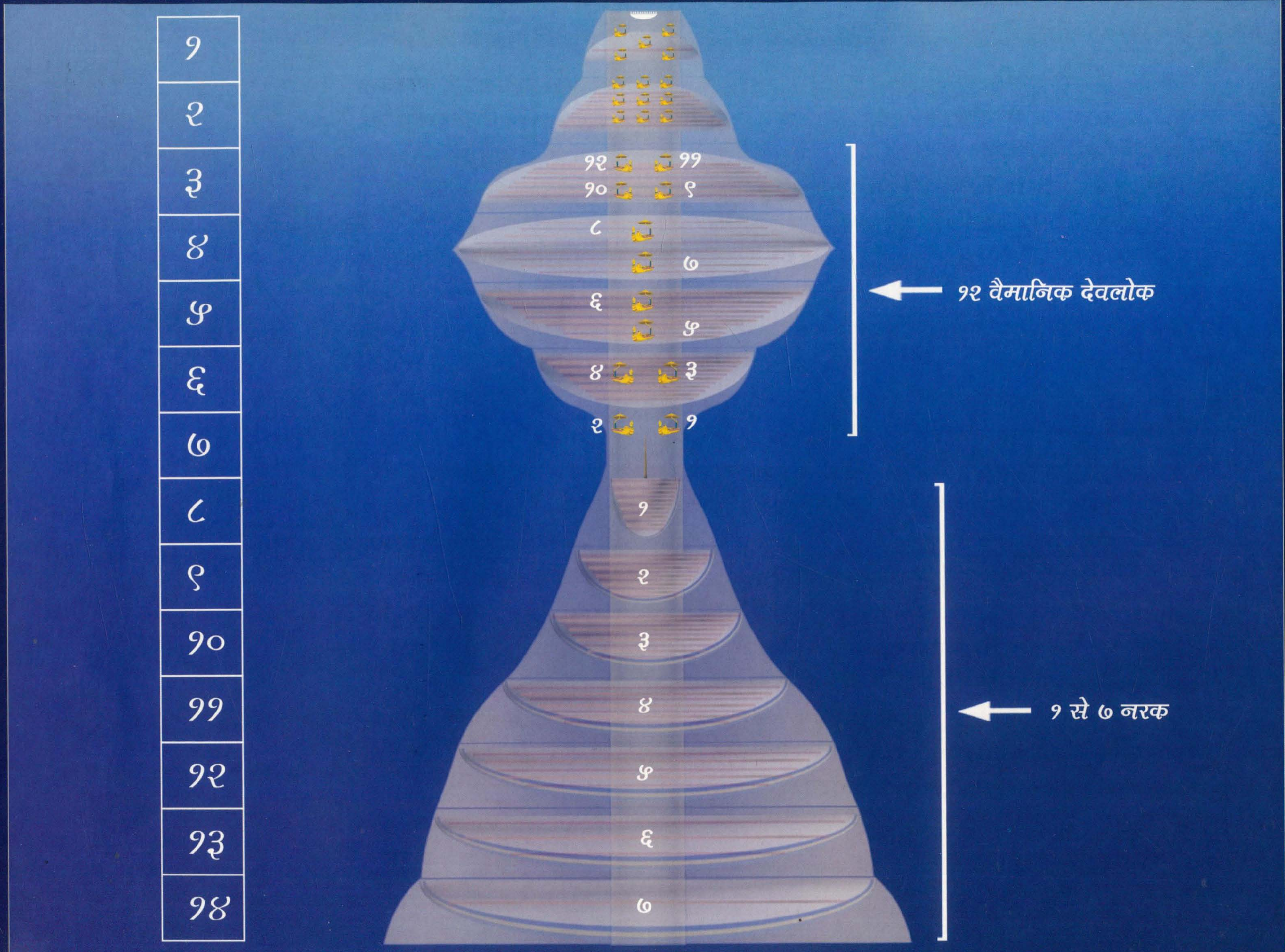
१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१२ वैमानिक देवलोक
१ से ७ नरक

१२ वैमानिक देवों के संबंध में कुछ जानने जैसा..... (पार्ट - १)

क्रम	देवलोक के नाम	देवो के चिह्न	शरीर वर्ण	यान विमान	विमान उच्चत्व	पृथ्वीपिंड	विमान वर्ण	विमान आधार	विमान आधिपत्य	सामानिक देव	आत्मरक्षक देव..
१	सौधर्म	मृग	कनक	पालक	५०० यो.	२७०० यो.	५	घनोदधि	३२,००,०००	८४,०००	३,३६,०००
२	ईशान	महिष	कनक	पुष्पक	५०० यो.	२७०० यो.	५	घनोदधि	२८,००,०००	८०,०००	३,२०,०००
३	सनत्कुमार	वराह	पद्म	सौमनस	६०० यो.	२६०० यो.	४	घनवात	१२,००,०००	७२,०००	२,८८,०००
४	माहेन्द्र	सिंह	पद्म	श्रीवत्स	६०० यो.	२६०० यो.	४	घनवात	८,००,०००	७०,०००	२,८०,०००
५	ब्रह्मलोक	बकरा	पद्म	नंदावर्त	७०० यो.	२५०० यो.	३	घनवात	४,००,०००	६०,०००	२,४०,०००
६	लांतक	दर्दुर	श्वेत	कामगम	७०० यो.	२५०० यो.	३	घनोदधि	५०,०००	५०,०००	२,००,०००
७	महाशुक्र	घोडा	श्वेत	प्रीतिगम	८०० यो.	२४०० यो.	२	घनोदधि	४०,०००	४०,०००	१,६०,०००
८	सहस्त्रार	हाथी	श्वेत	मनोरम	८०० यो.	२४०० यो.	२	घनोदधि	६,०००	३०,०००	१,२०,०००
९	आणत	सर्प	श्वेत	विमल	९०० यो.	२३०० यो.	१	आकाश	४००	२०,०००	८०,०००
१०	प्राणत	गेंडा	श्वेत	विमल	९०० यो.	२३०० यो.	१	आकाश			
११	आरण	वृषभ	श्वेत	सर्वतोभद्र	९०० यो.	२३०० यो.	१	आकाश	३००	१०,०००	४०,०००
१२	अच्युत	मृग	श्वेत	सर्वतोभद्र	९०० यो.	२३०० यो.	१	आकाश			
									कुल	४,१६,०००	२०,६४,०००

जैन जगत की जानने जैसी बाते....

सबसे बड़ा समुद्र — स्वयंभूरमण समुद्र (असंख्य की.मी.)
सबसे बड़ा पर्वात — मेरुपर्वत (४८,००,००,००० की.मी.)
सबसे बड़ी नदी — सीता, सीतोदा (२४,००,००,००० की.मी. लम्बी)
सबसे बड़ा द्वीप — स्वयंभूरमण द्वीप (असंख्य की.मी.)
सबसे लम्बा व्यक्ति — देवकुरु/उत्तरकुरु में (प्रायः ७ से ८ की.मी. लम्बा)
सबसे ऊंचा किल्ला — जम्बूद्वीप का (५७,६०० की.मी.)

सबसे लम्बी मछली — स्वयंभूरमण समुद्र की (प्रायः १०,००० की.मी.)
सबसे लम्बी कीडी — अढाईद्वीप के बाहर (प्रायः १० की.मी. लम्बी)
सबसे लम्बा साप — अढाईद्वीप के बाहर (प्रायः १०,००० की.मी. लम्बा)
सबसे बड़ा बंदर — अढाईद्वीप के बाहर (प्रायः २२ से २३ की.मी. लम्बा)
सबसे बड़ा पक्षी — अढाईद्वीप के बाहर (प्रायः ३६ हाथ लम्बा)
सबसे बड़ी मूर्ति — अष्टापद पर्वत ऊपर ऋषभदेव भगवान की (२००० हाथ ऊंची)

स्फटिक मणि प्रकृति से तो निर्मल ही है, मगर पास मे विद्यमान लाल, काले, पीले, हरे, बैंगनी आदि रंग की वस्तुओ की छाया से वह उस रंगवाला प्रतिभासित होता है, ऐसे ही आत्मा प्रकृति से तो निर्मल ही है, मगर पास में विद्यमान लेश्या, कषाय और कर्मादि पर वस्तुओं के वर्णो के कारण वह भी तद्रूप प्रतिभासित होता है।

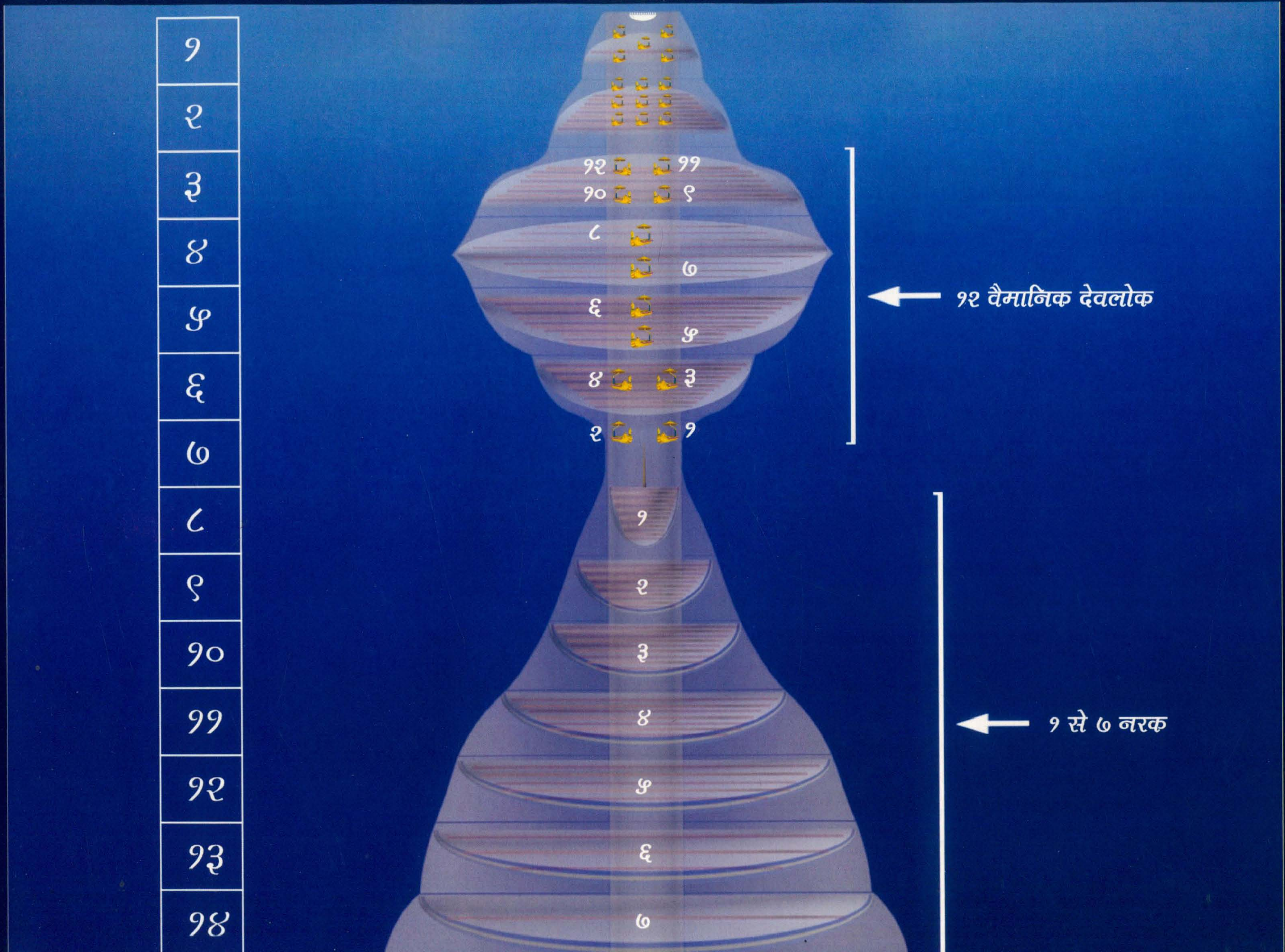

१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१२ ११
१० ९
८
७
६
५
४ ३
२ १
१
२
३
४
५
६
७
१२ वैमानिक देवलोक
१ से ७ नरक

१२ वैमानिक देवों के संबंध में कुछ जानने जैसा..... (पार्ट - २)

क्रम	देवलोक नाम	जघन्य आयुष्य	उत्कृष्ट आयुष्य	अभ्यंतर पर्षदा के देवों की		मध्यम पर्षदा के देवों की		बाह्य पर्षदा के देवों की	
				संख्या	स्थिति	संख्या	स्थिति	संख्या	स्थिति
१	सौधर्म	१ पल्योपम	२ सागरोपम	१२,०००	५ पल्योपम	१४,०००	४ पल्योपम	१६,०००	३ पल्योपम
२	ईशान	साधिक १ पल्योपम	साधिक २ सागरोपम	१०,०००	७ पल्योपम	१२,०००	६ पल्योपम	१४,०००	५ पल्योपम
३	सनत्कुमार	२ सागरोपम	७ सागरोपम	८,०००	४ १/२ सागरो. + ५ पल्योपम	१०,०००	४ १/२ सागरो. + ४ पल्योपम	१२,०००	४ १/२ सागरो. + ३ पल्योपम
४	माहेन्द्र	साधिक २ सागरोपम	साधिक ७ सागरोपम	६,०००	४ १/२ सागरो. + ७ पल्योपम	८,०००	४ १/२ सागरो. + ६ पल्योपम	१०,०००	४ १/२ सागरो. + ५ पल्योपम
५	ब्रह्मलोक	७ सागरोपम	१० सागरोपम	४,०००	८ १/२ सागरो. + ५ पल्योपम	६,०००	८ १/२ सागरो. + ४ पल्योपम	८,०००	८ १/२ सागरो. + ३ पल्योपम
६	लांतक	१० सागरोपम	१४ सागरोपम	२,०००	१२ सागरो. + ७ पल्योपम	४,०००	१२ सागरो. + ६ पल्योपम	६,०००	१२ सागरो. + ५ पल्योपम
७	महाशुक्र	१४ सागरोपम	१७ सागरोपम	१,०००	१५ १/२ सागरो. + ५ पल्योपम	२,०००	१५ १/२ सागरो. + ४ पल्योपम	४,०००	१५ १/२ सागरो. + ३ पल्योपम
८	सहस्त्रार	१७ सागरोपम	१८ सागरोपम	५००	१७ १/२ सागरो. + ७ पल्योपम	१,०००	१७ १/२ सागरो. + ६ पल्योपम	२,०००	१७ १/२ सागरो. + ५ पल्योपम
९	आणत	१८ सागरोपम	१९ सागरोपम	२५०	१९ सागरो. + ५ पल्योपम	५००	१९ सागरो. + ४ पल्योपम	१,०००	१९ सागरो. + ३ पल्योपम
१०	प्राणत	१९ सागरोपम	२० सागरोपम						
११	आरण	२० सागरोपम	२१ सागरोपम	१२५	२१ सागरो. + ७ पल्योपम	२५०	२१ सागरो. + ६ पल्योपम	५००	२१ सागरो. + ५ पल्योपम
१२	अच्युत	२१ सागरोपम	२२ सागरोपम						

148

जबसे मैंने शंकराचार्यने किया हुआ जैनधर्म का खंडन पढ़ा तबसे मुझे विश्वास हो गया कि इस सिद्धांत में कुछ है । जिसे वेदान्त के आचार्य समझ नहीं पाये । आज तक मैं जैनधर्म के विषय में जितना जान पायां उससे मेरी यह दृढ प्रतिती हुई कि जैनधर्म के मूल ग्रंथ पढने का जो इन्होंने कष्ट लिया होता तो जैनधर्म का विरोध करने का उन्हें कोई अवसर ही नहीं मिलता ।

महामहोपाध्याय गंगानाथ झा
(M.A.,D.L.L.)

जैन फिलासोफरोंने जैसे पदार्थ के सूक्ष्म तत्वो का विचार किया है उसको देखकर आज कल के फिलोसोफर बड़े आश्चर्य में पड जाते है । वे कहते है की महावीर स्वामीजी आजकल के साइन्स के सबसे पहले जन्मदाता हैं ।

रिसर्च स्कोलर पं. माधवाचार्य

पू.
ई.
अ.
१. अर्चि
२. अर्चिमाली
३. वैरोचन
४. प्रभंकर
५. चन्द्राभ
६. सुराभ
७. शुक्राभ
८. सुप्रतिष्ठाभ
९. रिष्टाभ
उ.
द.
वा.
नै.
प.

अष्ट कृष्णराजी

अष्ट कृष्णराजी.....

चलिए मित्रो ! अब हम अष्ट कृष्णराजी का वर्णन करते हैं जो रिष्ट नाम के प्रतर में यह तमस्काय रूकता है उस प्रतर के रिष्ट नामक इन्द्रक विमान के चारों तरफ पृथ्वी रूप के परिणाम होने से जीव के पुद्गलवाली दो-दो कृष्णराजी हैं जो कि ये जातिमान अंजनरत्न समान गाढ कृष्ण वर्णवाली होती हैं। वह इस तरह से... पूर्व दिशा में अन्दर दो कृष्णराजी होती है जो कि दक्षिण-उत्तर लंबी और पूर्व-पश्चिम चौड़ी है। इसी तरह दक्षिण दिशा में भी दो कृष्णराजी है जो कि पूर्व-पश्चिम लम्बी है और उत्तर-दक्षिण चौड़ी है, तथा पश्चिम दिशा में भी दो कृष्णराजी है वह पूर्व दिशा के समान उत्तर-दक्षिण लम्बी है व पूर्व-पश्चिम चौड़ी है।

पूर्व और पश्चिम में रही जो बाह्य कृष्णराजी होती है वह षट्कोण होती है और दक्षिण तथा उत्तर में रही हुई कृष्णराजी जो होती है वह त्रिकोण होती है। जबकी अंदर की चार कृष्णराजी तो चतुष्कोण होती है, अतः यह कृष्णराजी में दो षट्कोण हैं, दो त्रिकोण हैं व चार चतुष्कोण हैं।

पूर्व दिशा के अंदर की कृष्णराजी अपने छेडे से दक्षिण दिशा के बाहर की कृष्णराजी को स्पर्श करती हैं। इसी तरह से दक्षिण के अंदर की कृष्णराजी पश्चिम की बाह्य कृष्णराजी को स्पर्श करती है, इसी तरह पश्चिम दिशा की अभ्यंतर कृष्णराजी उत्तर बाह्य कृष्णराजी को स्पर्श करती है। तथा उत्तर दिशा में रही अंदर की कृष्णराजी पूर्व दिशा की बाह्य कृष्णराजी को स्पर्श करती हैं, ये आठों कृष्णराजी अखाड़े की आकारवाली हैं। सभास्थान में बैठने का जो आसन विशेष होता है, वह अक्षपाटक कहलाता है, उनके समान इन कृष्णराजीयों की आकृति होती है। ये आठों कृष्णराजीयां विष्कंभ (चौड़ाई) में संख्यात योजन प्रमाण है जबकि आयाम (लंबाई) और परिक्षेप (परिधि) असंख्य योजन प्रमाण में होती है।

तमस्काय के प्रमाण को मापने के लिए जो देव की गति कही हैं, उस गति से जानेवाला कोई देव १५ दिन में इन कृष्णराजीयों में से कुछ राजीयों को पार कर सकता है जबकी कोई उसे पार नहीं कर सकता है। इस तरह से कृष्णराजी का महत्व बहुश्रुत ज्ञानीयों ने वर्णन किया है।

तमस्काय के समान ही इन कृष्णराजीयों में घर-ग्रामादि नहीं होते एवं सूर्य-चंद्र अथवा उसके किरण वगेरे भी नहीं होते। यहाँ मेघ, वृष्टि, गर्जना, विद्युत् आदि तमस्काय के समान हैं परन्तु वह देवकृत होता है, पर नागकुमार या असुरकुमार कृत नहीं होता है। इसलिए तो श्री भगवतीसूत्र की टीका में कहा है की "नागकुमार और असुरकुमारों का वहाँ गमन का अभाव होता है," इसलिए वहाँ देवकृत ही कहा है।

इस कृष्णराजी के ८ नाम हैं (१) श्याम पुद्गल की श्रेणी होने से इसका प्रथम नाम "कृष्णराजी" हैं। (२) काले बादल की रेखा समान होने से "मेघराजी" कहलाती हैं। (३) + (४) छट्ठी और सातवीं मघा और माघवती नरक के समान अंधकारवाली होने से (३) "मघा" और (४) "माघवती" कहलाती हैं। (५) + (६) वात शब्द से घुमावदार वायु समझना उनके समान अंधारी और भयंकर होने से वह (५) "वातपरिघ" और (६) "वातप्रतिक्षोभ" कहलाती है तथा (७) + (८) इसी तरह देवों को भी होने से (७) "देवपरिघ" और (८) "देवप्रतिक्षोभ" कहलाती हैं।

(१) (A) भगवती सूत्र, शतक-६, उद्देशा-५, श्लोक-१७ से २९ (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२७, श्लोक-१९६ से २१६

149

अपने विचारों को गैलीलियो ने जिस पुस्तक में लिखा था, उसे प्रकाशित करने पर चर्च ने प्रतिबन्ध लगा दिया। अन्त में जब गैलीलियो ने इस पुस्तक की प्रस्तावना में लिखा कि उसके ये विचार मात्र कल्पना की सैर है और वे टोलेमी की मान्यता के विपरीत नहीं है, तब ही उसे इस पुस्तक को प्रकाशित करने की मंजूरी मिली। गैलीलियो की पुस्तक "डायलोगो" सन् १६३२ में प्रकाशित हुई, जिसमें उपरोक्त प्रस्तावना समाहित की गई। यूरोपीय प्रजा ने उस प्रस्तावना को तो मजाक में ले लिया, लेकिन पुस्तक में दिए गए सिद्धान्तों को वे सच मानने लगे। इससे पोप अर्बन अष्टम क्रोधित हो गया और उसने गैलीलियो के विरुद्ध अदालती कार्यवाई करने का आदेश दिया। इसलिए गैलीलियो ने पोप के पैरों पर गिर कर क्षमा मांगते हुए याचना की कि..... "मैं गैलीलियो, पवित्र बाइबल को मेरी आँखो पर रखते हुए माफी माँगता हूँ और कहता हूँ कि पृथ्वी घूमती है इस गलत मान्यता का मैं त्याग करता हूँ।"

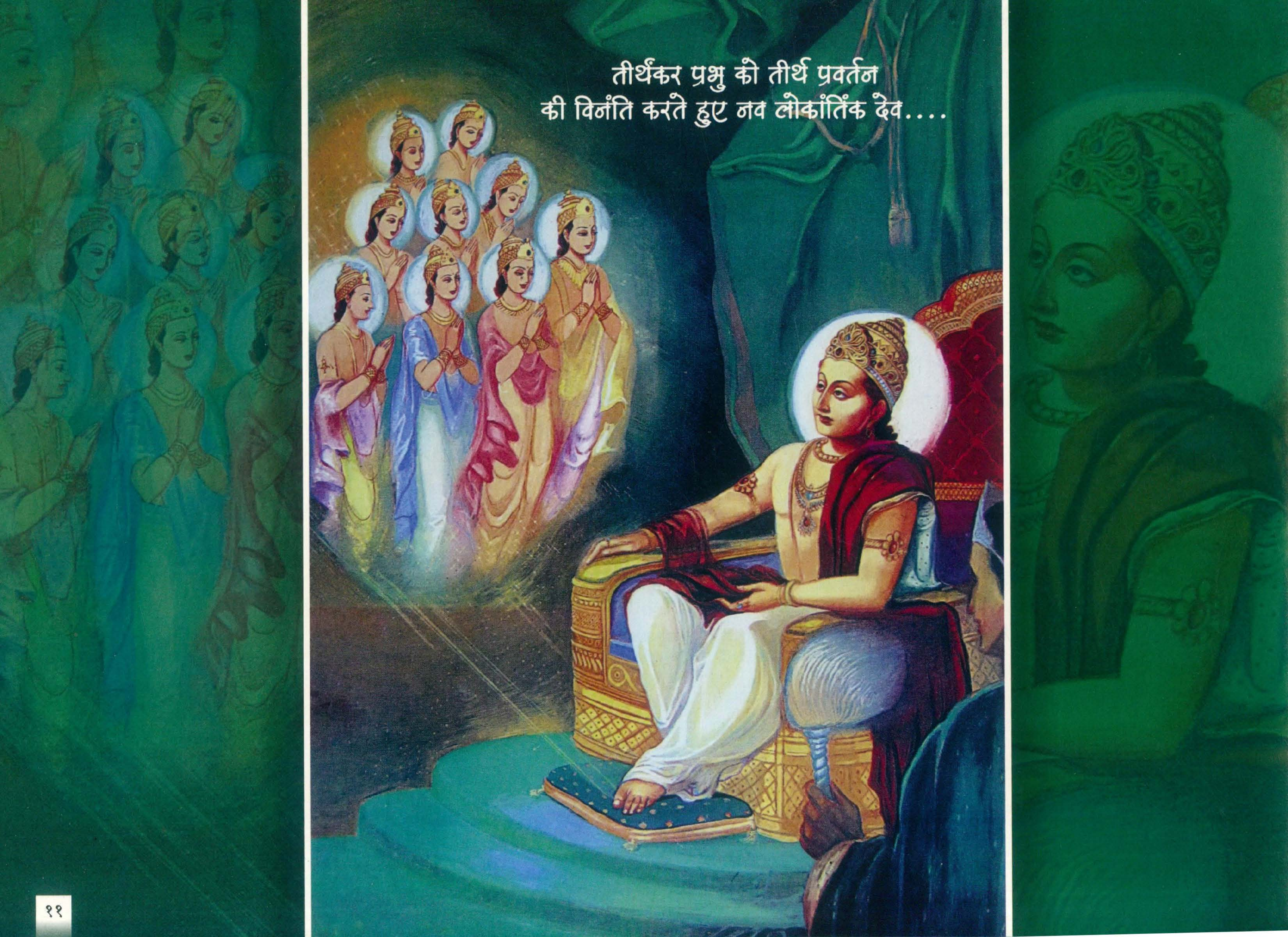

तीर्थंकर प्रभु को तीर्थ प्रवर्तन
की विनंति करते हुए नव लोकांतिक देव....

नव (नौ) लोकांतिक देव.....

अब इस कृष्णराजी के आठ प्रतर में नौ लोकांतिक विमान हैं। उसमें अभ्यंतर पूर्व और उत्तर दिशा की कृष्णराजी बीच में अत्यंत तेजस्वी ''अर्चि'' नाम का प्रकाशमय विमान है। पूर्व दिशा के ही बाह्य और अभ्यंतर कृष्णराजी के बीच में दूसरा ''अर्चिमाली'' नाम का विमान कहा हैं। पूर्व और दक्षिण दिशा के अभ्यंतर कृष्णराजी के बीच में ''वैरोचन'' नाम का विमान कहा है। दक्षिण दिशा के बाह्य और अभ्यंतर कृष्णराजी के बीच चौथा ''प्रभंकर'' नाम का विमान हैं। दक्षिण और पश्चिम दिशा के अभ्यंतर कृष्णराजी के बीच में ''चन्द्राभ'' नाम का पांचवा विमान है। पश्चिम दिशा के बाह्य और अभ्यंतर कृष्णराजी के बीच में ''सूर्याभ'' नाम का छट्ठा विमान कहा है। पश्चिम और उत्तर दिशा के अभ्यंतर कृष्णराजी के बीच में ''शुक्राभ'' नाम का सातवाँ विमान है। तथा उत्तर दिशा के बाह्य और अभ्यंतर कृष्णराजी के बीच में ''सुप्रतिष्ठाभ'' नाम का आठवां विमान हैं। सर्व कृष्णराजीयों के मध्यविभाग के अंदर नौवा ''रिष्ट'' नाम का विमान श्री सर्वज्ञ जिनेश्वर परमात्माने कहा हैं।[१]

ब्रह्मलोक के अन्त में रहनेवाले होने से ये विमान लोकांतिक कहलाते हैं तथा लोकांतिक देव संबंधी होने के कारण से भी ये विमान ''लोकांतिक'' कहलाते हैं। वो ये ९ विमान घनवात (घनवायु) ऊपर रहते हैं। यह विमान एक पंक्ति में नहीं होने से इन विमानों का संस्थान एक समान नहीं हैं, इन विमानों से लोक का अंत असंख्य हजार योजन के बाद आता हैं।

इन ९ विमान के अन्दर अनुक्रम से (१) सारस्वत (२) आदित्य (३) वह्नि (४) वरुण (५) गर्दतोय (६) तुषित (७) अव्याबाध (८) आग्नेय और (९) रिष्ट नाम से ९ लोकांतिक देवगण निवास करते है।[२] अपने आचार के अनुसार ये सारस्वतादि सर्व लोकांतिक देवता स्वयं संबुद्ध ऐसे परमात्मा के दीक्षा का अवसर जानकर सावंत्सरिक दान देने की इच्छावाले बने श्रीमत् अरिहंत परमात्मा के चरणकमल में दीक्षा के एक वर्ष पहले अपने विमान से उतरकर उत्साहपूर्वक परिवार सहित सुज्ञ वे देव इस तरह से विनंति करते हैं कि ''हे जगत्परमेश्वर ! हे त्रिलोकीबन्धु ! भगवंत ! आप विजय प्राप्त करो ! आनंद प्राप्त करो ! और धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करवाओ (अर्थात् धर्मतीर्थ प्रवर्त्ताओ), जिससे तीर्थ सर्वलोक में सर्वलोगों को मुक्ति साम्राज्य के मार्ग में श्रेष्ठ कल्याणकर बनेगा।''

इन लोकांतिक देवों में अव्याबाध नाम के देव सामान्य पुरुष की आंख की बरौनी ऊपर बत्रीसपात्रबद्ध नाटक प्रगट कर सकते हैं और फिर भी उस पुरुष को कुछ विघ्न-बाधा नहीं होती है इस तरह की शक्ति श्री भगवती सूत्र के चौदहवें शतक के आठवें उद्देश्य में कहा गया हैं।[३]

श्री जिनेश्वर सर्वज्ञ भगवंतोंने इस लोकांतिक विमान में रहे देवों की स्थिति ८ सागरोपम की कही है। ये लोकांतिक देवता बड़े पुण्यशाली होते हैं शुभाशय वाले होते हैं, तथा एकावतारी होते हैं और आनेवाले जन्म में निश्चित ही मोक्ष में जानेवाले होते हैं। मतान्तर से ७-८ जन्म में भी जानेवाले कहा हैं।[४]

(१) संग्रहणी गाथा (२) (A) भगवती सूत्र, शतक-६, उद्देशा-५ (B) सप्ततिशतकस्थानप्रकरणम्-१४३ (C) विचारसार-१२४ (D) कृष्णराजीविमानविचार-१३ (E) तित्थोगाली पयन्ना-१०६५ (F) विचार सप्ततिका-५१ (G) प्रवचनसारोद्धार-१४४८ (H) पदार्थस्थापनासंग्रह-२४ (३) (A) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२७, श्लोक-२३७ से २४२ (B) भगवती सूत्र, शतक-१४, उद्देशा-८ (४) (A) ठाणांग सूत्र वृत्ति, स्थान-९, (B) श्रेणिक चरित्र (C) विचारसार-१२३ (D) लब्धिस्तोत्र ग्रंथ

150

"I say with conviction that the doctrine for which the name of Lord Mahavir is glorified now a days is the doctrine of Ahimsa. If anyone has practiced to the fullest extent and has propagated most the doctrine of Ahimsa, it was Lord Mahavira."

- Mahatma Gandhi

कल्पोपपन्न देवो के १० प्रकार....

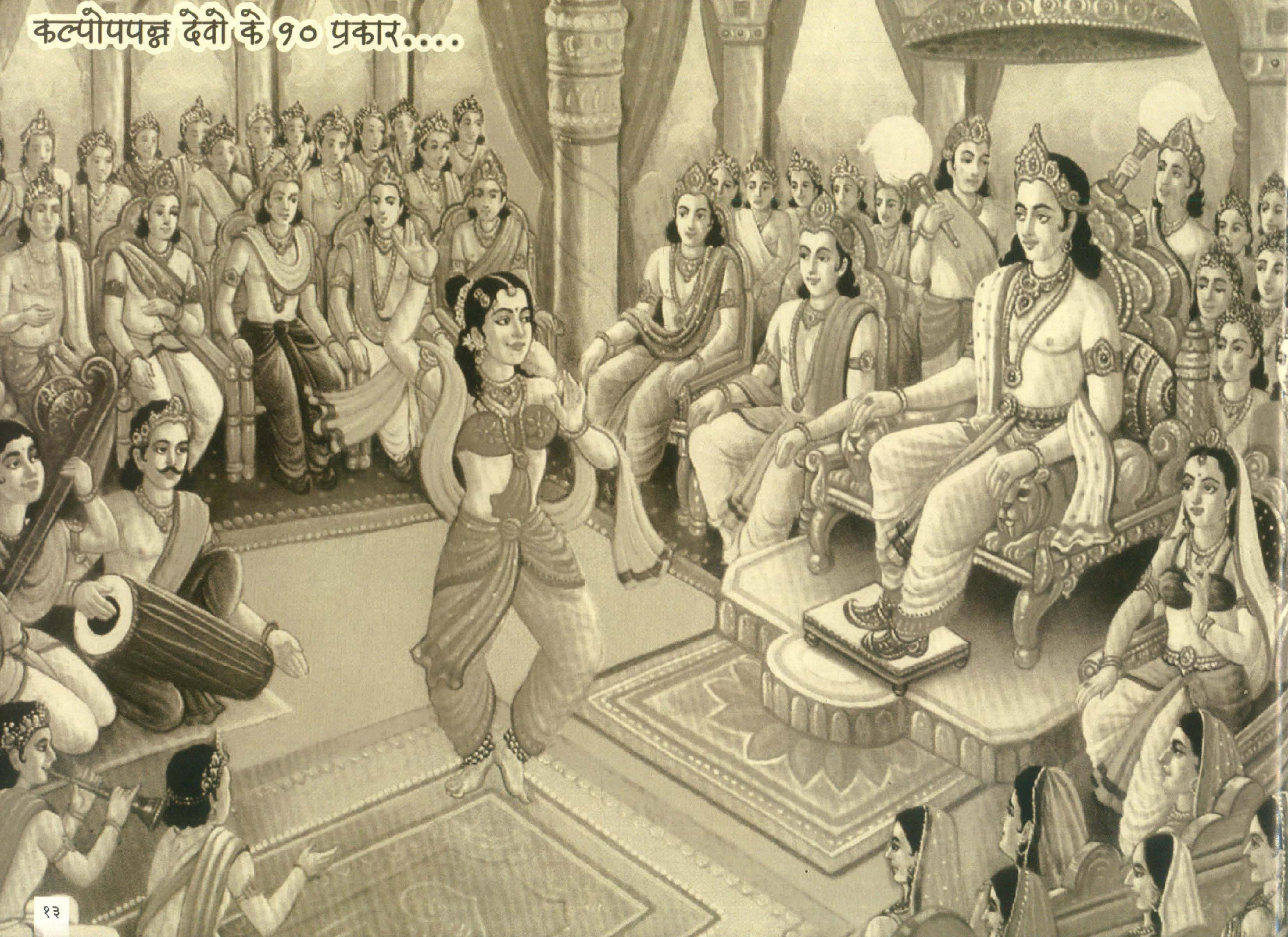

कल्पोपपन्न देवों के १० प्रकार.....

जैसे मनुष्यलोक में राजा, जागीरदार, महामात्य, नगरशेठ, पुरोहित-राज्यगुरु, फौजदार, सभासद और चंडालादि अलग-अलग प्रकार की व्यवस्था और कर्तव्य पूर्ण करनेवाले व्यक्ति होते हैं और उसके द्वारा राजा और प्रजा की सारी व्यवस्था, संरक्षण और सर्व व्यवहार सुचारु रूप से चलाया जाता है। उसी प्रकार देवलोक में भी इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंशक, पार्षद्य, आत्मरक्षक देव, लोकपाल देव, सैन्यदेव, प्रकीर्णक, आभियोगिक और किल्बिषिक इस तरह १० प्रकार[1] के देवों से भवनपति, वैमानिकादि चारों निकायों के देवलोक का तन्त्र सुव्यवस्थित रूप से चल रहा है। इनमें सभी देव नीचे बताए गए अपने अपने अधिकृत कर्तव्यों में सदा परायण रहते हैं।

इन दसों प्रकार के देवों की संक्षिप्त व्याख्या और कर्तव्य इस प्रकार है...

(१) इन्द्र - जिस देवलोक का स्वामित्व स्वयं प्राप्त किया होता है और वहाँ के वर्तमान सर्व देव जिसे अपने स्वामी के रूप में स्वीकार करते हैं वह "इन्द्र" कहलाता हैं। **(२) सामानिक** - कान्ति वैभवादि में इन्द्र के समान ऋद्धि जिन्हें प्राप्त हुई हो और जिनसे इन्द्र भी सलाह लेते है वे "सामानिक" कहलाते हैं। ये देव इन्द्र के समान रिद्धिवाले होते हैं, फिर भी ये इन्द्रों को अपना स्वामी मानते हैं। ये देव भी अपने विमानों में रहते हैं। **(३) त्रायस्त्रिंश**[2] - (एक इन्द्र की अपेक्षा के रूप में) जिनकी तैंतिस की ही संख्या होती है और जो इन्द्र के स्वामीत्व के विमान, देवादि सबकी चिंता करनेवाले होने से मन्त्री के साथ शान्तिक-पौष्टिक कर्म और पुरोहित-राज्यगुरु का काम भी करनेवाले होते हैं। उनकी संख्या ३३ ही होने से वे "त्रायस्त्रिंश" कहलाते हैं। इन देवों के भी स्वतंत्र विमान होते हैं। **(४) पार्षद्य** - पर्षदा में बैठने योग्य इन्द्र के मित्र समान देव "पार्षद्य" कहलाते है। यह पर्षदा अर्थात् सभा तीन प्रकार की होती है, जघन्य/मध्यम/उत्कृष्ट। अथवा बाह्य-मध्यम-आभ्यंतर। उनमें बैठनेवाले देव पार्षद्य कहलाते हैं। जिस तरह राजशासन में भी वर्तमान में लोकसभा, राजसभा और पार्ल्यामेन्ट (संसद) की व्यवस्था है उसी तरह यहाँ भी समझे। **(५) आत्मरक्षक** - जो इन्द्रों का रक्षण करनेवाले हों अर्थात् इन्द्र स्वयं शक्तिसंपन्न होने से प्रायः निर्भय होते हैं, फिर भी ये आत्मरक्षक देव अपने आचार का पालन करने के लिए हमेशा शस्त्र-बख्तरादि से सज्ज रहने के साथ इन्द्र के पास हमेशा खड़े रहते हैं। जिन्हें देखते ही शत्रु त्रस्त हो जाते हैं, उन्हें "आत्मरक्षक" देव कहते हैं। **(६) लोकपाल** - इन्द्र महाराजा की आज्ञा के अनुसार निश्चित विभाग का रक्षण करनेवाले और चोरी जारी आदि करनेवाले देवों को यथायोग्य दण्ड देनेवाले "लोकपाल" कहलाते हैं। (जिसे मनुष्य लोक में सुबा (पोलिस) की उपमा दी जा सकती है।) **(७) अनिक** - यह सैन्य रूप हाथी, घोडा, रथ, महिष-भैंस, पैदल, गन्धर्व और नाट्य इस तरह सात प्रकार की सैन्यदल आवश्यकता होने पर वैक्रिय शक्ति द्वारा रूपों को रचकर सैन्य का काम करनेवाले वे "अनिक" देव कहलाते हैं। **(८) प्रकीर्णक** - मनुष्य लोक में नागरिक लोगों के समान, प्रजा के समान देव "प्रकीर्णक" कहलाते हैं। **(९) आभियोगिक** - जो नौकर-चाकरादि के योग्य काम में लगाये जाते हैं वे दास के समान "आभियोगिक देव" कहलाते है। **(१०) किल्बिषिक** - मनुष्यलोक के चांडालों की तरह अशुभ-निंद्य कर्म करनेवाले "किल्बिषिक" देव कहलाते हैं।

भवनपति और वैमानिक में ये दस प्रकार के देव हैं। जबकि व्यंतर तथा ज्योतिषी देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल देवों के अतिरिक्त आठ प्रकार के देव हैं, अर्थात् पहले बताए गये १० प्रकार में समाविष्ट त्रायस्त्रिंश और लोकपाल देव व्यंतर और ज्योतिषी में नहीं हैं। वहाँ वैसी व्यवस्था की अपेक्षा नहीं है।

(१) (A) तत्त्वार्थ सूत्र-४/४ (B) तिलोयपण्णत्ति-३/६२-६३ (C) त्रिलोकसार-२२३ (२) (A) सर्वार्थसिद्धि-४/४/३३६/३ (B) महापुराण-२२/२५. (C) राजवार्तिक-४/४/३/४१२ (D) त्रिलोकसार-२२४

151

"Mahavira proclaimed in India that religion is a reality and not a mere social convention. It is really true that salvation can not be had by merely observing external ceremonies. Religion cannot make any difference between man and man."

- Dr. Rabindranath Tagore

"The Jains have written great masterpieces only for the benefit of the world."

- Dr. Hertel, Germany

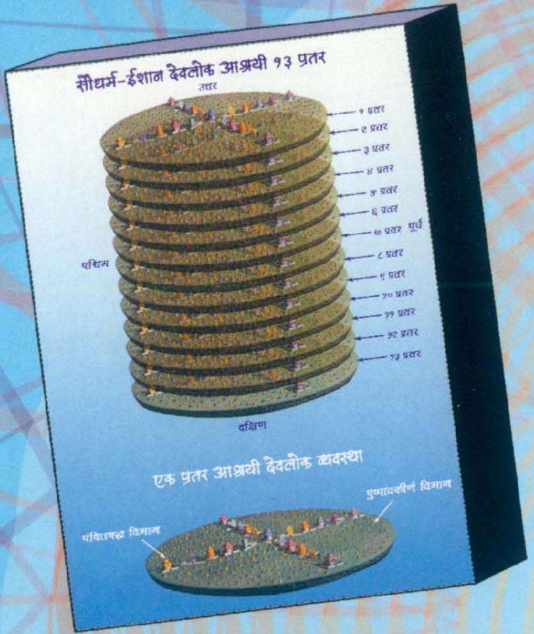

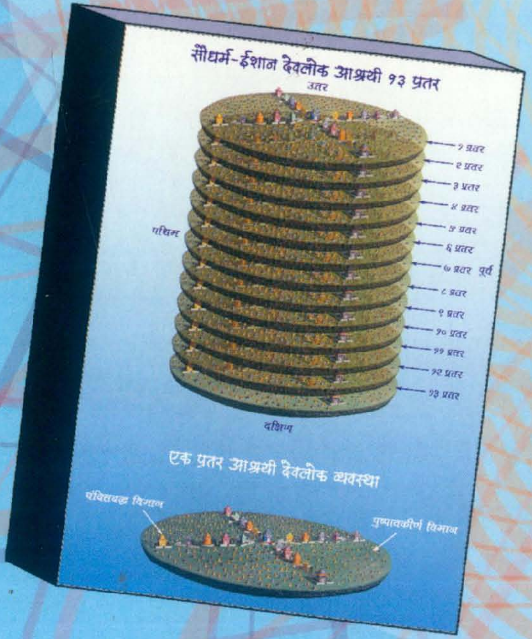

देवलोक के प्रतरों की व्यवस्था

देवलोक के प्रतरों की व्यवस्था किस तरह है ?.....

प्रतर अर्थात् क्या ? तो मनुष्यलोक में प्रवर्तमान घरों में १००-१०० से अधिक मंजिलें होती हैं । इन मंजिलों की गिनती करानेवाली अथवा विभाग करानेवाली जो तलप्रदेश-वस्तु (cilling) है वह देवलोक-आश्रयी शास्त्रीय परिभाषा में "प्रतर" शब्द से संबोधित होती है । परंतु विशेष यह है कि - मनुष्यलोक की मंजिलें-लकडी आदि की सामग्री के आलम्बन से स्थित है, जबकी देवलोक में स्थित प्रतर-स्तर स्वाभाविक रूप से बिना आलम्बन के ही स्थित है ।

परंतु विशेष इतना ज्ञातव्य है कि-देवलोक के प्रतर अलग और विमान भी अलग इस तरह दो अलग-अलग वस्तुएँ नहीं हैं परंतु समग्र कल्प रूप विमान के नीचे समान सतह पर होने से इस विमान के अधःस्तन तलभाग से ही (विमान के कारण ही) विभाग पडने से पाथडे समझना । ऐसे पाट-पीढे या स्तर कुछ कुछ दूरी (अंतर-आंतर) से तेरह की संख्या में स्थित हैं । उसमें प्रथम सौधर्म तथा ईशान देवलोक के मिलाकर १३ प्रतर (तलप्रदेश) वलयाकार में हैं, इसलिए दोनों देवलोक एक समान सतह में बिना व्याघात के जुडे हुए है और इसलिए वे संपूर्ण वलयाकार बनते हैं । यह देवलोक पूर्णेन्दु के आकार का होने से कहे गए १३ प्रतर वलयाकार है और यह भी तभी लिए जा सकते हैं कि जब दोनों देवलोक के प्रतर साथ में गिने जाएँ, इसलिए यह देवलोक महाविदेह क्षेत्र की ऊर्ध्व दिशा में सीधी सतह में होने से उस क्षेत्र की अपेक्षा से पूर्व महाविदेह की तरफ का और पश्चिम महाविदेह की तरफ का और मध्यभाग से आधा-आधा विभाग करें तो एक मेरु से दक्षिण दिशा का और एक मेरु से उत्तर दिशा के इस तरह दो विभाग होते हैं । उनमें दक्षिण विभाग के अर्ध वलयाकार खण्ड के १३ प्रतर सौधर्म के और उत्तर विभाग के अर्ध वलयाकार खण्ड के १३ प्रतर ईशानेन्द्र के जाने... ।

इसी प्रकार सनत्कुमार और महेन्द्र देवलोक के लिए समझे अर्थात् यहाँ भी दोनों देवलोक के मिलकर १२ प्रतर वलयाकार लेने के हैं, इनमें दक्षिण दिशा के १२ प्रतरों के स्वामी सनत्कुमारेन्द्र और उत्तर दिशा के १२ प्रतरों के मालिक माहेन्द्र का समझें । पाँचवें ब्रह्म देवलोक में खण्ड विभाग नहीं है अतः वहाँ ६ प्रतर वलयाकार में जानें । इसी तरह लांतक में ५, महाशुक्र में ४, और सहस्त्रार में भी ४ प्रतर वलयाकार में समझना। आरण + अच्युत इन दोनों के मिलकर आणत और प्राणत के जैसे ही ४-४ प्रतर वलयाकार में जानना । इस तरह १२ देवलोक तक ५२ प्रतर हुए । आगे चलते प्रत्येक ग्रैवेयक का १-१ प्रतर गिनने पर ९ ग्रैवेयक के ९ प्रतर होते हैं, और ५ अनुत्तर देवलोक का एक ही प्रतर, अतः कुल मिलाकर १० प्रतर पूर्व के ५२ प्रतरों में मिलाने से ६२ प्रतर वैमानिक देवलोक में जाने ।[1] प्रत्येक देवलोक के प्रतरों का अन्तर प्रायः हर एक कल्प में समान है (प्रायः कहने का कारण है कि - सौधर्म से ईशान कल्प के विमान ऊर्ध्वभाग में किञ्चित् ऊँचे रहते है ।) परंतु ऊपर ऊपर के देवलोक में प्रतरों की संख्या कम और विमानों की ऊँचाई अधिक होने से नीचे देवलोक के प्रतर संबंधी अंतर की अपेक्षा ऊपर के देवलोक के प्रतर का अंतर अधिक होता है ।

।। वैमानिक निकाय के प्रतरों की संख्या का यंत्र ।।

क्रम	वैमानिक निकाय नाम	प्रतर संख्या	क्रम	वैमानिक निकाय नाम	प्रतर संख्या	क्रम	वैमानिक निकाय नाम	प्रतर संख्या
१	सौधर्म देवलोक	१३	६	लांतक देवलोक	५	११	आरण देवलोक	४
२	ईशान देवलोक		७	महाशुक्र देवलोक	४	१२	अच्युत देवलोक	
३	सनत्कुमार देवलोक	१२	८	सहस्त्रार देवलोक	४	१३	९ ग्रैवेयक	९
४	माहेन्द्र देवलोक		९	आणत देवलोक	४	१४	५ अनुत्तर	१
५	ब्रह्म देवलोक	६	१०	प्राणत देवलोक		१५	कुल	६२

(१) देवेन्द्रनरकेन्द्रप्रकरणम्-१९

152

विद्या का तो मद हो ही नहीं सकता । हां, अविद्या का अवश्य हो सकता है । क्या, आम से निंबोली जैसे कटु फल उग सकते है ? नहीं । निंबोली तो नीम के पेड़ का फल है । ऐसे ही मद अर्थात् आम रूप विद्या का फल नहीं, परंतु वह तो नीम रूप अविद्या का ही फल है ।

आत्मा या परमात्मा को छोड़कर भौतिक पदार्थों का चयन तो वैसा ही है, जैसा हीरे को छोड़कर कंकरों का चयन, सत्पथ को छोड़कर कुपथ का चयन, संयम को छोड़कर संसार का चयन...!

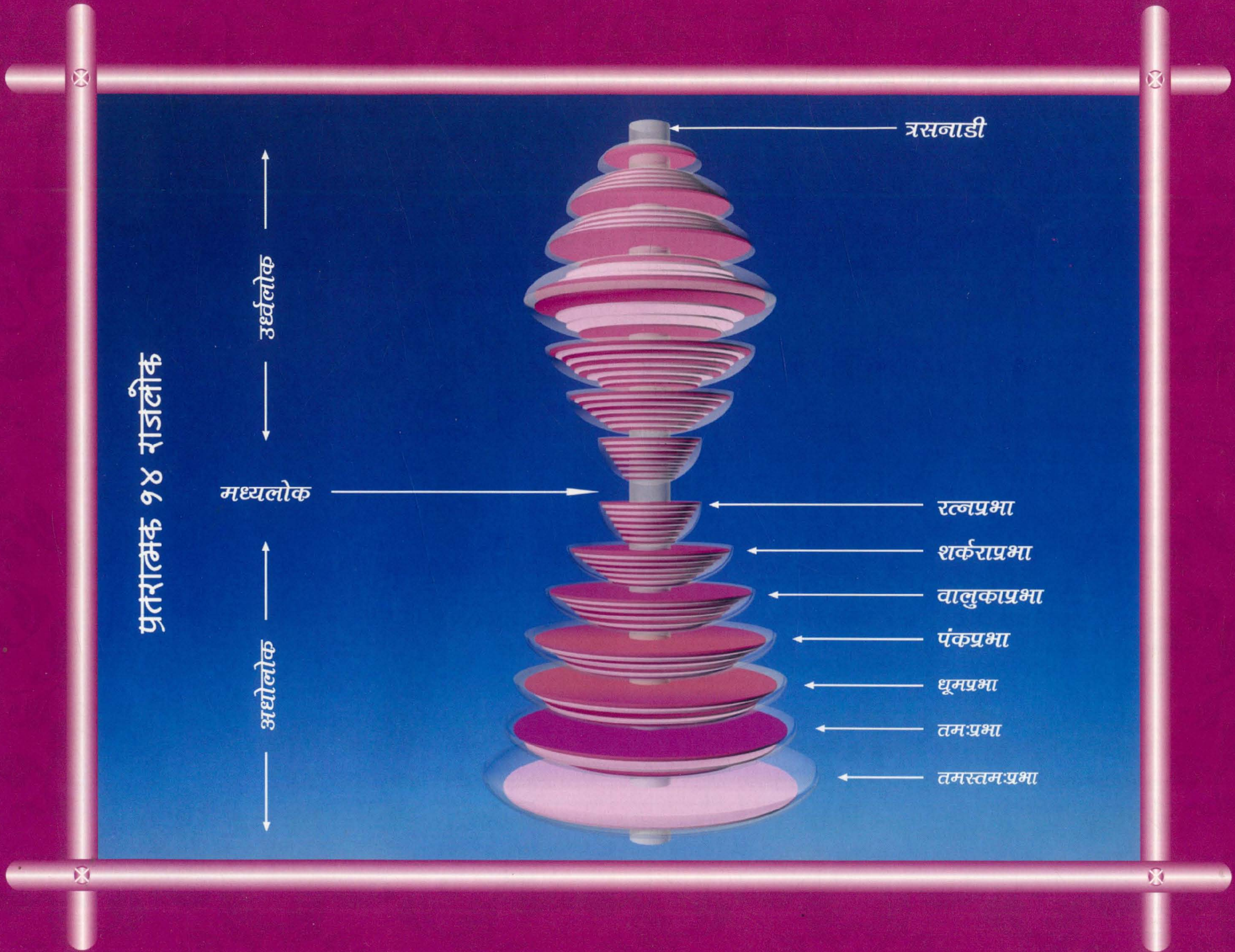
प्रतरात्मक १४ राजलोक
त्रसनाडी
ऊर्ध्वलोक
मध्यलोक
अधोलोक
रत्नप्रभा
शर्कराप्रभा
वालुकाप्रभा
पंकप्रभा
धूमप्रभा
तम:प्रभा
तमस्तम:प्रभा

६२ प्रतर के कुल ६२ इन्द्रक विमान तथा नामादि.....

पूर्व के प्रकरण में हमने पढ़ा कि देवलोक में कुल मिलाकर ६२ प्रतर हैं तथा उन सभी प्रतरों में जो मुख्य केन्द्र में (सेन्टर पोइन्ट पर) विमान होते हैं उन्हे ''इन्द्रक'' विमान कहते हैं, उनके भी नाम अब हम आपको बताते हैं...

१	उडु	१७	अंक	३३	चक्र	४९	पुष्प
२	चन्द्र	१८	स्फटिक	३४	गदा	५०	अलंकार
३	रजत	१९	तपनीय	३५	स्वस्तिक	५१	आरण
४	वल्गु	२०	मेघविमान	३६	नंदावर्त	५२	अच्युत
५	वीर्य	२१	अघ	३७	आभंकर	५३	सुदर्शन
६	वरुण	२२	हारिद्र	३८	गृद्धि	५४	सुप्रबुद्ध
७	आनन्द	२३	नलिन	३९	केतु	५५	मनोरम
८	ब्रह्मा	२४	लोहिताक्ष	४०	गरुड	५६	सर्वतोभद्र
९	कांचन	२५	वज्र	४१	ब्रह्म	५७	विशाल
१०	रुचिर	२६	अंजन	४२	ब्रह्महित	५८	सुमन
११	वंच (चंच)	२७	वरमाल	४३	ब्रह्मोत्तर	५९	सौमनस
१२	अरुण	२८	अरिष्ट	४४	लांतक	६०	प्रीतिकर
१३	दिश	२९	देव	४५	महाशुक्र	६१	आदित्य
१४	वैडुर्य	३०	सौम	४६	सहस्त्रार	६२	सर्वार्थसिद्ध
१५	रुचक	३१	मंगल	४७	आणत		
१६	रुचिर	३२	बलभद्र	४८	प्राणत		

सूचना - पहले बताया गया है कि कौन-कौन से देवलोक में कितने प्रतरों की व्यवस्था है, फिर भी सुगमता रहे तद्हेतु संक्षिप्त में इस प्रकार जाने... उपर बताए गये ६२ इन्द्रक उस उस प्रतरों में योजने का है, जैसे के सौधर्म-ईशान में १३ प्रतर होने से १३ इन्द्रक उसमें योजे, तत्पश्चात् १४ से २५ तक बारह विमान तीसरे-चौथे देवलोक के प्रतरवर्ती समझें। २६ से ३१ तक पांचवें देवलोक के, ३२ से ३६ तक छट्ठे देवलोक के, ३७ से ४० तक सातवें देवलोक के, और ४१ से ४४ तक के विमान आठवें देवलोकाश्रयी जानें। ४५ से ४८ तक के विमान नवमें-दशवें देवलोक में, ४९ से ५२ तक के आरण-अच्युत देवलोक के, ५३ से ६१ तक के ९ ग्रैवेयक के और ६२ वाँ विमान अनुत्तर देवलोक में सर्वार्थसिद्ध प्रयोजें। इस तरह इन्द्रक विमानों के नाम जानना...।

कहा जाता है कि इस १४ राजलोक में (ब्रह्मांड में) पहले नरक के प्रथम प्रतर में आये हुए ऐसे सीमन्तक नामक इन्द्रक नरकावास, मनुष्यक्षेत्र (अढाई द्वीप), उडु नामक विमान (जो उपर ही प्रथम नं. में बताया गया है) और सिद्धशिला आदि चारों वस्तुएँ ४५ लाख योजन प्रमाण युक्त है। तथा सातवें नरक के अंतिम प्रतर में अप्रतिष्ठान नरकावास, अनुत्तर कल्प में स्थित सर्वार्थसिद्ध नामक विमान, पालक यान विमान और जंबूद्वीप यह चारों वृत्त वस्तुएँ एक लाख योजन प्रमाण युक्त हैं। अर्थात् समान हैं।

एक बात सदा याद रखना...
पानी पीने के लिए हर बार नई प्यास चाहिए तो ही पानी पिया जा सकेगा... आगे बढ़ने के लिए हर बार नई आस चाहिए तो ही आगे बढ़ा जा सकेगा... और सीखने के लिए हर बार नई जिज्ञासा चाहिए तो ही नया सीखा जा सकेगा।

साधकों से साधना के विषय में उन्हें निजी अनुभव, साधना मार्ग और सिद्धि आदि के स्वरूप को सुन या जान लेने से उसके प्रति आकर्षण बढ़ेगा और कोई मार्ग भी अवश्य सूझेगा, मगर सिद्धि की प्राप्ति या तत्त्व की अनुभूति तो स्वयं साधना किये बिना असंभव है।

मूल स्वरूप
वैक्रिय स्वरूप

देवों का उत्तरवैक्रिय शरीर.....

"वैक्रियमिति-विशेषा-विविधा क्रिया सहजशरीर-ग्रहणोत्तरकालमाश्रित्य क्रियते इति उत्तरवैक्रियम् ।" स्वाभाविक-भवधारणीय शरीर ग्रहण रहित समय में विविध प्रकार की क्रिया-आकृति करनेवाले शरीर को "**उत्तरवैक्रिय**" शरीर कहा जाता हैं ।[1]

देवों का यह उत्तरवैक्रिय शरीर लब्धिप्रत्ययिक, तद्भवाश्रयी प्राप्त शक्तिवाला होता है । पूर्व में (उपर में) कि गई व्युत्पत्ति के अनुसार इस उत्तरवैक्रिय शरीर की रचना अनेक प्रकार से इच्छानुकूल हो सकती हैं । एक होता हुआ अनेक हो सकता है, अनेक होते हुए एक हो सकता है, भूचर होते हुए खेचर हो सकता हैं, खेचर (गगनगामी) होते हुए भूचर भी तुरन्त हो सकता है । छोटे से बड़ा, बड़े से छोटा, भारी से हल्का, हल्के से भारी, दृश्य से अदृश्य, अदृश्य से दृश्य - इस तरह हरएक प्रकार की अद्भुत, भाँतिभाँति विविध और विचित्र क्रिया रूप आकृतियाँ बनानेवाला यह शरीर है और यह वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों से ही हो सकता है । यह शरीर स्व-काल पूर्ण होते ही विस्त्रसा पुद्गल के जैसे मुक्ति (विलीन, मृत्यु) पाने के स्वभाववाले होते हैं । इस उत्तरवैक्रिय शरीर की रचना उत्कृष्ट से एक लाख योजन प्रमाण की हो सकती है और इस उत्तरवैक्रिय शरीर की रचना का (उसका काल) उत्कृष्ट में उत्कृष्ट काल "**देवेसु अद्धमासो उक्कोसविउव्वणाकालो**" इस वचन से आधे मास (१५ दिन) का है । वह काल पूर्ण होते ही पुनः वह उत्तरवैक्रिय शरीर रचना पुनः विस्त्रसा पुद्गल के जैसे स्वतः लुप्त (विलिन) हो जाती है । तथा तुरंत ही भवधारणीय वैक्रिय शरीर धारण कर लेना पड़ता है । यदि उस काल पूर्व रचित उत्तरवैक्रिय शरीर की अनावश्यकता दिखाई दे और उसे विलिन करना हो तो उपयोग (बुद्धि) पूर्वक विलिन (लुप्त) भी कर सकता हैं ।

इस उत्तरवैक्रिय शरीर की रचना (धारण करना) यह नवग्रैवेयक तथा सर्वोत्तम ऐसे अनुत्तर विमानवासी देवों में नहीं हैं । साथ ही ज्यों अन्य देव जिनेश्वर भगवन्त के कल्याणकादि प्रसंग पर अथवा अन्य गमनागमनादि प्रसंग पर उत्तरवैक्रिय शरीर करके मनुष्यलोक में आते हैं, वैसे इन देवों को तथाप्रकार का कल्प ही ऐसा है कि उनको यहाँ आने का प्रयोजन होता ही नहीं है, परंतु वहां भी शय्या में पोढ्या थका (रहते हुए) नमस्कारादि करने रूप शुभ भावना करते है अतः अचिंत्य शक्ति होने पर भी प्रयोजनाभाव से "उत्तरवैक्रिय शरीर रचना नहीं है" ऐसा शब्द प्रयोग किया है । साथ ही वे वस्त्रांलकार रहित होते हैं । जन्म से ही वे अतिसुन्दर दर्शनीय और दशों दिशाओं को प्रकाशित करनेवाले होते हैं । साथ ही वहाँ प्रवर्तमान चैत्य प्रतिमाओं को शय्या में रह-रहकर साधु की तरह भक्तिभाव से पूजते हैं । वहाँ गीत-गान-नाटकादि कुछ भी नहीं होता है । यह उत्तर वैक्रिय शरीर जघन्य से अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण में होता है और उत्कृष्ट से १ लाख योजन प्रमाण होता है ।

(१) तिलोयपण्णत्ति-८/५९५/५९६

154

"O Arhan! You are equipped with the arrow of Vastuswarpa, the law of teaching, and the ornaments of the four infinite qualities. O Arhan! You have attained omniscient knowledge in which the universe is reflected. O Arhan! You are the protector of all the Souls (Jivas) in the world. O Arhan! The destroyer of kama (lust)! There is no strong person equal to you."

- Yajur Veda, Chapter 19, Mantra 14

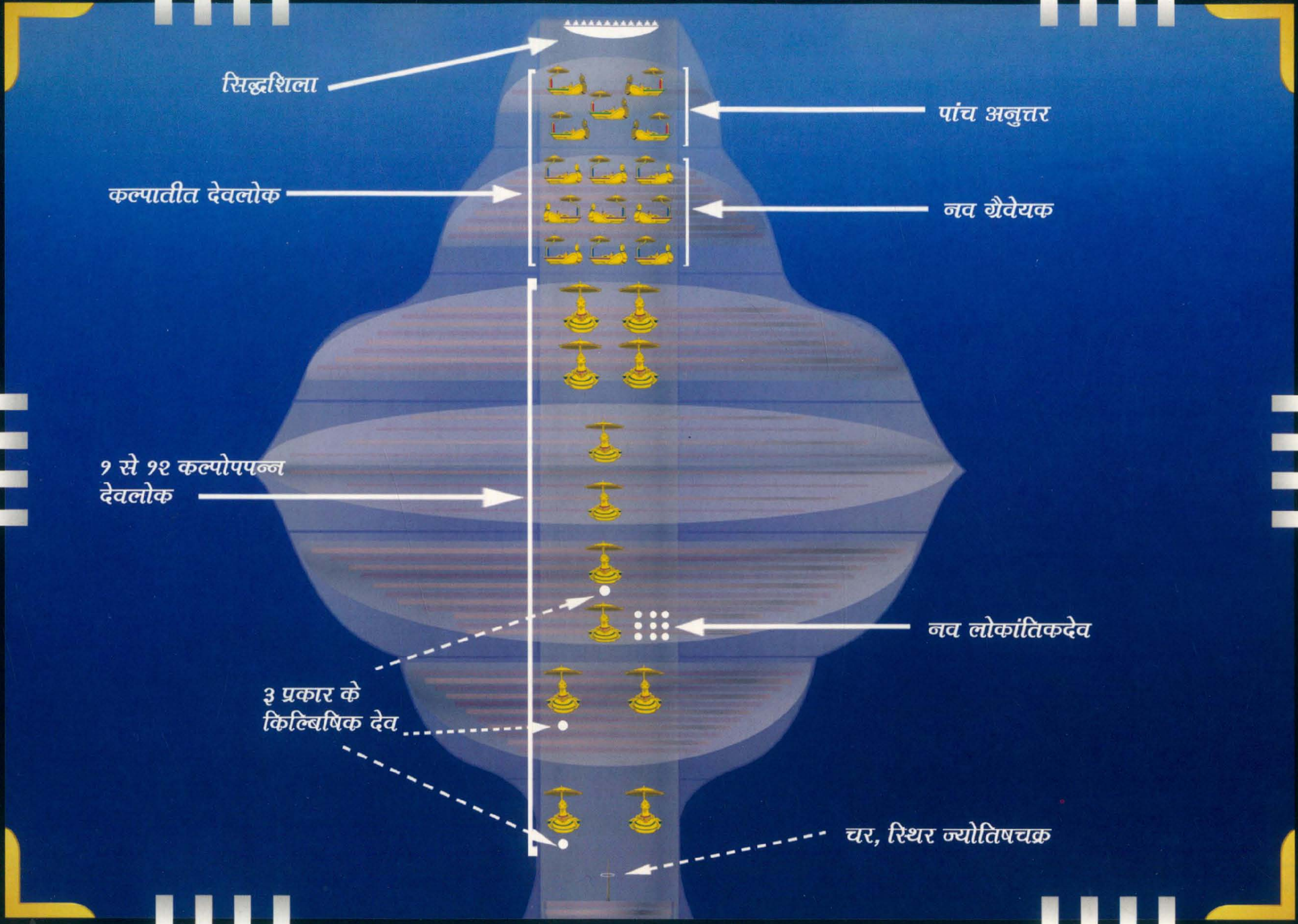
सिद्धशिला
पांच अनुत्तर
कल्पातीत देवलोक
नव ग्रैवेयक
१ से १२ कल्पोपपन्न
देवलोक
नव लोकांतिकदेव
३ प्रकार के
किल्बिषिक देव
चर, स्थिर ज्योतिषचक्र

किल्बिषिक देवों के प्रकार और उनके निवासस्थलादि.....

किल्बिषिक देव* अशुभ कर्म करनेवाले होने से प्राय: चण्डाल जैसे होते हैं। चण्डाल जैसा कार्य करनेवाली यह देव जाति अपने कुकर्म के उदय से दैव रूप पाकर भी कुकर्म करने की अवस्था को प्राप्त होते है तथा उत्तम देवों के स्थान से भी कई दूर रहना पड़ता हैं। इनके तीन प्रकार हैं, जिनमें सौधर्म और ईशान के अधोभाग पर (अर्थात् ज्योतिषी और वैमानिक निकाय के बीच) तीन पल्योपम की आयुष्यवाले ये किल्बिषिक बसते है। तीसरे सनत्कुमार के अधोभाग पर तीन सागरोपम की आयुष्यवाले और लांतक कल्प के अधोभाग पर तेरह सागरोपम की आयुष्यवाले किल्बिषिक बसते हैं। ये तीन ही उनके उत्पत्ति स्थान है। इस प्रकार की दैवजाति में उत्पन्न होने के कारण कुछ इस प्रकार हैं..... अर्हन् भगवन् की आशातना से (विराधना-अवज्ञा से), जमालि (एक साधु) की तरह पूर्व भव में देव-गुरु की निंदा करने से, धर्म के कार्यों को देखकर जलन करने से, उत्पन्न अशुभ कर्म के उदय से ये अधर्म कार्य करनेवाले किल्बिषिया देव के रूप में उत्पन्न होते हैं। यहाँ उन सभी कल्प के अधोस्थान पर किल्बिषिया देवगण हैं। अब यह अध: शब्द प्रथम प्रस्तरवाची नहीं है, क्योंकि उस-उस कल्प की प्रथम प्रस्तर की स्थिति के साथ उन देवों की उक्त स्थिति का मेलजोल (सम्बन्ध) ठीक नहीं बैठता। इसके अलावा अन्य विमान पर तो उनकी अधम स्थिति के कारण अस्तित्व सम्भवित भी नहीं हैं। अत: यहाँ अध: शब्द तत्स्थानवाची जाने, अर्थात् उस प्रत्येक देवलोक में साथ साथ नहीं लेकिन नीचे दूर-दूर निवास हैं। ये किल्बिषियों का जन्म तो लांतक से उपर तो होता ही नहीं है। सिर्फ अच्युतान्त तक दूसरे आभियोगिकादि (आभियोगिक अर्थात् दास-सेवक योग्य कार्य करनेवाले तथा आदि शब्द से सामानिकादि प्रकीर्णक) देवों का जन्म होता है। इससे आगे उनकी उत्पत्ति ही नहीं है, क्योंकि ग्रैवेयक-अनुत्तर देवों में अहमिन्द्रपणा होने से उनमें उनकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। अत: वहाँ छोटे-बड़े भेदों का अस्तित्व ही नहीं है, सभी एक सी समानता भुगतते हैं।[1]

* देवों में भी अधम जाति के देव हैं जो अस्पृश्यमाने जाते हैं। वहाँ भी अनादि काल से स्पृश्यास्पृश्य की व्यवस्था है तो फिर वह मनुष्यलोक में हो उसमें कौन-सा अचरज-आश्चर्य ? ऐसी सिद्ध व्यवस्था का सर्वांश रूप में नाश करने के भगीरथ प्रयत्न हो रहे हैं, फिर भी वैसे प्रयत्नों में कायम के लिए सफलता प्राप्त नहीं होगी। क्योंकि कर्म का सिद्धांत अचल होता है। तथा एक बात यह भी याद रहे कि अस्पृश्य देवों का निवास सबके साथ नहीं है, लेकिन स्वस्थान से अलग है साथ ही देवलोक से दूर और अधो भाग पर हैं।

(१) (A) गाथा सहस्री-३४० (B) प्रज्ञापना सूत्र, २०वाँ पद्य (C) भवभावना-४९५ (D) पंचवस्तुक-१६२६

जैनागमों में कहा गया है कि तीव्र प्रयत्न से निकला हुआ शब्द ३-४ समय में ही विश्व व्यापी बनते बनते विश्व के अंतभाग लोकांत तक पहुँच जाता है। इसी आगमिक बात को विज्ञान ने आज सहज सिद्ध कर दी हैं। जैसे कि अमेरिका से प्रसारित शब्द उसी समय में (सेकंड में) मुंबई वगैरह में भी सुनाई देते है।

च्यवन कल्याणक

जन्म कल्याणक

दीक्षा कल्याणक

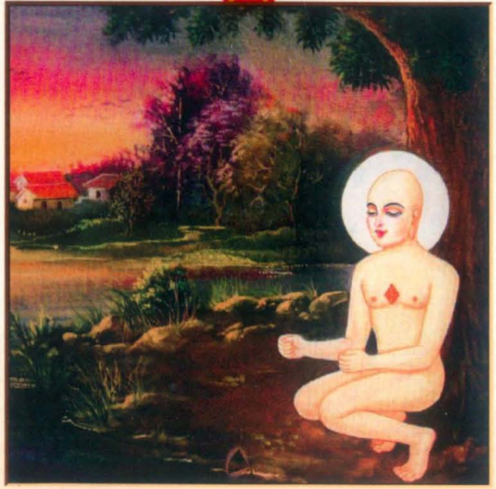

केवलज्ञान कल्याणक

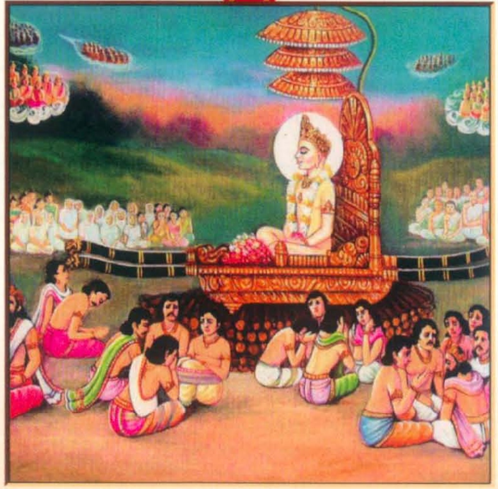

निर्वाण कल्याणक

देव किन कारणों से मनुष्यलोक में आते है ?.....

कहा जाता है कि तद्भव में तीर्थंकर परमात्मा रूप होनेवाली व्यक्ति जब देवलोकादि गति में से भरतादिक कर्मभूमि में च्यवकर प्रकर्ष पुण्यशाली माता की कुक्षि में गर्भ रूप उत्पन्न होती है, तब महानुभाव परमात्मा का जीव जगज्जंतु के कल्याणार्थ मनुष्यलोक में उत्पन्न हुआ है ऐसा अपने अवधिज्ञान से जानकर देवगण उनका ''च्यवन कल्याणक'' का महामहोत्सव मनाते हैं । पुण्यात्मा के गर्भ के प्रभाव से माता को गर्भवेदना, उदरवृद्धि, जन्मादिक के काल पर अशुचिपना आदि कुछ भी नहीं होता हैं ।

अनुक्रम से गर्भ पालन का यथायोग्य समय होते ही परमात्मा का (अवधिज्ञान पूर्वक) जन्म होता है, जो समग्र विश्व को तारक रूप होने से नारकी को भी क्षण के लिए सुख का कारण रूप बनता है । परमात्मा का जन्म होते ही सर्वत्र आनंद व मंगल होता है । इस प्रसंग पर इन्द्रादिक देव सुघोषा घंट द्वारा सभी देवों को खबर (संदेशा) करते हैं, तब सभी देव इकट्ठा होकर अपने अपने विमान द्वारा इसी लोक में जन्मगृह पर आकर, अपनी विद्याबल से प्रभु के प्रतिबिंब को उनकी माता के पास रखकर मूल शरीर को स्वयं ही ग्रहण करके अपना ही पंचरूप करने पूर्वक मेरुपर्वत पर जाकर अभिषेकादि महोत्सव करते हैं । इस प्रकार देव-देवियाँ अनेक प्रकार से और बड़ी धूमधाम से ''जन्म कल्याणक'' मनाने आते हैं।

यथाकाल वृद्धि पाते पाते प्रभु अपने भोगावलि कर्म क्षय होते ही, शाश्वत नियमानुसार लोकान्तिक देवों के आचार पालन निमित्त जय जय शब्द रूप तीर्थप्रवर्तन करने की सूचना मिलते ही जगत को एक साल तक प्रचुर (बहुत, विपुल) मात्रा में धनादिक दान देकर जगत की दरिद्रता दूर करके, जब दीक्षा लेने के लिए तैयार होते हैं, तब भी प्रभु का ''दीक्षा कल्याणक'' महोत्सव को मनाने के लिए सभी देव यहाँ (मनुष्यलोक में) आते हैं ।

इस प्रकार दीक्षा ग्रहण करने के बाद सिर्फ जगज्जंतु के कल्याणार्थक शुद्ध मुक्तिमार्ग का आदर्श बतलाने के लिए उच्चतम अहिंसा, उग्रतप, संयम का सेवन करते हुए, उपस्थित अनेक उपद्रवों को समभाव से वेदते, चार घातिकर्म का क्षय करके, वीतरागता को प्राप्त करके तेरहवें गुणस्थानक पर जब केवलज्ञानी बनते हैं, तब उसी ''केवलज्ञान कल्याणक'' की महिमा को गाने-मनाने के लिए देव यहाँ आते हैं ।

केवलज्ञानी तीर्थंकर सर्वज्ञ परमात्मा ३५ गुणयुक्त प्रभावक वाणी द्वारा विश्व के प्राणीयों को सच्चे सुख का मार्ग दिखलाकर, अनेकों का कल्याण करके या करवाके उसके द्वारा ही अपने बाकी (शेष) बचे चार भवोपग्राही कर्मो का क्षय करके निराबाधरूप से जब मोक्ष पाते हैं, उस समय उस महानुभाव परमात्मा के ''मोक्ष (निर्वाण) कल्याणक'' को मनाने देव यहाँ आते हैं । इस प्रकार पाँचो कल्याणक मनाने देव इस मनुष्यलोक में अवतरते हैं ।

इसके अतिरिक्त भी किसी महर्षि के महान् तप के प्रभाव से आकर्षित होकर उनका महात्म्य बढ़ाने के लिए अथवा वन्दन-नमस्कारादि के लिए, साथ ही जन्मान्तर के स्नेहादिक के कारण अर्थात् मनुष्यादिक की स्त्री पर किसी रागवश अथवा द्वेषबुद्धि से प्रेरित (संगमादिक जिस प्रकार आए थे वैसे) इह लोक में (इस धरती पर) आना पड़ता हैं । इस तरह पूर्व भव के किसी स्नेह के बन्धन से ग्रस्त बने देव अपने किसी मित्र के सुख के लिए अथवा तो किसी दुश्मन के दुःख के लिए नरक में भी जाते हैं ।[१]

(१) (A) चैत्यवंदन भाष्य - संघाचार टीका (B) बृहत्संग्रहणी ग्रंथ

156

अगर तुम्हें कोई भलाई का काम करना हो तो उसे टालो मत, आज और अभी ही कर लो क्योंकि काल और भाव का कोई भरोसा नहीं है तथा यदि तुम्हें आज कोई बुराई का काम करना हो तो उसे कल नहीं बल्कि परसों पर टालो, क्योंकि बुराई को टालना ही श्रेयस्कर हैं, तुम्हारे खुद के लिए भी और दुसरों के लिए भी ।

R-3636

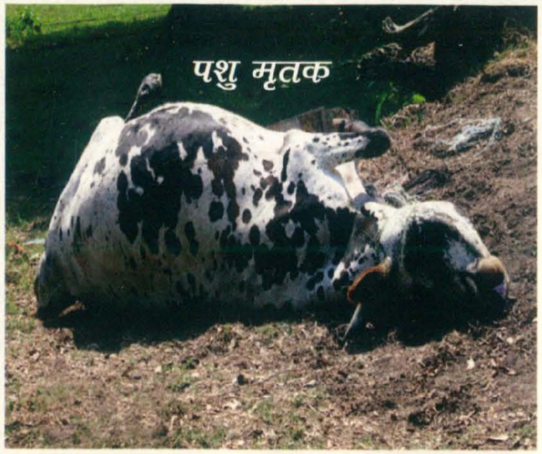

किन कारणों से देव मनुष्यलोक में नहीं आते है ?.....

157

जब देवलोक में देव उत्पन्न होते हैं तब देवलोकवर्ती अत्यन्त सुन्दर देवांगनाओं में नवीन प्रेम (दिव्यप्रेम) संक्रान्त (प्रवेश भावयुक्त) बनता है। अति मनोहर देवियों के सुन्दर शब्द-रूप-रस-गंध और स्पर्श के विषय अति सुखकर और मनोज्ञ होने से देव उसमें अत्यन्त आसक्त बनते हैं, अतः इच्छा मात्र से ही स्वर्ग संबंधी अत्यन्त सुन्दर रूप-रस-स्पर्श-गंध तथा शब्दों में उत्पन्न होने के साथ ही प्रसक्त होते हैं। इसलिए जिनका स्वकर्तव्य समाप्त नहीं हुआ अर्थात् उन्हें वहाँ ऐसा विषयादिक सुख मिलता है कि स्नान करके तैयार हो जाएं इतने में ही नाटकप्रेक्षणादिक का मन होता है और यह सुख पूर्ण हुआ न हुआ वहाँ तो दूसरे अनेक सुखों में वे तल्लिन बनते जाते है। इस प्रकार वे देव कदाचित् अपने पूर्वजन्म के उपकारी कुटुम्ब-परिवार, गुरु आदि से मिलने, अगर उन्हें अपनी सम्पत्ति भी बताना चाहें, परन्तु जन्म के बाद यहाँ तुरन्त आनेवाले देवों को वे देवियाँ उपस्थित होकर उन्हें प्रेमयुक्त ताने मारकर (उपहास द्वारा) लज्जित करके हावभाव से पुनः येन केन प्रकारेण अपनी और आकर्षित करती हैं, तदनन्तर देव वहाँ सुख में तल्लीन हो जाते हैं और इन्ही कारणो से देवगण अशुभगन्ध युक्त इस मनुष्यलोक में आना भूल जाते हैं।

प्रश्न : यहाँ अशुभगन्धयुक्तपणा किस तरह होता है ?

उत्तर : मनुष्यलोक के मनुष्य, तिर्यंचादि के मृत-कलेवरों में से तथा मूत्र-पुरिषादि में से उत्पन्न अशुभ गन्ध जब (श्री अजितनाथ भगवान आदि के समय में मनुष्य जब अधिक होते हैं तब मृत कलेवरादि का प्रमाण (मात्रा) अधिक शक्तिशाली होता है तब गन्ध का प्रमाण भी) अधिक बनता है, तब यह गंध पांचसौ* योजन तक अथवा तो चारसौ योजन तक ऊँची जाती है। तथा पृथ्वी की चारों और दुर्गन्धयुक्त वातावरण हमेशा रहता होने से देव इस मनुष्यलोक में आने का पसंद नहीं करते है। वे अपने स्वर्गीय सुख का आनन्द छोड़ के यहाँ भला आवे भी क्यों ?

सिर्फ पीछे बताए गए अनुसार कल्याणकादि के विशिष्ट प्रसंग पर सदा काल से चले आते नियमानुसार परमात्मा के पुण्य प्राग्भार से - प्रभाव से ही देवगण इस मनुष्यलोक में आते हैं।

★ गन्ध के पुद्गल ऊँचे नौ योजन तक ही जाते हैं। परन्तु यहाँ जो पांचसौ योजन प्रमाण बताया गया है तो उसके लिए इस तरह समझना हैं कि यहाँ से जो गंध के मूल पुद्गल ऊपर गये हैं वे अपान्तराल से ऊपर आये हुए अन्य पुद्गलों को अपनी गंध से वासित करते हैं, तब वासित बने हुए ये नए पुद्गल और ऊपर जाकर अन्य पुद्गलों को वासित करते हैं। इस प्रकार अन्योन्य वासित पुद्गलों में उतने योजन तक गन्ध जाने का सम्भव समझ ले।

उपदेशमाला-कर्णिका टीका में तो ८०० से १००० योजन तक गन्ध जा सकती है ऐसा बताया है।

"I have no desire for material things. Like Jina I want to establish peace within myself."

- Yoga Vasishta, Chapter 15, Sloka 8 the saying of Rama

"We learn from scriptures (Sashtras) and commentaries that Jainism is existing from begin-ningless time. This fact is indisputable and free from difference of opinion. There is much historical evidence on this point."

- Lokamanya Bala Gangadhar Tilak

।। देवों की तथाविध भवप्रत्ययिक संपत्ति....।।

देवों का जन्म, मनुष्य आदि के जन्म की तरह गर्भावास में रहकर होता नहीं है, लेकिन देवलोक में देवों का जो जन्मस्थान है जिसे ''उपपात सभा'' नाम से शास्त्रकार संबोधते हैं, इसी सभा में वस्त्र से आच्छादित विविध अनेक शय्याएँ होती है, जहाँ देव उत्पन्न होते हैं। इतना ही नहीं मनुष्य की तरह इन्हें बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था जैसी कोई भी अवस्था आती नहीं है। लेकिन वहाँ उत्पन्न होने के बाद एक ही अंतर्मुहूर्त में सभी पर्याप्ति पूर्ण करके युवा-तरुण अवस्थावाले बन जाते हैं। यह अवस्था उन्हें जीवनपर्यंत रहती है। जन्म के बाद पूर्वोत्पन्न देव उन्हें स्नान कराने के लिए ''अभिषेक सभा'' (स्नानागार) में ले जाते हैं। स्नानादिक क्रिया पूर्ण होते ही उन्हे ''अलंकार सभा'' में ले जाया जाता है, जहाँ देव सुन्दर-दिव्य वस्त्र तथा उत्तम एवं श्रेष्ठ अलंकार पहनाते है। इस प्रकार सुंदर वस्त्रालंकार से सुशोभित बनकर चौथी ''व्यवसाय सभा'' में ले जाते हैं, जहाँ विशाल पुस्तक भण्डार रहता है। इस भण्डार को इनके आगे खोल दिया जाता हैं और इसे पढ़कर देवलोक के योग्य विधि-नियम, आचार-परम्परा तथा स्वकर्तव्य एवं फर्ज के ज्ञान से सुमाहितगार बनते हैं। इसके बाद वे कार्याकार्य के निर्णय तय करते हैं। व्यवसाय सभा में से निकलकर नन्दा नामक बावड़ी में जाकर स्नान करके पवित्र होकर, प्रचूर भक्तिपूर्वक जिनपूजा* करते हैं। तदनन्तर जहाँ भोग-उपभोग की अर्थात् अशनपानादिक की तथा मौज-शौक की और देवांगनाओं के योग्य विषयोपभोग की संपूर्ण सामग्री तैयार होती है, उसी ''सुधर्मसभा'' में वे जाते हैं और वहाँ देवलोक संबंधी दिव्य भोग में लीन (मग्न) होकर अपना समय व्यतीत करते हैं।

उपर्युक्त पांच प्रकार की सभाएँ अनेक देवों की राजधानियों में होती हैं। तथा हरेक की अपनी अपनी बाह्य-मध्यम तथा अभ्यंतर ये तीन तीन प्रकार की पर्षदा भी होती है। विभिन्न देवों की ये त्रिपर्षदाएँ विभिन्न नामों से अलंकृत हैं।

यह देवगण सर्व अंगों में, मस्तक में, कंठ में, हस्त में, कर्णादि अवयवों के विषे आभूषणों के धारण करनेवाले, सदाकाल अवस्थित यौवन धारण करनेवाले, निरोगी और समचतुरस्त्र संस्थानवाले होते हैं। यह देव भवस्वभाव से ही अनिमेष नयनवाले होते हैं तथा अपरिमित सामर्थ्य होने के कारण मन से ही सर्व कार्य सिद्ध करनेवाले होते हैं, और तो और अम्लान पुष्पमाला को धारण करनेवाले, जब भी पृथ्वी पर आते हैं तब जमीन को स्पर्श न करते ४ अंगुल अद्धर (ऊंचे) रहनेवाले, महान् संपत्ति, सौभाग्य, शातासुख को भुगतनेवाले तथा अर्धमागधी कि भाषा में बोलनेवाले होते हैं। तथा स्व-स्वकल्प, अवस्था के अनुसार विमानादिक के स्वामी बननेवाले और विकुर्वणादि अनेक लब्धि को धारण करनेवाले होते हैं।

★ ये सम्यग्दृष्टि देव के लिए ही समझे। मिथ्यादृष्टिदेव अपने आराध्य देव की विधि उपयोग में लाते हैं।

158

डॉ. पेरेलेक्सने अपनी मान्यतानुसार अपनी पुस्तक में वर्तमान विश्व का वर्णन किया है। इस वर्णन के आधार पर डॉ. पेरेलेक्स इस निष्कर्ष पर आये थे कि पृथ्वी गेंद जैसी गोल नहीं है, बल्कि थाली जैसी गोल, सपाट व स्थिर है।

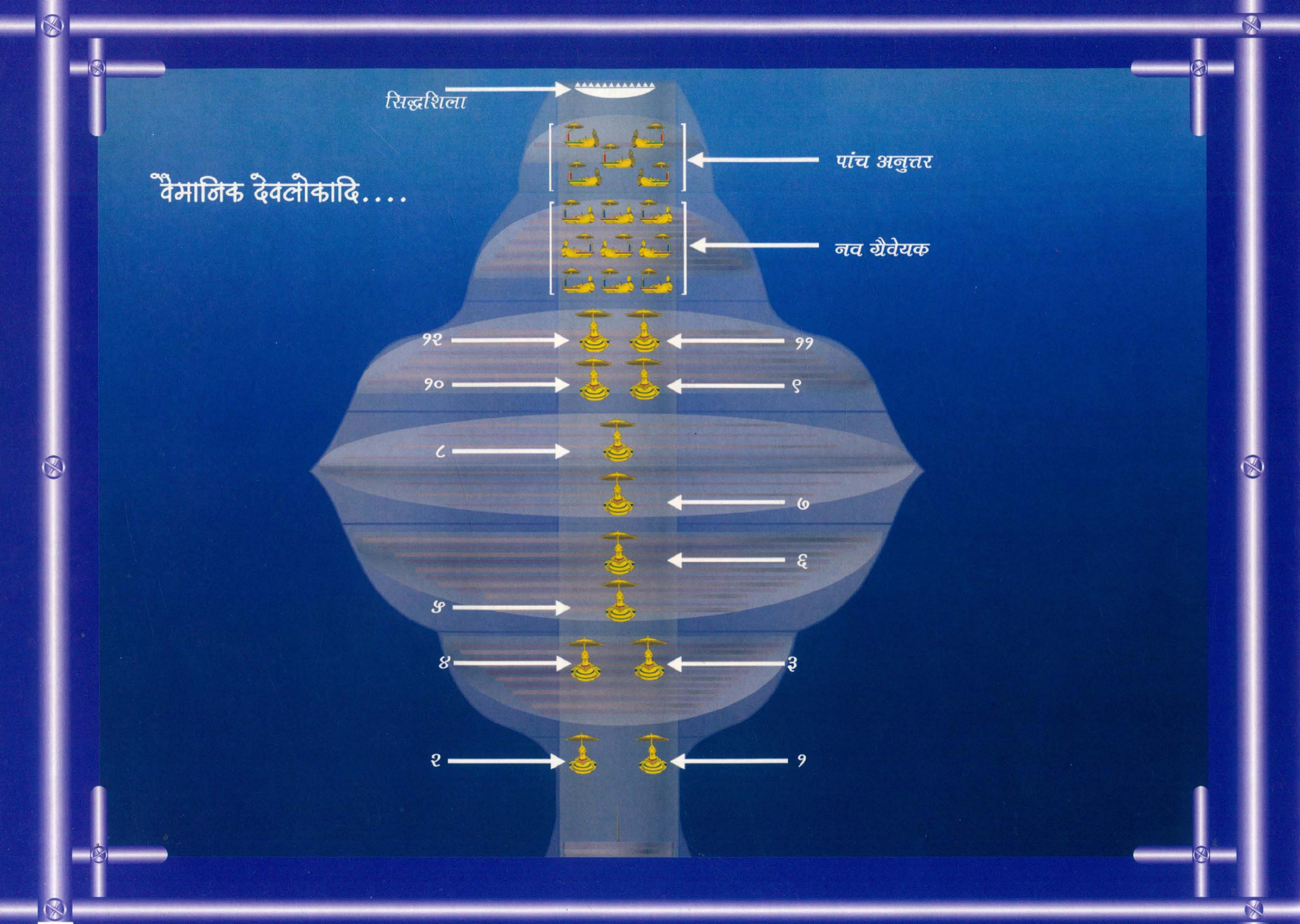
वैमानिक देवलोकादि....
सिद्धशिला
पांच अनुत्तर
नव ग्रैवेयक
१२
११
१०
९
८
७
६
५
४
३
२
१

वैमानिक देवलोक के विमानों का संख्या-दर्शक यंत्र.....

प्रिय मित्रो ! इस १४ राजलोक रूप ब्रह्मांड में रहे हुए मध्यलोक (तिर्च्छालोक) के उपर आये हुए ज्योतिष विमानों से असंख्यात योजन उपर जाने के बाद विमानवासी देवों के वैमानिक देवलोक (सौधर्मादि-१२, ९ ग्रैवेयक तथा ५-अनुत्तर) की शुरुआत होती है, इस प्रत्येक देवलोक में देवों के विमान कैसे और कितने हैं... यह जानने के लिए चलो देखते हैं नीचे दिया गया कोष्टक...

क्रम	कल्प के नाम	त्रिकोण संख्या	चतुष्कोण संख्या	वृत्त संख्या	आवलिकागत कुल संख्या	पुष्पावकीर्ण संख्या	सर्व संख्या
१	सौधर्म देवलोक	४९४	४८६	७२७	१,७०७	३१,९८,२९३	३२,००,०००[१]
२	ईशान देवलोक	४९४	४८६	२३८	१,२१८	२७,९८,७८२	२८,००,०००
३	सनत्कुमार देवलोक	३५६	३४८	५२२	१,२२६	११,९८,७७४	१२,००,०००
४	माहेन्द्र देवलोक	३५६	३४८	१७०	८७४	७,९९,१२६	८,००,०००
५	ब्रह्मलोक देवलोक	२८४	२७६	२७४	८३४	३,९९,१६६	४,००,०००
६	लांतक देवलोक	२००	१९२	१९३	५८५	४९,४१५	५०,०००
७	महाशुक्र देवलोक	१३६	१३२	१२८	३९६	३९,६०४	४०,०००
८	सहस्त्रार देवलोक	११६	१०८	१०८	३३२	५,६६८	६,०००
९	आणत देवलोक	९२	८८	८८	२६८	१३२	४००
१०	प्राणत देवलोक						
११	आरण देवलोक	७२	६८	६४	२०४	९६	३००
१२	अच्युत देवलोक						
१३	१-२-३ अधो ग्रैवेयक	४०	३६	३५	१११	०	१११
१४	४-५-६ मध्यम ग्रैवेयक	२८	२४	२३	७५	३२	१०७
१५	७-८-९ ऊर्ध्व ग्रैवेयक	१६	१२	११	३९	६१	१००
१६	५-अनुत्तर	४	०	१	५	०	५
	कुल	२,६८८	२,६०४	२,५८२	७,५७४	८४,८९,१४९	८४,९७,०२३[२]

(१) बृहत्संग्रहणी ग्रंथ/गाथा-११७-११८-११९ (२) (A) चैत्यवंदन महाभाष्य-६४४ (B) समवायांग सूत्र-८४

159

समयः जिनशासन के महापुरुषों द्वारा सेकंड़ से भी बारिक समय का निरूपण किया गया है तब लोग बोलते थे कि सेकंड़ से बारिक समय हो ही नहीं सकता, परंतु जब अमेरिका द्वारा सेकंड़ का हजारवां भाग दिखा दे वैसी घडियाल की शोध की... तब लोगों ने मुंह में अंगुली डाल दी... अर्थात बड़ा आश्चर्य व्यक्त किया... परंतु यह बात तो जिनशासन घंट बजा-बजा कर कहते आया है की सेकंड़ के असंख्यात वे भाग को "समय" कहा जाता है।

सुदर्शन
सुप्रतिबद्ध
मनोरम
सर्वतोभद्र
विशाल
सुमन
सौमनस
प्रीतिकर
नंदिकर

नव ग्रैवेयक के ९ विमान.....

- कल्पातीत देवों के शास्त्रों में दो प्रकार बताए गए हैं...(१) ग्रैवेयक (२) अनुत्तर...
- इस ग्रैवेयक विमानों के ९ प्रकार बताए गए हैं... जिसके नाम इस प्रकार है (१) सुदर्शन (२) सुप्रतिबद्ध (३) मनोरम (४) सर्वतोभद्र (५) विशाल (६) सुमन (७) सौमनस (८) प्रीतिकर और (९) नंदिकर...।[1]
- ग्रैवेयक का तात्पर्य क्या है ? यह प्रश्न जो आपके मन में हो, तो सुनिएँ..... समग्र १४ राजलोक ''वैशाख संस्थान'' में स्थित पुरुष के आकार में है। जिस तरह पुरुषों के गले में, वक्षःस्थल में, कटि आदि स्थानों में आभूषण होते हैं, वैसे १४ राजलोक रूपी पुरुष के आभूषण कौन से हैं ? तो जो विमानादि हैं वे ही उसके आभूषण रूप हैं, उसमें नव ग्रैवेयक के विमान १४ राजलोक रूपी पुरुष के गले के स्थान में आभूषण रूप में विद्यमान होने से उसे ''ग्रैवेयक'' कहा जाता है। ग्रैवेयक शब्द की व्युत्पत्ति भी वही प्रगट करती है।
- ये नव (नौ) ग्रैवेयक खड़े किये गये दण्ड की तरह एक के ऊपर एक स्थित हैं। अन्य ग्रन्थकार इन नौ ग्रैवेयकों का तीन विभागों में परिचय कराते हैं...। इनमें पहले तीन विमान को ''अधस्तन तीन'', मध्यम तीन को ''मध्यम तीन'' और ऊपर के तीन को ''उपरितन तीन'' इस तरह परिचय कराते हैं।
- इस नौ ग्रैवेयक के कुल विमान - ३१८ हैं। वह इस प्रकार से जानना... ६८ गोल, ८४ त्रिकोण, ७२ चौरस और ९३ पुष्पावकीर्ण रूप में हैं। उसमें प्रथम आद्यत्रिक में गोल-३५, त्रिकोण-४०, चौरस-३६ मिलकर कुल १११ विमान पंक्तिगत हैं। मध्यमत्रिक में गोल-२३, त्रिकोण-२८, चोरस-२४ और पुष्पावकीर्ण-३२ मिलकर कुल - १०७ विमान होते हैं। ऊपरित्रिक में गोल-११, त्रिकोण-१६, चोरस-१२ और पुष्पावकीर्ण-६१ मिलकर कुल १०० विमान होते हैं।[2]
- प्रथम ग्रैवेयक का जघन्य आयुष्य-२२ सागरोपम और उत्कृष्ट आयुष्य २३ सागरोपम... इस तरह १-१ सागरोपम बढ़ाते हुए अंतिम नववाँ ग्रैवेयक का जघन्य आयुष्य ३० सागरोपम और उत्कृष्ट आयुष्य ३१ सागरोपम होता है।(अर्थात् बीच के मध्यम २ से ८ तक के विमानों की आयु स्वयं समझ लेना।)
- ग्रैवेयक के सर्व देवों का अस्तित्व अहमिंद्रत्व को प्राप्त होता है, अर्थात् सभी देवों का एक ही स्वरूप होता है, अतः उनमें कोई स्वामी-सेवक भाव होता नहीं है।
- यह ९ ग्रैवेयक के अंदर बसनेवाले जीव (देव) संपूर्ण विषय सेवन से भी रहित होते है। क्योंकि वह देव अल्प संक्लेशवाले होने से स्वस्थ और शांत होते हैं।

(१) (A) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२७, सूत्र-५३५/५३६ (B) प्रज्ञापना सूत्र, प्रथम पद, सूत्र-३८ (C) बृहत्संग्रहणी-१३४/१३५ (D) देवेन्द्रनरकेन्द्रप्रकरणम्-१३६ (E) त्रैलोक्यदीपिका-१३९ (२) (A) त्रैलोक्यदीपिका-१३० (B) प्रज्ञापना सूत्र, द्वितीय पद, सूत्र-२१०

"In conclusion let me assert my conviction that Jainism is an original system quite distinct and independent from all others, and that therefore it is of great importance for the study of philosophical thought and religious life in ancient India."

- Dr. Hermann Jacobi
(Quoted in his book Sacred Books of the East Ed. by F max Mueller Vol. XXII 1884)

"The Jainas have written great masterpieces only for the benefit of the world."

- Dr. Hertal

नव ग्रैवेयक तक कौन उत्पन्न हो सकता है ?.....

- लिंग साधु का हो अर्थात् रजोहरणादि रूप साधुवेषादि को धारण किया हो लेकिन मिथ्यादृष्टि हो तो वह भी उत्कृष्ट से नव ग्रैवेयक तक उत्पन्न हो सकता है...।

- कोई जीव जिनेश्वर भगवंत की अथवा कोई प्रभावित लब्धिधारी साधु की रिद्धि-सिद्धि, देव-दानव और मानवों से होते पूजा-सत्कारादि देखकर वह अपने मन में विचार करे कि मैं भी ऐसा साधुपणा लूँ तो मेरा भी पूजा-सत्कार होगा, ऐसा केवल ऐहिक सुख की इच्छा से (नहीं कि मुक्ति कि इच्छा से) कंचन-कामिनी के त्यागी ऐसे उस साधु की तरह ही साधुपणा को धारण करे, और साधु होने के बाद ऐसे अर्थात् इस प्रकार के उत्कृष्ट कोटि का संयम रखे कि मक्खि की पांख को भी किलामण होने न दे ऐसी सूक्ष्म रीत से जीवरक्षादि क्रिया करे, यद्यपि यह सब वह श्रद्धा रहित अर्थात् प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्यादि गुणों से विकल होने पर भी बाह्य दशविध चक्रवाल समाचारी की क्रिया का उत्कृष्ट रूप से यथार्थ आराधना करता होने मात्र से उसी क्रिया के बल पर (अंगारमर्दकाचार्य के जैसे) उत्कृष्ट से नव ग्रैवेयक तक उत्पन्न हो सकता हैं।

- मिथ्या क्रिया भी कितनी उच्च गति प्राप्त करा सकती है ! यह क्रियामार्ग की जो लोक अवगणना करते हैं वे इसका गहरा विचार करे और अगर मिथ्या क्रिया भी ऐसा फल दे सकती है तो सम्यक् क्रिया कैसा फल दे सके यह भी जरा सोचें...।

- मिथ्यादृष्टि भी नव ग्रैवेयक तक उत्पन्न हो सकता है, तो यह मिथ्यादृष्टि अर्थात् क्या ? तो मिथ्यात्व मोहनीय नाम की एक प्रकार की सत् सच्ची दृष्टि को आच्छादित करनेवाला कर्मविशेष के उदय से जीव की दृष्टि-विचारणा-श्रद्धा मिथ्या अर्थात् विपरीत हो जाती है तब उसे ''मिथ्यादृष्टि'' कहते हैं। जिस तरह धतूरा का बीज खानेवाला मनुष्य सफेद चीज को भी ज्यों पीली देखता है बस उसी तरह मोहनीय कर्म से आच्छादित दृष्टिवाला मनुष्य जिसमें देव के यथार्थ लक्षण न हो, उसमें देवत्व बुद्धि करता है, जिसमें गुरु के सच्चे लक्षण न हो उसे गुरु के रूप में स्वीकारता है, तथा जिसमें धर्म का वास्तविक लक्षण मिलता न हो ऐसे धर्म को धर्म के रूप में स्वीकारता है, यह व्यवहार से मिथ्यादृष्टि की स्थूल व्याख्या है।

- इसका सामान्य फलितार्थ यह हुआ की श्री सर्वज्ञ-वीतराग तीर्थंकरों से कथित जीव-अजीव-पुण्य-पापादि तत्त्वों को यथातथ्य रूप से या संपूर्ण रूप से न स्वीकारे, अर्थात् कि जो न्यूनाधिक रूप से स्वीकारे वह मिथ्यादृष्टि है। वीतराग के हरेक तत्त्व का स्वीकार करे, परंतु प्रस्तुत सूत्रोक्त में बताए गए एकाद पद या विषय का भी जो अस्वीकार करे तो वह भी मिथ्यादृष्टि है।[1]

(१) जइलिंग मिच्छदिट्ठि, गेवेज्ज जाव जंति उक्कोसं। पयमवि असद्दहंतो, सुत्तुतं मिच्छदिट्ठी उ ॥ (बृहत्संग्रहणी-१५५ गाथा)

161

थोड़े वर्षों पूर्व ही मेसूर लायब्रेरी में महर्षि भारद्वाज द्वारा रचित हस्तलिखित ग्रंथ मिला और उसके आधार पर बिगर पेट्रोल और वायु बिना भी विमान चल सकता है। उसकी प्रक्रिया लिखी थी... और उस प्रमाण से एक भारतीय युवकने उसका (वैसे विमान का) सर्जन किया तथा वो तत्कालिन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को भेंट दिया... ऐसी तो अनेक विद्याएं और प्रयोग इस आर्यदेश की भूमि में मौजुद थे और है।

५ अनुत्तरवासी देव....

५ अनुत्तरवासी देव.....

नव ग्रैवेयक से ऊपर असंख्य योजन जाने के बाद अनुत्तर नाम का प्रतर आता है, वहाँ सर्वोत्कृष्ट ऐसे ५ अनुत्तर विमान आये हुए हैं, जो कि मध्य में एक इन्द्रक विमान है तथा उसकी चारों तरफ १-१ ऐसे ४ विमान है।

इन्द्रक विमान की पूर्व दिशा में "विजय", दक्षिण में "वैजयन्त", पश्चिम में "जयंत" तथा उत्तर में "अपराजित" ऐसे नामों से विमान शोभित है तथा सबके बीच में सर्व अर्थ को सिद्ध करनेवाला "सर्वार्थसिद्ध" नामक विमान आया हुआ है।

विजयादि-४ विमानों के देवों का आयुष्य ३१-३२ सागरोपम का भी होता है, जबकि सर्वार्थसिद्ध विमान में तो देवो का आयुष्य अजघन्यानुत्कृष्ट ३३ सागरोपम का ही होता है।

प्रथम संघयणी, स्वयं उज्ज्वल संयम की आराधनावाले, अल्पभवी ऐसे भव्य जीवों की ही यहाँ उत्पत्ति होती है। तथा कर्मभूमि में उत्पन्न हुई, शुभाशयवाली, सम्यग्दृष्टि, शुभलेश्यावाली स्त्रियाँ (साध्वीजी) भी यहाँ उत्पन्न होती हैं।[१]

सर्वार्थसिद्ध विमान में तो जो १ भव में ही मोक्ष में जाने वाले होते हैं वे ही उत्पन्न हो सकते है, जबकि विजयादि ४ विमानों में तो संख्याता भवों को करनेवाले भी उत्पन्न हो सकते है।[२] इस सर्वार्थसिद्ध विमान में संख्याता देव ही उत्पन्न होते है, जबकि विजयादि-४ विमानों में तो असंख्याता देवों का अस्तित्व हैं।[३]

सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों को "लवसत्तमिया" कहकर पहचाने जाते हैं, क्योंकि अबद्धायुष्क उपशमश्रेणी में चढ़े हुए उन देवों को पूर्वभव में किए गए तप में अथवा ध्यानादि में यदि छट्ठ का तप अथवा सप्तलव प्रमाण ध्यान अधिक हुआ होता तो वे तद्भव से सीधे मोक्ष में ही चले गए होते, परन्तु उस प्रकार न होने से उपशमश्रेणी में कालधर्म पाकर शिवनगर-मोक्ष पहुँचने में विश्राम रूप में अनुत्तरदेवलोक में एकावतारी रूप में उत्पन्न होते हैं।[४] थोड़ा सा कम तप-ध्यान करने के परिणाम स्वरूप वहाँ से च्यवित होकर उसको पुनः गर्भावास का महान् दुःख फिर से एक ही बार सहन करना पड़ता है, क्योंकि वहाँ से देवगति से च्यवकर (अवसान होने पर, स्थानभष्ट्र होकर) उत्तम कुलों में जन्म लेकर, वहाँ संयम स्वीकार कर उसी ही भव में मोक्ष में चले जाते हैं।[५] ये देव निश्चय से सम्यग्दृष्टिवाले होते है। और वहां उनके उपपात शय्या पर जो चँदवा (चँदोवा) आदि होते हैं, उनके उपर अनेक भाँति के (प्रकार के) ३२-३२ मण वजनवाले तक बड़े बड़े मोती जो लटकते हैं, वे सब पवन के योग से जब आपस में टकराते हैं, तब उनमें से मधुर ध्वनियाँ-(नाद) निकलती हैं, वे ध्वनि उनको अनन्तगुण आनन्द देती हैं।

इस अनुत्तरवासी देवों में कोई भी देवों के बीच सेव्य-सेवक भाव नहीं होता है, तथा इस विमानों में बसनेवाले देव प्रायः करके विषयसेवन से रहित ही होते हैं, क्योंकि वहां वह भवस्वभाव से ही अल्प संक्लेशवाले तथा स्वस्थ एवं शांत होते हैं।[६]

अनुत्तरवासी देव एक करवट से शय्या में लेटे हुए द्रव्य-गुण-पर्याय की चिंतन की गंभीर विचारणा में समय व्यतित करते हैं। उनमें (सर्वार्थसिद्ध के) ३३ सागरोपमवाले देव साढे सोलह सागरोपम तक एक ही करवट से सोये रहते हैं। तत्पश्चात् एक बार करवट बदलकर शेष आयुष्य पूर्ण करते हैं।

(१) (A) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२, श्लोक-६४०/६४१ (B) प्रज्ञापना सूत्र-२३ वाँ पद. (२) (A) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२, श्लोक-६४२ से-६४४ (B) जीवाजीवाभिगम सूत्र-वृत्ति (C) योगशास्त्रवृत्ति (D) तत्त्वार्थ भाष्य, (E) "शतक" नामा पञ्चम कर्मग्रंथ (३) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२७, श्लोक-६४५ (४) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२७, श्लोक-६३७ (५) व्यवहारसूत्र, उद्देशा-५, सूत्र-१३३ (६) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२७, श्लोक-६१७

162

"The world is today perched on the edge of a devastating volcano. It seems as if it has learnt nothing from the tragedy of two world wars. It the volcano erupts it will destroy humanity and the whole fabric of civilization raised by it. There can be no doubt about it.

The only way out of this catastrophe is the message of peace brotherhood and Ahimsa preached by Lord Mahavira. It would be in the fitness of things if a mission of his followers visits the war-striken countries of Europe and America and delivers this message of peace and love to the people there."

- Shri Bhimsen Sachar

नारकी का तिरेंद्याकार

भवनपति का पल्याकार

व्यंतरदेवो का पटहाकार

(२ प्रकार से)

ज्योतिष का झल्लर्याकार

कल्पोपपन्न देवों का मृदंगाकार

सिद्धांत (आगम) में मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवलज्ञान ये पांच ज्ञान बताए हैं इन ज्ञानों में सभी ज्ञानों का समाविष्ट हो जाता है। एक से एक बढ़कर (चढियाते) हैं। इनमें से पहले दो ज्ञान हरेक जीवमात्र में न्यूनाधिकपने से होते ही हैं और इतनी भी ज्ञान चेतना के कारण ही जीव, जीव रूप से पहचाना जाता है, अन्यथा वह अजीव ही है। साथ ही अवधि आदि ३ ज्ञान विशिष्ट गुण की भूमिका पर पहुँचने के बाद ही प्राप्त होता हैं। इनमें अंतिम केवलज्ञान तो १४ राजलोक तथा अलोक के सभी पदार्थों को आत्म साक्षात् दिखलानेवाला है, अस्तु। अब यहाँ पर मात्र अवधिज्ञान का विषय ही होने से अन्य चर्चा छोड़कर उसे ही समझेंगे।

अवधिज्ञान - अवधि अर्थात् मर्यादाशील जो ज्ञान है वह। अब मर्यादा किसकी ? तो रूपी और अरूपी इन दोनों प्रकार के पदार्थों में सिर्फ रूपी पदार्थ का ही आत्मसाक्षात्कार कराके यह मर्यादित बना है। यह ज्ञान अनुगामी आदि छः भेद अथवा असंख्य और अनंत भेदों से प्राप्त होता है। इस अवधिज्ञान का ज्ञानी (मालिक) को अपने स्थान पर बैठकर ही जिस चीज को देखने की इच्छा है वहाँ उपयोग (ध्यान देना) करना पड़ता है। यह ज्ञान बहुत ही रहस्यमय (भेदयुक्त) और क्षेत्र सीमित तथा विभिन्न रीति से उत्पन्न होनेवाला हैं। यह अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक ऐसे दो प्रकार से उत्पन्न होता हैं। देवों में भवप्रत्ययिक ज्ञान होता है, क्योंकि देवभव में उत्पन्न होते ही उसका उदय होता है। यह भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान कौन से देवों में ? किस प्रकार ? कितनी मात्रा में मिलता है ? अब उसे बताते हैं...

अवधिक्षेत्र का संस्थानाकार[1] - नारकी का अवधिक्षेत्राकार **तिरेंदाकार (तिरोंदा, तरणु)** होता है। यह काष्ठ से समूह से बनाया हुआ सीधा सरल तैरने का त्रिकोण (त्रिभुज) आकार का जलयान साधन होता हैं।

अब भवनपति का आकार "**पल्याकार**" होता है। यह लाट देश में उपयोगी धान्य मापने का प्याला-साधनविशेष है, जो ऊँचा होने के साथ साथ नीचे से चौड़ाईवाला तथा ऊपर के भाग से कुछ संकीर्ण होता है।

व्यंतरदेवो का अवधिक्षेत्राकार "**पटहाकार**" होता है। यह एक प्रकार का लम्बा ढोल होता है जो ऊपर-नीचे दोनों भागों पर समान प्रमाणयुक्त और दोनों और गोल चमड़ों से जड़ा हुआ होता है जिसे देशी वाद्य बजानेवाले बजाते हैं वह...।

ज्योतिष का अवधिक्षेत्राकार "**झल्लर्याकार**" में अर्थात् दोनों और विस्तीर्ण वलयाकार चमड़ों से सुशोभित, बीच में से संकीर्ण, जिसे "**ढक्का**" के उपनाम से पहचाना जाता है। अतः यहाँ पाठशाला (स्कूल) में उपयोगी कांस्य की पतली घंटा (झालर) न समझकर, सपेरे (मदारी) जो डमरु या डुगडुगी बजाते हैं, वैसा ही समझें।

कल्पोपपन्न (१२ देवलोक) का अवधिक्षेत्राकार **मृदंगाकार** होता है, जो एक देशी वाद्य है। इसका एक ओर का मुख गोलाकार विस्तीर्ण ओर दूसरी और का संकीर्ण लेकिन गोलाकार चमड़े से सुशोभित मुखवाला होता है, जिसकी पीठ बीच में से ऊँची होती है।

(१) (A) बृहत्संग्रहणी-११९ (B) त्रैलोक्यदीपिका-३१५ (C) गाथासहस्री-६८१

163

न्यूटन सन् १६६४ में एक बगीचे में बैठकर चिंतन कर रहा था। वहाँ उसने वृक्ष पर से सेबफल को नीचे गिरता देखा। इस पर से न्यूटन ने विचार किया कि पृथ्वी में अवश्य ही किसी प्रकार का कोई आकर्षणबल होना चाहिए, जो सभी पदार्थों को अपनी ओर खींचता है। यदि उस समय ही न्यूटन ने अपनी रसोईघर की चिमनी से आकाश की ओर उठता हुआ धुआँ देखा होता तो न्यूटन की यह गलत मान्यता दूर हो गई होती कि पृथ्वी सभी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है। अपनी कल्पना को सत्य मानकर न्यूटन ने विचार किया कि इसी प्रकार पृथ्वी का आकर्षणबल चन्द्रमां पर लगता है और इसलिए वह पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है यह समानता बिल्कुल भी तर्कयुक्त नहीं थी। यदि पृथ्वी चन्द्रमां को सेबफल की तरह आकर्षित करती है, तो उसे भी जमीन पर गिर जाना चाहिए। ऐसा क्यों नहीं होता है, यह समझने के लिए न्यूटन ने अन्य कल्पनाएँ की।

नौ-ग्रेवेयक का पुष्पचंगेरी

अनुत्तरदेवों का "यवनालक" अपर नाम "कन्याचोलक"

देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र और आकार.....(पार्ट - २)

नौ-ग्रेवेयक का आकार ''पुष्पचंगेरी'' जैसा अर्थात् गुंफित पुष्पों से शिखापर्यंत भरी हुई चंगेरी (परिधि सह छाब) होती है वैसा...।

अनुत्तरदेवों का अवधिक्षेत्र ''यवनालक'' अपर नाम ''कन्याचोलक'' का (प्राचीन काल में पैंर की घुंटी तक की बनावट का फ्रोक जैसा) आकार का है । अर्थात् कोई कन्या कंचुकि सहित अधोवस्त्र जिस प्रकार से पहनी हुई होती है वैसा आकार उनके अवधिक्षेत्र का दिखाई पड़ता है । इससे यह साबित होता है कि इसमें स्त्री के सिर का भाग छूट जाता है और गले से लेकर पैर तक का वस्त्र इसमें आ जाता है और यह उपमा भी जो दी गई वह यथार्थ है । क्योंकि अनुत्तर देव पुरुषाकृति लोक के सिर-मस्तिष्क के स्थान पर है । ये देव वहाँ से लेकर अंतिम सातवीं नरक तक के तलवे तक देख सकते हैं । अब शेष रहा इसके ऊपर का एक मात्र सिद्धक्षेत्र स्थान (जिस प्रकार यहाँ मस्तिष्क शेष रहा है उसी प्रकार) और जब इस समग्र क्षेत्र को १४ राजलोक के चित्र में देखेंगे तो ऊपर जो दृष्टांत कहा गया है वह आपको यथार्थ लगेगा ।

अब संस्थानादि कहने के बाद कौन-सी दिशा में देवों का अवधिज्ञान अधिक होता है ? इसे बताते है

भवनपति तथा व्यंतर देवों में अवधिज्ञान क्षेत्र बहुत ऊँचा होता है । (इसी कारण से इस अवसर्पिणी में चमरेन्द्र का सौधर्मेन्द्र तरफ जाना प्रसिद्ध हुआ था) तिर्च्छे तथा नीचे का अवधिक्षेत्र बहुत अल्प होता हैं ।

वैमानिक निकाय के देवों का अवधिक्षेत्र अधिक नीचा होता है । (कल्याणादि प्रसंग पर अवधिज्ञान से तीर्थंकर का जन्मादिक हुआ देख कर नीचे आना प्रसिद्ध है) यह तिरछे अल्प और ऊँचाई में (स्वविमान ध्वजा पर्यन्त होने से) उससे भी अल्प होता है ।

साथ ही नारकी तथा ज्योतिषीयों का अवधिक्षेत्र तिरछा अधिक और ऊँचा तथा नीचा अल्प होता है ।

मनुष्य और तिर्यंच का क्षेत्र अनेक प्रकार का अर्थात् ऊर्ध्व-अधो-तिर्यग् छोटा-बड़ा विविध संस्थानाकार रूप विभिन्न रीति से होता है ।

चलिए ! अब देखते है..... अवधिज्ञानी जीवगण क्षेत्र के साथ-साथ कितने काल तक को जान-देख सकते है.....

क्रम	क्षेत्र से	काल से	क्रम	क्षेत्र से	काल से
१	अंगुल का असं. भाग	आवलिका का असं. भाग	८	२५ योजन	कुछ न्यून १ पक्ष
२	अंगुल का संख्य. भाग	आवलिका का संख्य. भाग	९	भरत क्षेत्र	१ पक्ष (१५ दिन)
३	१ अंगुल प्रमाण	कुछ न्यून १ आवलिका	१०	जंबूद्वीप	१ मास से कुछ अधिक
४	२ से ९ अंगुल	१ आवलिका	११	अढाईद्वीप	१ वर्ष (१२ मास)
५	१ हाथ	अंतर्मुहूर्त	१२	रुचकद्वीप	२ से ९ वर्ष
६	१ गाउ	कुछ न्यून १ दिन	१३	संख्याते द्वीप	संख्याते वर्ष
७	१ योजन	२ से ९ दिन	१४	असंख्याते द्वीप	असंख्याते वर्ष

164

"Lord Mahavira preached to the world the ideal of Ahimsa, universal religion and fellow feeling of which we are so much devoid today. It is the reali-sation of Lord Mahavira's ideal where in lie the real peace and happiness of all living in this subcontinent of India."

- Sh. Aurangnarain Sinha

"The principles of love and peace preached by Lord Mahavira should be widely propagated today. The world can live in peace by following them."

-Mishrilal Gungwal

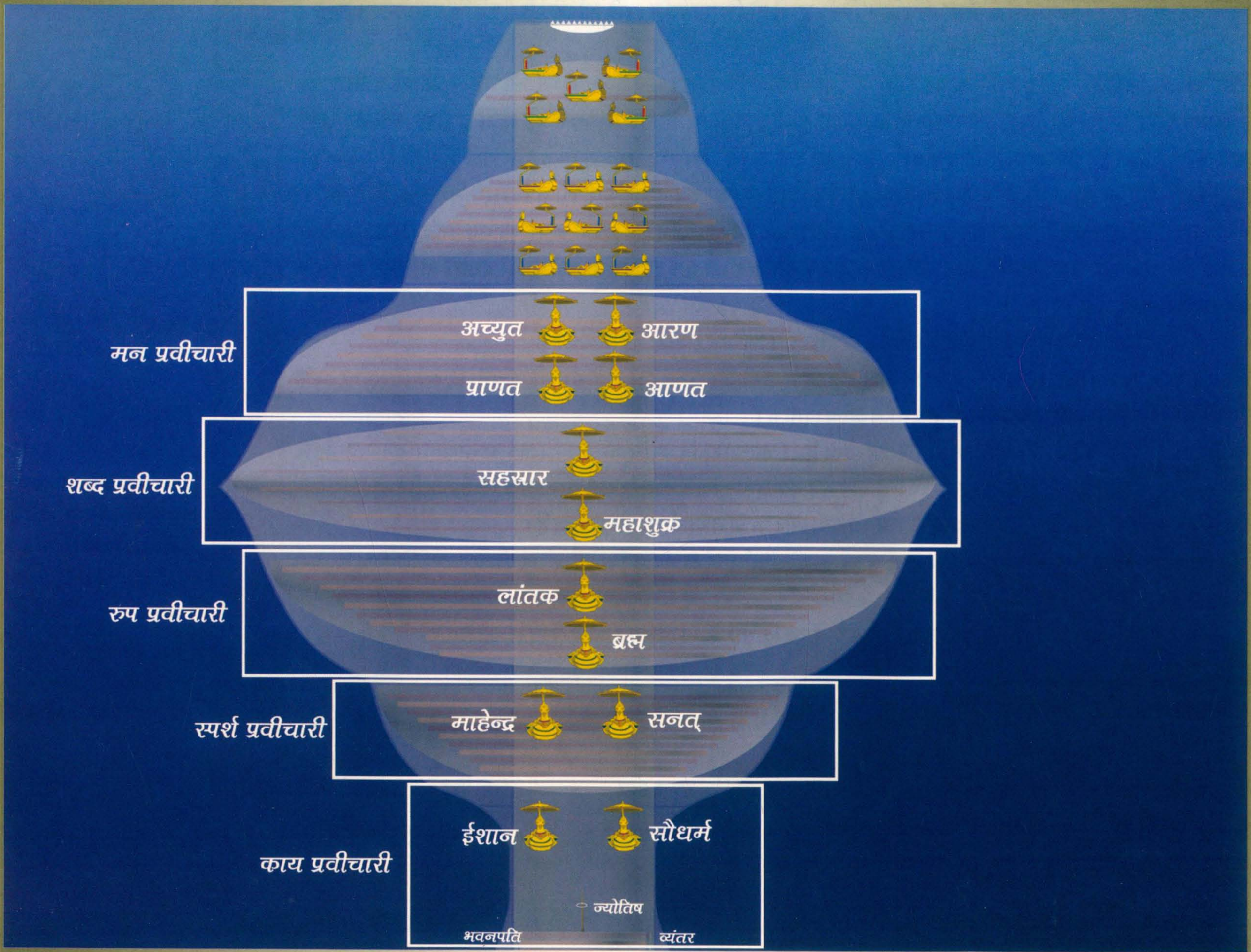
मन प्रवीचारी
अच्युत
आरण
प्राणत
आणत
शब्द प्रवीचारी
सहस्रार
महाशुक्र
रुप प्रवीचारी
लांतक
ब्रह्म
स्पर्श प्रवीचारी
माहेन्द्र
सनत्
काय प्रवीचारी
ईशान
सौधर्म
ज्योतिष
भवनपति
व्यंतर

चलिए मित्रो ! अब हम आपको चारों निकाय के देव तीन विभागों में विभक्त किए जा सकते हैं वह बतायेंगे जैसे कि एक तो वे हैं जिनके देवियां भी हैं और प्रवीचार भी हैं । दूसरे वे है की जिनके देवियां नहीं है, तो भी प्रवीचार पाया जाता हैं तथा तीसरे वे हैं जिनके न देवियाँ है और न ही प्रवीचार हैं ।[1] इनमें से वे देव कौन से है जिनके देवियां भी है तथा प्रवीचार भी है ? तो चलिए अब हम उसे भी बताते हैं । काय अर्थात् शरीर-देह तथा प्रवीचार अर्थात् मैथुन-विषयसेवन । देह-शरीर के द्वारा जो स्त्रीसंभोग रूप मैथुन-विषयसेवन किया जाता है, उसे "कायप्रवीचार" कहते हैं । भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष, पहले सौधर्म और दूसरे ईशान देवलोक के वैमानिक देव ये सभी मनुष्यों के समान कायप्रवीचार करते हैं । अर्थात् सर्वांग देह-शरीर द्वारा मैथुन-विषयों का उपभोग-संभोग करते हुए प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं ।

सारांश यही है कि- भवनवासी देवों से लेकर ईशान स्वर्ग तक के देवों के कायप्रवीचार है । वे देह-शरीर द्वारा ही मैथुन-विषयसेवन में अतिरक्त-मग्न रहनेवाले तथा उनका पुनः सेवन करनेवाले होते हैं । क्योंकि, मैथुन संज्ञा के उनके परिणाम अतिशय तीव्र रहा करते हैं । इसलिए वे देह शरीर के संकलेश से उत्पन्न हुए तथा सर्वांगीण स्पर्श-सुख को मनुष्यों की भांति पाकर ही प्रीति को प्राप्त हुआ करते हैं ।

जैसे भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क, पहले सौधर्म और दूसरे ईशान स्वर्ग के वैमानिक देव, ये सभी मनुष्यों के समान कायप्रवीचार करते हैं अर्थात् सर्वांग शरीर द्वारा मैथुन विषयों का उपभोग-संभोग करते हुए प्रसन्नता को प्राप्त करते हैं, वैसे तीसरे स्वर्ग से यावत् बारहवें स्वर्ग पर्यन्त के देव मनुष्यों के समान सर्वांग देह-शरीर द्वारा काम-सुख भोगनेवाला नहीं होते है परंतु वे कोई अन्य रूप से विषयसुख का अनुभव करते हैं... जैसे कि...

तीसरे सनत्कुमार और चौथे महेन्द्र स्वर्ग के देव को जब मैथुन संज्ञा उत्पन्न होती है, तब वे देवियों के स्पर्श मात्र से ही मैथुन सेवन करते हैं अर्थात् कामवासना से तृप्त होकर प्रसन्नचित् हो जाते हैं । पांचवें ब्रह्मलोक और छट्ठे लान्तक स्वर्ग के देव को जब विषयवासना उत्पन्न होती है, तब वे उन देवियों के ऐसे मनोहर और सुन्दर श्रृंगार तथा वेषभूषा से सुसज्जित रूप को देखकर ही विषयजनित सुख से सन्तुष्ट हो जाते हैं । सातवें महाशुक्र तथा आठवें सहस्त्रार स्वर्ग के देव, जब उन्हें प्रवीचार की आकांक्षा उत्पन्न होती है तब वे देवियों के मुखारविंद से मनोहर विलासजनित मधुर संगीत, मृदु हास्य तथा अलंकारों की ध्वनि इत्यादिक के श्रवण-मात्र से प्रीति को प्राप्त हो जाते हैं तथा उनकी यह अभिलाषा भी उसी से निवृत्त हो जाती है ।

नौवें आनत, दसवें प्राणत, अग्यारहवें आरण तथा बारहवें अच्युत इन चार देवलोकों के देवगण जिस समय प्रवीचार (मैथुन-सेवन) का विचार करते हैं और देवियों का संकल्प करते हैं, उसी समय अपने मन के संकल्प मात्र से ही वे परमप्रीति को प्राप्त होते हैं, इनको देवियों के स्पर्श या रूप देखने की अथवा मधुर गीतगानादि सुनने की भी आवश्यकता नहीं रहती हैं ।

(१) (A) तत्त्वार्थ सूत्र-४/८-९-१० (B) मूलाचार-११३६-११४४ (C) धवला-१/१, १-९८/३३८/५ (D) तिलोयपण्णत्ति-३३६/३३७.

"Lord Mahavira taught the world the message of Ahimsa the giver of true peace and happiness. The people of the west have no faith in Ahimsa and that is why war-clouds are rising there on the horizon."

- Mahatma Narayan Swami

"In conclusion let me assert my conviction that Jainism is an original system, quite distinct and independent from all others; and that therefore it is of great importance for the study of philosophical thoughts and religious life in ancient India."

- Dr. Herman Jacobi

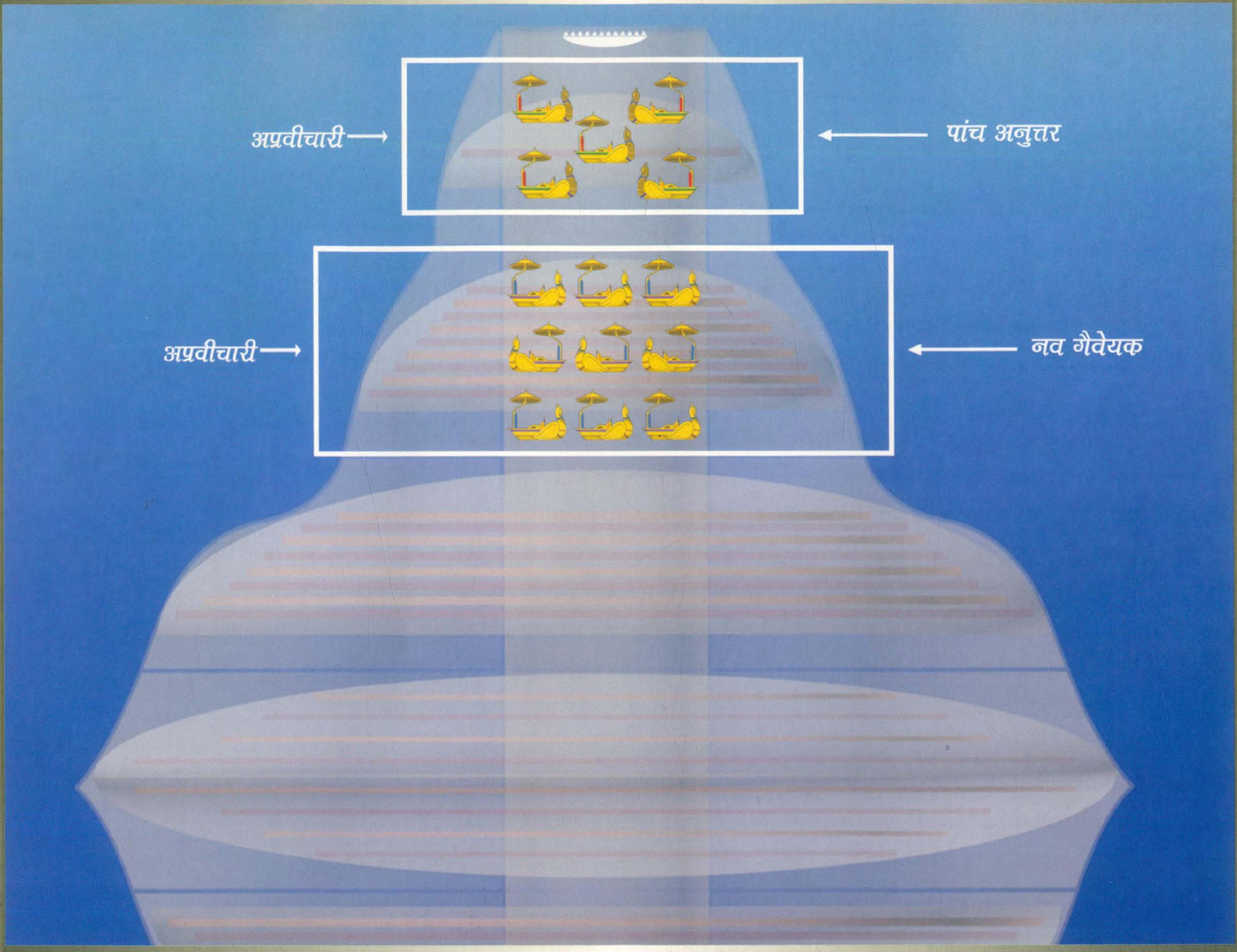
अप्रवीचारी
पांच अनुत्तर
अप्रवीचारी
नव गैवेयक

चारों निकाय के देव तीन विभागों में विभक्त है.....(पार्ट - २)

यहाँ पर इतना ध्यान रखना अत्यावश्यक है कि, देवियों की उत्पत्ति का स्थान पहला सौधर्म देवलोक तथा दूसरा ईशान देवलोक ही हैं। तथापि वे कामवासना-विषयसुख के उत्सुकता के कारण या उन देवताओं को अपनी और आदरशील जानकर तीसरे इत्यादिक देवलोकों में रहेहुए देवों के पास दैवी शक्ति से स्वयमेव पहुँच जाती हैं, और उनकी इच्छा पूर्ण करती हैं।

सारांश यही है कि-

- पहले दूसरे देवलोक के देव (तथा नीचे के तीन निकाय) काया से मैथुन सेवन करते हैं।
- तीसरे-चौथे देवलोक के देव स्पर्श से मैथुन सेवन करते हैं।
- पांचवे-छट्ठे देवलोक के देव देवियों के रूप-दर्शन से मैथुन सेवन करते हैं।
- सातवें-आठवें देवलोक के देव देवियों के शब्द-श्रवण से मैथुन सेवन करते हैं।
- नौवें-दशवें-अग्यारहवें और बारहवें देवलोक के देवगण मात्र मन से मैथुन सेवन करते हैं।

इस तरह मैथुन संज्ञा के उदय से देवों में भी कामवासना-विषयवासना होती हैं। उनमें नीचे नीचे के देवों में विशेष मैथुन संज्ञा होने से उसको शांत करने के लिए अधिक यत्न तथा सामग्री की आवश्यकता रहती हैं। किन्तु ऊपर ऊपर के देवों में विषयवासना अल्प अल्प होने से उसकी शांति अल्प प्रयत्नों से ही हो जाती है।

कल्पोपपन्न बारहवें देवलोक के पश्चात्, कल्पातीत नौ ग्रैवेयक तथा विजयादि पाँच अनुत्तरवासी देव हैं। ये देवगण प्रवीचार से रहित माने गये हैं, अर्थात् इन्हें कामवासना नहीं होती, इसलिए ये उपरोक्त देवियों के स्पर्शादिक की अपेक्षा भी नहीं रखते हैं। वे अन्य देवों से अधिक संतुष्ट और सुखी होते हैं। पहले तथा दूसरे देवलोक की अपेक्षा यावत् बारहवें देवलोक के देव मन्द, मन्दतर, मन्दतम विषयवासना वाले होते हैं। अर्थात् ऊपर-ऊपर के स्वर्गो के देवों के नीचे के स्वर्गों की अपेक्षाएं कामवासना मन्द होने से उनके चित्त में संक्लेश की मात्रा भी कम होती है। कामभोग के साधन भी कम होते हैं। बारहवें देवलोक से ऊपर के नौ ग्रैवेयक तथा पांच अनुत्तरवासी देव शान्त और सन्तोषजन्य परमसुख में नित्य निमग्न रहते हैं।

पांच प्रकार के प्रवीचार से उत्पन्न होनेवाली प्रीतिविशेष से भी इनकी प्रीति के प्रकर्ष का महत्त्व अपरिमित है। इसलिए ये परमसुख के द्वारा सर्वदा तृप्त ही रहा करते हैं। अतःएव ये जन्म से लेकर मृत्यु-मरण तक निरंतर सुखी ही रहा करते हैं।

सच्चा सुख कहाँ ?

जब तक कस्तूरिया मृग कस्तूरी की खोज बाहर ही बाहर करता रहेगा तब तक उसे कस्तूरी न मिलेगी। परंतु जब वह बाहर से हटकर स्वयं की नाभि में खोज करेगा तो उसे कस्तूरी-सहजता से मिल जाएगी, क्योंकि वह वहीं पर होती हैं। ऐसे ही व्यक्ति जब तक सच्चे सुख की खोज बाहर ही बाहर करता रहेगा तब तक उसे सुख न मिलेगा, और जब वह बाहर से हटकर स्वयं की आत्मा में उसकी खोज करेगा तो उसे सुख सरलता से मिल जाएगा, क्योंकि वह सुख तो वहीं आत्मा पर हैं।

166

"What would be the condition of the Indian Sanskrit literature if the contribution of the Jains were removed? The more I study Jain literature the more happy and wonder struck I am."

- Dr. Hertel, Germany

"Jainism is of a very high order. Its important teachings are based upon science. The more the scientific knowledge advances the more that Jain teachings will be proven."

- L. P. Tessetori, Italy

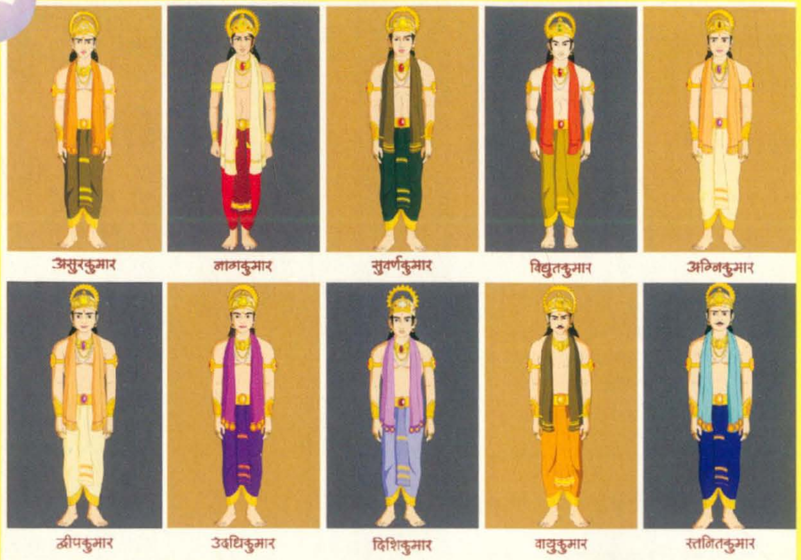
असुरकुमार
नागकुमार
सुवर्णकुमार
विद्युतकुमार
अग्निकुमार
द्वीपकुमार
उदधिकुमार
दिशिकुमार
वायुकुमार
स्तनितकुमार

पिशाच
भूत
यक्ष
राक्षस
किन्नर
किंपुरुष
महोरग
गांधर्व

ज्योतिष चक्र की ऊंचाई
शनि
मंगल
गुरु
शुक्र
बुध
नक्षत्र
चंद्र
सूर्य
तारा मंडळ
९०० योजन
८९७ योजन
८९४ योजन
८९१ योजन
८८८ योजन
८८४ योजन
८८० योजन
८०० योजन
७९० योजन

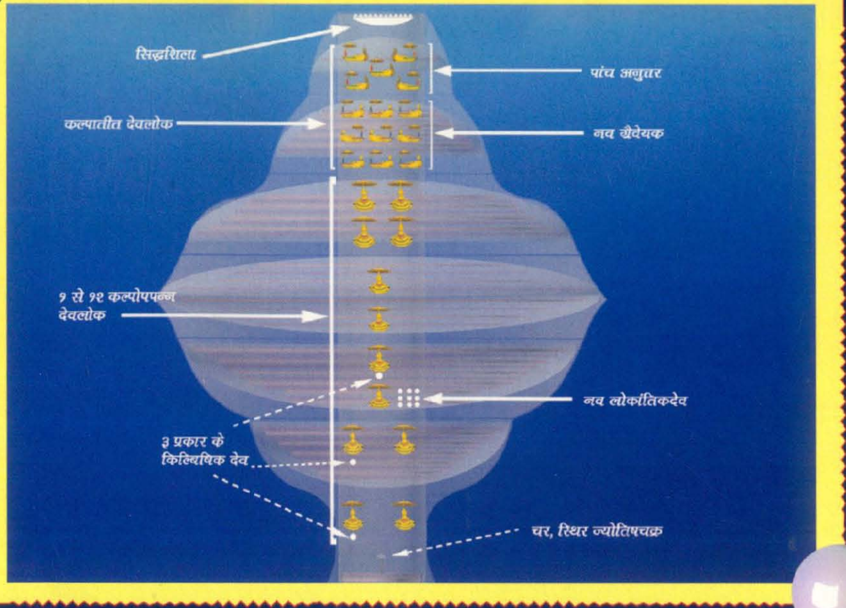
सिद्धशिला
पांच अनुत्तर
कल्पातीत देवलोक
नव ग्रैवेयक
१ से १२ कल्पोपपन्न
देवलोक
नव लोकांतिकदेव
३ प्रकार के
किल्बिषिक देव
चर, स्थिर ज्योतिषचक्र

चारों निकायी देवों के १९८ भेद किस प्रकार होते है ?.....

ऐसे तो देव का अर्थ ''सभी देव'' ऐसा कर सकते हैं, और चार निकाय आश्रयी देवों के सिर्फ चार ही भेद है एसा भी मान सकते हैं, लेकिन हमें विशद ज्ञान-अनुभव हो इसलिए शास्त्रों (आगमों) में विभिन्न दृष्टि स्वरूप देवों के प्रकार बताए हैं, फिर भी चारों निकाय में अन्तर्गत ४ प्रकार की गिनती करके बताए गए हैं... जैसे कि...

भेद	प्रकार	संख्या	कुल संख्या
भवनपति	असुरकुमारादि १० निकाय	१०	
	१५ प्रकार के परमधामी	१५	२५
व्यंतर	८ प्रकार के व्यंतर देव	८	
	८ प्रकार के वाणव्यंतर देव	८	
	१० प्रकार के तिर्यग्‌जृंभक देव[१]	१०	२६
ज्योतिष	चर ज्योतिषी (अढाईद्वीप में)	५	
	अचर ज्योतिषी (अढाईद्वीप के बाहर)	५	१०
वैमानिक	(कल्पोपपन्न) १२ देवलोक	१२	
	तद्वर्तित किल्बिषिक	३	
	तद्वर्तित लोकान्तिक	९	
	(कल्पातित) नौ ग्रैवेयक	९	
	पांच अनुत्तर	५	३८
		कुल मिलाकर	९९ भेद

इन ९९ भेदों को समय (आगम) की अपेक्षा से सोचने पर पर्याप्ता और अपर्याप्ता दोनों मिलाकर देवों के कुल १९८ भेद होते हैं।

(१) तीर्थंकरादि जैसे विशिष्ट पुण्यवान आत्माओं के आवास में धन-धान्यादिक की पूर्ति ये तिर्यग्‌जृंभक् देवगण करते है । जो अन्नजृंभक, पानजृंभक, वस्त्रजृंभक आदि १० प्रकार के नाम से पहचाने जाते हैं ।

167

याद रखो कि... बहुत सारे विषयों से अनजान होना, यह कोई शर्म की बात नहीं हैं, परंतु सीखने समझने की शक्ति और अवसरो के अनुकूल होने पर भी उन्हे न सीखना न समझना, इत्यादि यह शर्म की बात भी हैं और दुर्भाग्य की भी... इसलिए एक बात ध्यान रखना कि- जिस तरह विषय संबंधी चिंतन से मन चंचल बनता हैं । शत्रु संबंधी चिंतन से मन द्वेषी तथा क्रूद्ध बनता हैं । प्रिय संबंधी चिंतन से मन रागी एवं विह्वल बनता हैं, वैसे ही आपके हाथ में रहा यह तत्त्वज्ञान से भरे ग्रंथ के चिंतन-मनन से मन परम शान्त और सात्त्विक बनता हैं ।

उत्पाद - व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्...

जगत् में मात्र पदार्थ सत् है, क्योंकि जो सत् है उसी का ज्ञान होता है । जो असत् है उसका ज्ञान कभी नहीं होता । जैसे कि आकाशकुसुम, गर्दभशृंग...इत्यादि । इतरलोग सत् की व्याख्या - ''अर्थक्रियाकारी सत्'' ऐसी करते है अर्थात् कुछ न कुछ कार्य करनेवाला हो यह सत् है । किन्तु ध्वंस-विनाश यह भी अपना ज्ञान कार्य कराता है, परंतु यह सत् कैसे कहलाएगा ? इसलिए जैनदर्शन सत् की व्याख्या ''उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्'' ऐसी करते है । इस व्याख्या में दीपक जो क्षण क्षण नष्ट व उत्पन्न होता है यह भी आएगा और आकाश जो सदा नित्य है वह भी आएगा, क्योंकि दीपक के मूलभूत अणु ध्रुव (नित्य) है व उसमें से नयी नयी ज्योत उत्पन्न होती है और पूर्व पूर्व ज्योत नष्ट होती है वो नष्ट ज्योत के तामस है । वे पुद्गल वातावरण में फैल जाकर कायम रहते है, तो दीपक भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त बना । वैसे ही महाआकाश ध्रुव हैं और घडा फूट जाने से घटाकाश नष्ट हुआ और गृहाकाश उत्पन्न हुआ । उदाहरणार्थे - सोने का कंगन तोड़कर हार बनाया वहाँ कंगन नष्ट हुआ और हार उत्पन्न हुआ तथा सोना तो कायम रहा । सत् में ही एसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते हैं । किन्तु आकाशकुसुम जैसे असत् में नहीं । जीव मनुष्य रूप में मरता है यानी नष्ट होता है और देव रूप में उत्पन्न होता है लेकिन जीव रूप में तो ध्रुव रहता है । अब कहो ! सारे विश्व (जगत) में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की महासत्ता व्यापक है न ?

यदि इस बात को ध्यान में लिया जाए तब तो वस्तु के संयोग-वियोग में हर्ष-शोक भी नहीं होगा...।

द्वार-५

प्रकीर्णक

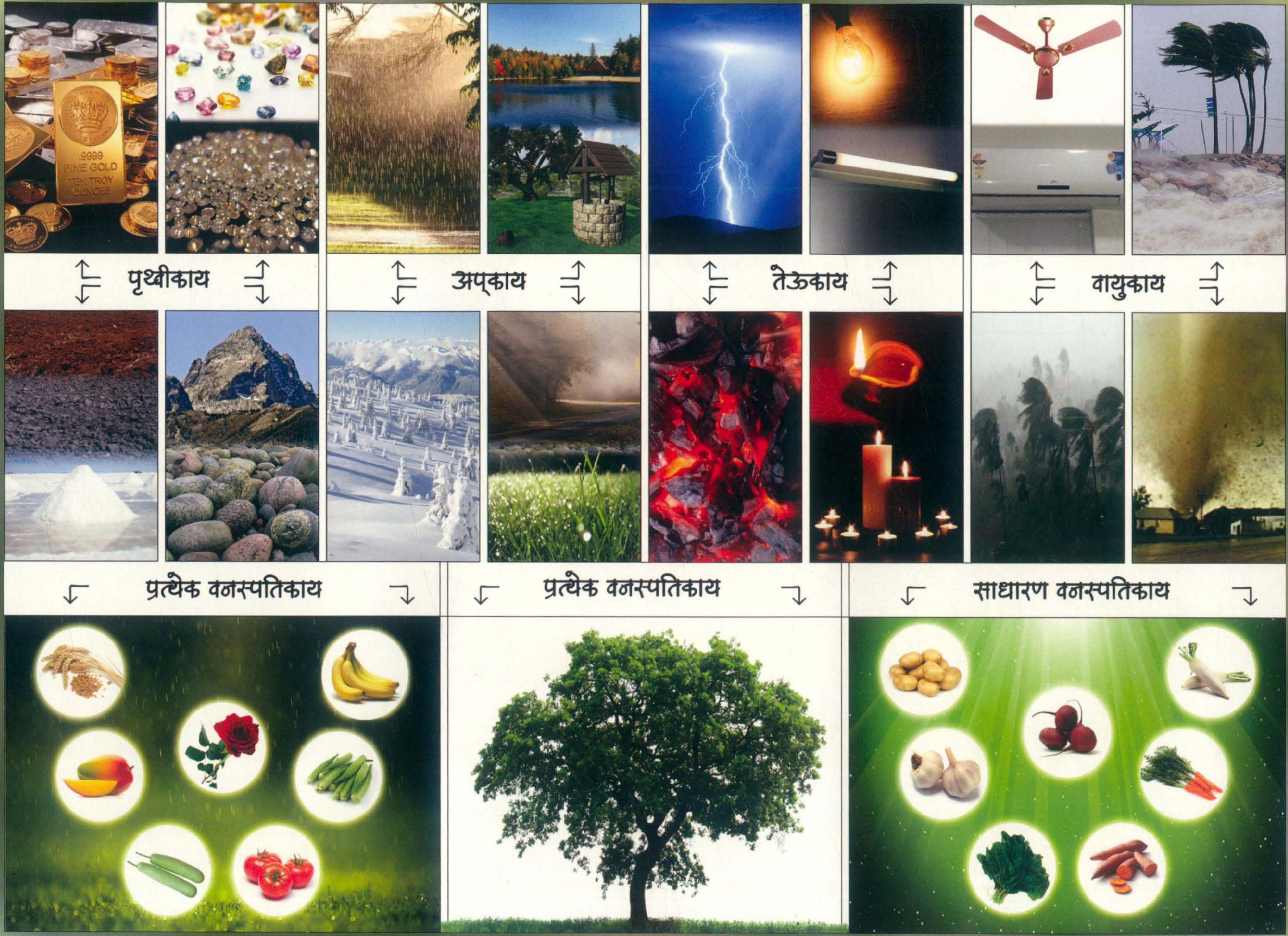
.9999
FINE GOLD
TEN TROY
OUNCES
पृथ्वीकाय
अप्काय
तेऊकाय
वायुकाय
प्रत्येक वनस्पतिकाय
प्रत्येक वनस्पतिकाय
साधारण वनस्पतिकाय

पृथ्वीकायादि ५ स्थावर जीव.....

जीवों के मुख्य दो प्रकार हैं (१) मुक्त (अर्थात् सिद्ध) जीव, और (२) संसारी जीव[1]। इस संसारी जीव के कुल ५६३ भेद हैं और इसके भी मुख्य दो प्रकार हैं- (१) स्थावरकाय (२) त्रसकाय।

स्थावरकाय = अपनी इच्छा मुजब जो गति नहीं कर सकते... अर्थात् एक ही स्थान पर स्थिर रहनेवाले जीवों को स्थावरकाय कहते हैं। इन जीवों को केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है। अपनी सारी जैवीक क्रियाएँ वे इसी एक इन्द्रिय द्वारा संपन्न करते हैं, इन स्थावर जीवों के पांच प्रकार कहे गये हैं.... (१) पृथ्वीकाय (२) अप्काय (३) तेउकाय (४) वायुकाय और (५) वनस्पतिकाय। ''काय'' शब्द का अर्थ शरीर अथवा समूह समझें।

(१) पृथ्वीकाय = जिसका शरीर ही पृथ्वी हैं उसे पृथ्वीकाय कहते हैं, जैसे कि - स्फटिक, मणि, रत्न, सुरमा, हिंगलोक, परवाला, हरताल, धातु (सोना, चांदी, जस्ता, तांबा, सीसा, लोहा, रांगादि) पारा, मिट्टी, पाषाण, नमक, खार (क्षार) फिटकरी तथा खडी (गीटरी) आदि पृथ्वीकाय जीव के दृष्टांत हैं। (२) अप्काय = जिन एकेन्द्रिय जीवों का शरीर ही जल या पानी रूप में हो, उसे अप्काय कहते हैं। जैसे कि- कुआँ, तालाब, बावड़ी, भूमि का पानी, वर्षादि आकाश का पानी, हरे वृक्ष-तृण के ऊपर रहा हुआ पानी, ओस, बर्फ, ओले आदि, घनोदधि तथा हाईड्रोजन और ऑक्सीजन के संयोग से निर्मित जलादि अप्काय के उदाहरण है। (३) तेउकाय = जिन स्थावर जीवों का शरीर ही अग्नि हैं, वे जीव तेउकाय के जीव हैं। जैसे कि - अंगारा, ज्वाला, भ्रमरा, भोभर, भट्टी, उल्का, अर्थात् आकाश में दिखाई देती अग्नि रेखाएँ, अशनि अर्थात् वज्रादि अग्नि, कणिया अर्थात् गिरते हुए तारे जैसे अग्निकण तथा विद्युत-बिजली आदि तेउकाय के उदाहरण हैं। (४) वायुकाय = जिन स्थावर जीवों का शरीर ही वायु हैं, वे वायुकाय के जीव कहलाते हैं। जैसे कि - उदभ्रामक या संवर्तक वायु अर्थात् ऊंची घूमती वायु, भूतालिया आदि उत्कालिक वायु, अर्थात् नीचे भूमि को स्पर्श करता हुआ वायु, गोलाकार = घूमता हुआ वायु, आंधी आदि महावात, मंद मंद सुहावनी चलनवाला वायु, शुद्धवायु, गुंजारव करती हुई वायु, घनवात, तनवातादि वायुकाय के उदाहरण हैं। (५) वनस्पतिकाय = जिन स्थावर जीवों का शरीर ही वनस्पति है, उसे वनस्पतिकाय कहते हैं। इस वनस्पतिकाय के २ भेद (१) साधारण (२) प्रत्येक.....

(१) साधारण वनस्पतिकाय = जिनके एक शरीर में अनंत जीव हों... जैसे कि - भूमि के भीतर पैदा होनेवाले सर्वप्रकार के कंद, बीज से नीकलते हुए अंकुर, कूंपल, पांच रंग की नीलफूल, काई-जो जल के उपर छाई रहती है, भूमि विस्फोट - सफेद रंग की जो छत्राकार वनस्पति, आर्द्रत्रिक - हरी अदरक-हल्दी-कचूरा, छोटी बड़ी गाजर, नागरमोथ, वथुला की भाजी, छोटी मोगरी, पालक की भाजी, सर्व प्रकार के उत्पन्न हुऐ नये बीज, कोमल फलादि साधारण वनस्पतिकाय के जीव हैं।

(२) प्रत्येक वनस्पिकाय = जिसके एक शरीर में एक ही जीव हो उसे प्रत्येक वनस्पतिकाय कहते हैं। जैसे कि - फल, फूल, छाल, थड, मूल, पत्ते, बीजादि।

पृथ्वी + अप् + तेउ + वायु + साधारण वनस्पतिकाय के (१) सूक्ष्म[1] (२) बादर[2] (३) पर्याप्ता[3] (४) अपर्याप्ता[4] भेद गिनने से २० भेद होते हैं तथा प्रत्येक वनस्पतिकाय बादर ही होने से उसके पर्याप्ता-अपर्याप्ता मिलने से स्थावरकाय के कुल भेद २२ होते हैं।[2]

1- सूक्ष्म = सूक्ष्म नामकर्म के उदय से जो जीव सूक्ष्म पृथ्वीकायादि रूप में उत्पन्न होते हैं, परंतु वो विशिष्ट अवधिज्ञानी वा केवली सिवाय किसी को भी दृष्टि का विषय नहीं बनते अर्थात् छद्मस्थो के लिए जो सर्वदा अदृश्य ही हैं ऐसे जीवों को ''सूक्ष्म'' कहते हैं। 2- बादर = जिस जीवों का शरीर अपनी दृष्टि का विषय बनता हो वो ''बादर'' जाने। (यह व्याख्या स्थूल दृष्टि से बताई हैं) 3- पर्याप्ता = जिस जीव को जीतनी पर्याप्ति की जरूर होती है उतनी पर्याप्ति पूर्ण करने के बाद ही मृत्यु पाते हैं वे पर्याप्ता कहलाते हैं। (जैसे कि एकेन्द्रिय योग्य ४ पर्याप्ति आदि) 4- अपर्याप्ता = जिस जीव को जितनी पर्याप्ति की जरूर हो और उसे प्राप्त करने पहले ही जो मृत्यु पा जायें तो उसे ''अपर्याप्ता'' कहते हैं।

(१) (A) जीवविचार प्रकरण, गाथा-२ (B) पंचास्तिकाय मूल-१०९ (C) मूलाचार-२०४, (D) नयचक्र, बृहत्-१०५ (२) पदार्थस्थापनासंग्रह-५

168

स्थावर जीवों का भी विशेष विज्ञान जिनशासन में दिया गया है। जैसे कि कोमल मिट्टी का आयुष्य - १,००० वर्ष.., शुद्ध कुमार मिट्टी - १२,००० वर्ष...., रेती - १४,००० वर्ष, मणशील - १६,००० वर्ष, कंकड - १८,००० वर्ष, कठिन पृथ्वी - २२,००० वर्ष... ज्यादा में ज्यादा बताया गया है। ऐसा ज्ञान-विज्ञान आज के वैज्ञानिकों के पास नहीं है। इस विज्ञान का संपूर्ण रहस्य प्राप्त करने के लिए या तो सर्वज्ञ का ज्ञान होना चाहिए अथवा तो सर्वज्ञ ज्ञानी का आलंबन चाहिए।

162698

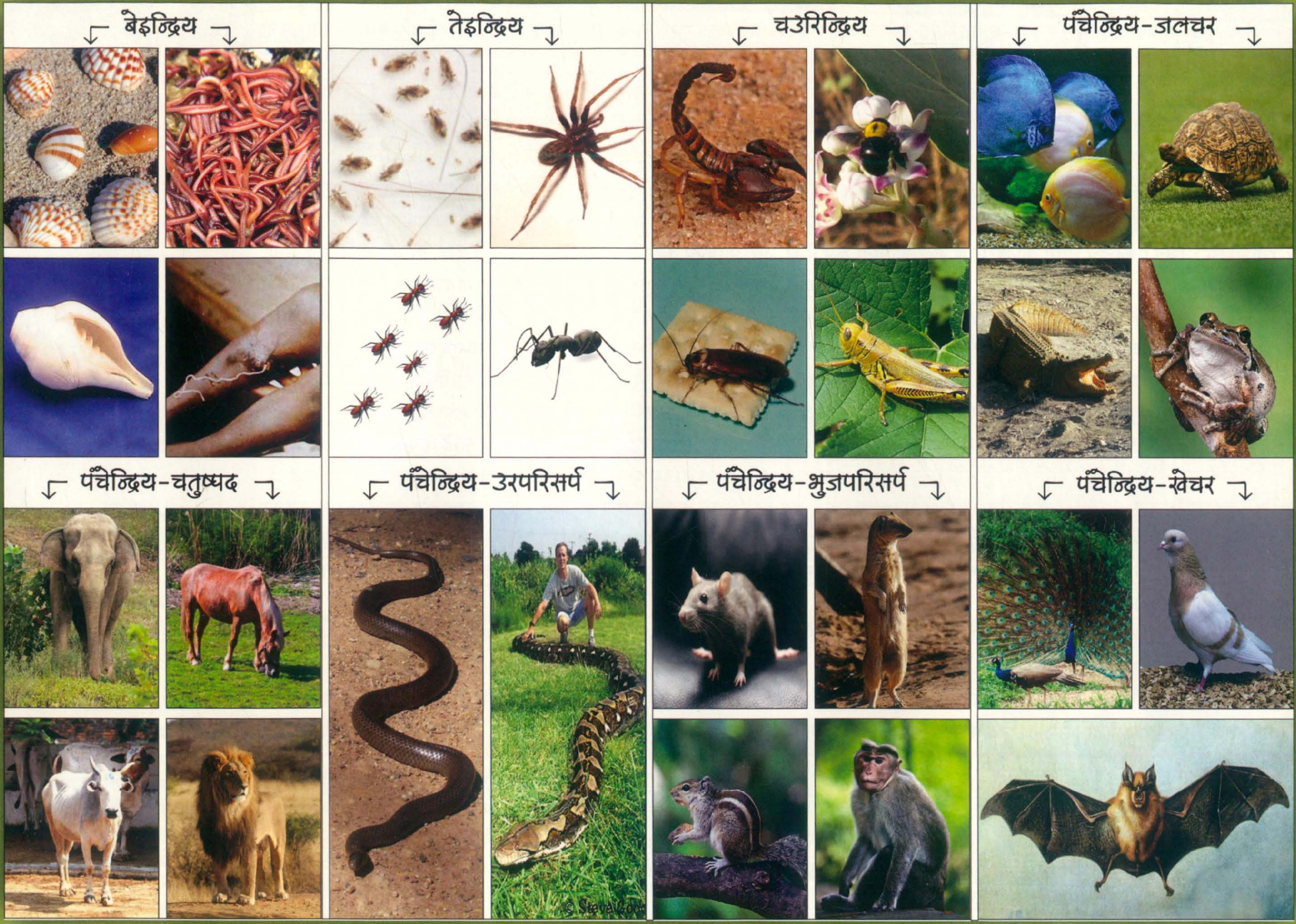
बेइन्द्रिय
तेइन्द्रिय
चउरिन्द्रिय
पँचेन्द्रिय-जलचर
पँचेन्द्रिय-चतुष्पद
पँचेन्द्रिय-उरपरिसर्प
पँचेन्द्रिय-भुजपरिसर्प
पँचेन्द्रिय-खेचर

त्रसकाय-विकलेन्द्रिय-तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव.....

''त्रसकाय'' = जो जीव अपने हित की प्राप्ति और अहित की निवृत्ति के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान की तरफ गमनागमन करते हैं, उन्हें ''त्रसकाय'' कहा जाता हैं। इसके ४ भेद हैं (१) बेइन्द्रिय (२) तेइन्द्रिय (३) चउरिन्द्रिय (४) पंचेन्द्रिय[१]।

बेइन्द्रिय = जिनको स्पर्श (शरीर) और रस (जीभ) यह दो इन्द्रिया होती हैं। जैसे कि - शंख, कोडी, गींडोले (बड़े कृमि), जलोय, चंदनक (अक्ष), अलसिये, केचुए, लालीया (वासी रोटी में उत्पन्न होते हैं) कृमि, पूरा, काष्ठ के कीड़े, घुन, चूडेलादि। तेइन्द्रिय = जिनको स्पर्श, रस, घ्राण (नाक) यह तीन इन्द्रियाँ होती हैं। जैसे कि - कानखजूरा, खटमल, कीडी, उदेही, लट्ट, मकोड़े, घीमेल (जो खराब घी में ही पैदा होती हैं), सवा (मनुष्य के अंगों में पैदा होनेवाले एक प्रकार के कीड़े), गोकीड (गायादि के शरीर में चिपककर रहते हैं), चौरकीडे (विष्ठा के कीडे), गोमय (गोबर में पैदा होनेवाले), धान्य के कीड़े, कुंथुआ, गोकलगाय, इलिका, इन्द्रगोप (मखमली लाल रंग के जीव जो वर्षाऋतु में पैदा होते है) इत्यादि। चउरिन्द्रिय = जिनको स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु (आंख) ये चार इन्द्रियाँ होती है। जैसे कि - बिच्छु, बगाई, भंवरा, टाटीया, टीड्डी, मक्खी, डांस, मच्छर, कंसारी, खडमांकडी, पतंगीयादि। उपरोक्त दो-तीन-चार इन्द्रियवाले जीवों को ''विकलेन्द्रिय'' भी कहा जाता है। पंचेन्द्रिय = जिनको स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु, श्रोत (कान) ये पांच इन्द्रियाँ होती हैं। इनमें (तिर्यंच) पशु-पक्षियों के तीन भेद हैं - (१) जलचर-पानी में रहनेवाले (२) स्थलचर-जमीन पर चलनेवाले तथा (३) खेचर-आकाश में उड़नेवाले।

जलचर = जल में चलनेवाले... जैसे कि मछली, मेंढ़क, मगरमच्छ, व्हेल, केकड़ा इत्यादि...। स्थलचर = के तीन भेद हैं (१) चतुष्पद (२) उरपरिसर्प (३) भुजपरिसर्प... (१) चतुष्पद = जिन्हें चार पैर हों ... जैसे कि - हाथी, घोडा, गध्धा, बैल, कुत्ता, गाय, सिंहादि...। (२) उरपरिसर्प = जो प्राणी अपने पेट के बल से चलते हैं या रेंगते हैं, जैसे कि - सर्प, अजगरादि। (३) भुजपरिसर्प = जो प्राणी भुजा के बल से चलते हैं, जैसे कि - नेवला, बंदर, गिलहरी, चूहा, छिपकली आदि...

खेचर = जो प्राणी आकाश में उड़ते हैं... वो ४ प्रकार के हैं। (१) रोमज = (रोमवाले) जैसे कि - मोर, कबूतरादि। (२) चर्मज = (चमड़े की पांखवाले) चमकादडादि। (३) समुद्ग पक्षी = बंध पांखवाले (४) वितत पक्षी = खुल्ली पांखवाले। अंतिम दोनों प्रकार के पक्षी मनुष्यक्षेत्र (२$^{1}/_{2}$ द्वीप) के बाहर ही होते हैं।

क्रम	तिर्यंच पंचेन्द्रिय	गर्भज शरीर	आयुष्य	समुर्च्छिम शरीर	आयुष्य
१	जलचर	१००० योजन	क्रोड पूर्व आयुष्य	१००० योजन	क्रोड पूर्व वर्ष आयुष्य
२	उरपरिसर्प	१००० योजन	क्रोड पूर्व आयुष्य	२ से ९ योजन	५३,००० वर्ष
३	भुजपरिसर्प	२ से ९ गाउ	क्रोड पूर्व आयुष्य	२ से ९ धनुष्य	४२,००० वर्ष
४	चतुष्पद	६ गाउ	३ पल्योपम	२ से ९ गाउ	८४,००० वर्ष
५	खेचर	२ से ९ धनुष्य	पल्यो. का असं.भाग	२ से ९ धनुष्य	७२,००० वर्ष

ता.क. = प्रत्येक वनस्पति में कमल का नाल १००० योजन जल की अंदर होता हैं दो-तीन-चार इन्द्रियवाले जीव उत्कृष्ट नाप के मनुष्यलोक अढाईद्वीप के बाहर होते हैं। तिर्यंचपंचेन्द्रिय उत्कृष्ट नाप से मत्स्य स्वयंभूरमण समुद्र में, सर्प-छिपकली-पक्षी वगैरह अढाईद्वीप के बाहर, एवं हाथी आदि (चतुष्पद) देवकुरु-उत्तरकुरु में होता है।

(१) (A) तत्वार्थ सूत्र-२/१४ (B) मूलाचार-२६८ (C) तिलोयपण्णत्ति-५/२८० (D) कार्तिकेयानुप्रेक्षा-१२८ (E) राजवार्तिक-३/३६/४/२०९ (F) पंचसंग्रह-प्राकृत-१/८६ (G) धवला-१/१, १४६/गा. १५४/२७४ (H) पंचसंग्रह-संस्कृत-१/१६० (I) नयचक्र-१२३ (J) द्रव्यसंग्रह, मूल-११ (K) गोम्मटसार-जीवकाण्ड, मूल-१९८

169

"It is the duty of Jainas to propagate the doctrine of "Ahimsa" throughout the world."

- Sardar Vallabhbhai Patel

"It is now certain that the Jain Community was really even older than the time of Buddha, and was reorgani-sed by his contemporary the Mahaveera named Vardhamana.

- Prof. T.W.Rhys Davis (Quoted in Encyclopaedia Britanica Vol. XXIX 10th Ed. P 661)

७ नरक के पर्याप्ता-अपर्याप्ता भेद=१४

संसारी जीवों के ५६३ भेद... (मनुष्य-देव-नारकी).....

मनुष्य के ३०३ भेद : जैसे कि - १५ कर्मभूमि, ३० अकर्मभूमि और ५६ अंतर्द्वीप इस तरह मिलकर कुल १०१ क्षेत्र के गर्भज मनुष्य के पर्याप्ता + अपर्याप्ता मिलकर कुल २०२ तथा १०१ क्षेत्र के संमुर्च्छिम अपर्याप्ता★... मिलाकर कुल ३०३ भेद होते हैं। (संमुर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त ही होते हैं।)

देवों के १९८ भेद : जैसे कि - देवों के मुख्य ४ प्रकार हैं। (१) भवनपति (२) व्यंतर (३) ज्योतिष और (४) वैमानिक। अब इन चारों के भेद-प्रभेद कितने होते हैं? चलिए देखते हैं...।

(१) भवनपति के असुरकुमारादि-१० भेद और परमाधामी के १५-अर्थात् कुल मिलाकर २५ भेद होते हैं। (२) व्यंतर के ८, वाणव्यंतर के ८ तथा तिर्यग्जृंभक के १० अर्थात् कुल मिलाकर २६ भेद होते हैं। (३) ज्योतिष में सूर्य-चंद्र-ग्रह-नक्षत्र और तारा के ५ - चर और ५ - अचर कुल मिलाकर १० भेद होते हैं। (४) वैमानिक में १२ देवलोक + ९ ग्रैवेयक + ५ अनुत्तर + ३ किल्बिषिक + ९ लोकान्तिक मिलकर कुल ३८ भेद होते हैं। अर्थात् २५ + २६ + १० + ३८ = ९९ भेद के पर्याप्ता + अपर्याप्त मिलकर १९८ भेद देवों के होते हैं।

नारकी के १४ भेद : जैसे कि ७ नारकी के पर्याप्ता + अपर्याप्ता कुल मिलाकर १४ भेद होते हैं।

इस तरह तिर्यंच के ४८, मनुष्य के ३०३, देवों के १९८ और नारकी के १४ भेद मिलकर कुल ५६३ भेद संसारी जीवों के होते हैं।[१]

★ *प्रज्ञापना सूत्र[२] में प्रश्न हैं कि - "मनुष्य कितने प्रकार के कहे गये हैं?" तो उत्तर में कहा कि "मनुष्य दो प्रकार के कहे गये हैं... जैसे कि (१) संमुर्च्छिम मनुष्य और (२) गर्भज मनुष्य। वहाँ फिर से प्रश्न हुआ कि हे भगवन्! यह संमुर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति कहाँ होती है? तो उसके उत्तर में कहा कि - हे गौतम! ४५ लाख योजन प्रमाण मनुष्य क्षेत्र में अढाईद्वीप और समुद्रों में, १५ कर्मभूमि, ३० अकर्मभूमि और ५६ अंतर्द्वीप में रहे हुए गर्भज मनुष्यों के ही (१) विष्टा (२) पेशाब (३) कफ (४) नाक का मैल (५) वमन(ऊलटी) (६) पित्त (७) बिगडा हुआ खून अर्थात् पीप (रसी) (८) खून (९) वीर्य (१०) सूखे हुए वीर्य के पुद्गल फिर से भीने हो जाएँ तो (११) मृतक का कलेवर (शरीर) (१२) स्त्री-पुरुष के संयोग (संभोग) में (१३) नगर की गटरों और (१४) अन्य सर्व अशुचिवाले स्थानों में संमुर्च्छिम मनुष्य अंगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण अवगाहन (ऊँचाई) के उत्पन्न होते हैं। तथा वे असंज्ञी, मिथ्यादृष्टि अज्ञानी और सर्व पर्याप्ति द्वारा अपर्याप्त ही होते है तथा अंतर्मुहूर्त का आयुष्य भोगकर काल करते हैं। यह संमुर्च्छिम मनुष्य अत्यंत सूक्ष्म होने से चर्म के चक्षुवाले अर्थात् अपने जैसे छद्मस्थ जीव कोई भी नहीं देख सकते हैं, परंतु ज्ञानी भगवंतोंने अपनी ज्ञानदृष्टि से ही इन जीवों को देखा है और इनका शास्त्रों में यथार्थ वर्णन किया है।*

(१) संथारग पयन्ना। (२) प्रज्ञापना सूत्र, पद-२१

170

"The Jain philosopher as I know is free from dogmatism, frank, realistic and stands in close relation to other realistic schools of thought. They have left for the posterity a full fledged philosophy which is indeed an invaluable heirloom."

Mohd. Abdul Waheed Khan (Director of A.P.)

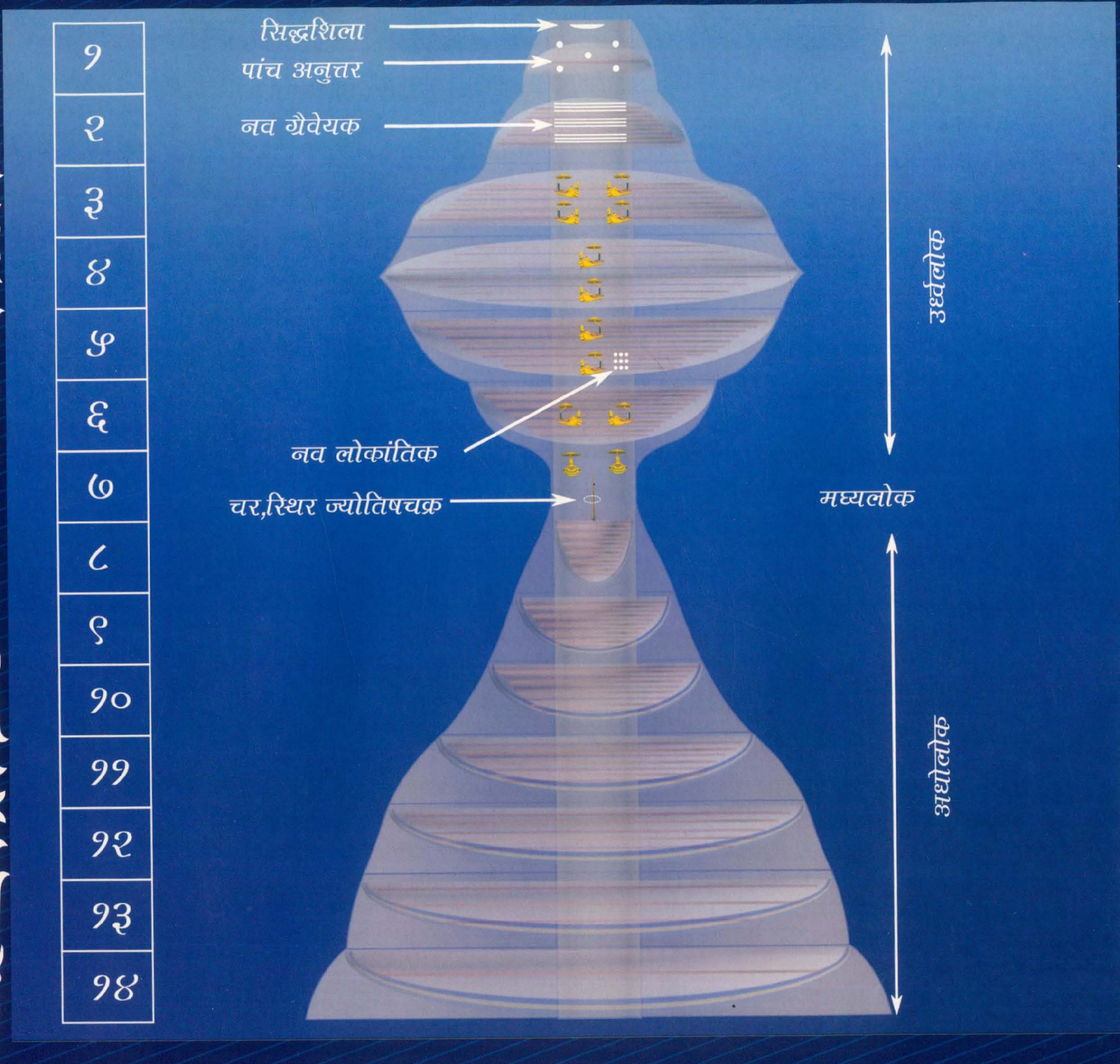
१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
सिद्धशिला
पांच अनुत्तर
नव ग्रैवेयक
नव लोकांतिक
चर,स्थिर ज्योतिषचक्र
उर्ध्वलोक
मध्यलोक
अधोलोक

संसारी जीवों के ५६३ भेद पर कुछ विचारणा.....

क्रम	स्थल	नारक	तिर्यंच	मनुष्य	देव	सर्व संख्या
१	भरत क्षेत्र में...	०	४८	३(५)	०	५१
२	महाविदेह क्षेत्र में...	०	४८	३(५)	०	५१
३	जंबूद्वीप में...	०	४८	२७(६)	०	७५
४	लवणसमुद्र में...	०	४८	१६८(७)	०	२१६
५	धातकीखंड में...	०	४८	५४(६)	०	१०२
६	कालोदधि समुद्र में...	०	४८	०	०	४८
७	पुष्करवरार्ध द्वीप में	०	४८	५४(६)	०	१०२
८	अधोलोक में	१४	४८	३(५)	५०(८)	११५
९	नंदीश्वरद्वीप में...	०	४६(१)	०	०	४६
१०	नंदीश्वरादि समुद्र में...	०	४६(१)	०	०	४६
११	तिर्च्छालोक में...	०	४८	३०३	७२(९)	४२३
१२	ऊर्ध्वलोक में...	०	४८	०	७६(१०)	१२४
१३	मेरुपर्वत में...	०	४८	०	०	४८
१४	अढाईद्वीप में...	०	४८	३०३	०	३५१
१५	१२ देवलोक में...	०	२०(२)	०	४८	६८
१६	९ ग्रैवेयक में...	०	१४(३)	०	१८	३२
१७	लोक के अंत में...	०	१२(४)	०	०	१२
१८	अधोग्राम में...	०	४८	३	०	५१
१९	अपनी मुट्ठी में...	०	१२(४)	०	०	१२

(१) नंदीश्वरद्वीप और समुद्र आदि स्थलों पर बादर पर्याप्ता-अपर्याप्ता तेउकाय बिना तिर्यंचगति के ४६ भेद होते हैं।(२) १२ देवलोक में बादर तेजस्काय (तेउकाय) पर्याप्ता-अपर्याप्ता बिना एकेन्द्रिय के २० भेद होते हैं।(३) ग्रैवेयक में... पांच सूक्ष्म, बादर पृथ्वी और वायु ये ७ के पर्याप्ता + अपर्याप्ता = १४ भेद होते हैं।(४) लोक के अंत में और अपनी मुट्ठी में पांच सूक्ष्म और बादर वायु ये ६ के पर्याप्ता + अपर्याप्ता = १२ भेद होते हैं।(५) भरत-महाविदेह-ऐरावत और अधोग्राम के १००० योजन अंदर आई हुई कुबडी विजय...इन सबमें १-१ गर्भज पर्याप्ता-अपर्याप्ता और संमुर्च्छिम अपर्याप्ता ऐसे कुल ३ भेद मनुष्य के हैं।(६) जंबूद्वीप में भरत-ऐरावत-महाविदेह और युगलिक के ६ क्षेत्र-मिलकर ९ क्षेत्रों के २७ भेद होते हैं तथा धातकी और पुष्करवरार्धद्वीप में उससे द्विगुण-द्विगुण क्षेत्र (१८ होने से) उसके गर्भज पर्या.+अपर्या. और संमु.अपर्या. मनुष्य के ५४ भेद होते हैं।(७) लवणसमुद्र में ५६ अंतर्द्वीप के गर्भज पर्याप्ता + अपर्याप्ता और संमुर्च्छिम अपर्याप्ता मनुष्य के कुल १६८ भेद होते हैं। (८) अधोलोक में १० भवनपति + १५ परमाधामी = २५, उसके पर्याप्ता + अपर्याप्ता मिलकर कुल ५० भेद होते हैं।(९) तिर्च्छालोक में ८ व्यंतर, ८ वाणव्यंतर, १० तिर्यग्जृंभक देव, ५ स्थिर + ५ अस्थिर ज्योतिषचक्र के कुल मिलाकर ३६ भेद होते हैं, उसके पर्याप्ता + अपर्याप्ता कुल मिलाकर ७२ भेद देवों के होते हैं।(१०) ऊर्ध्वलोक में ३८ प्रकार के वैमानिक देवों के पर्याप्ता + अपर्याप्ता मिलकर कुल ७६ भेद होते हैं।

171

"Jainism began when this world began, I am of the opinion that Jainism is much older than vedas."

- Swami Rammishrajji Shastri

"The religion of very ancient Predynasic Egypt, supposed to be lakhs of year old also appears to be quite akin to Jainism"

- Dr. Robert Churchwell

लोकवर्ती समावगाही
असंख्य गोलक चित्र...

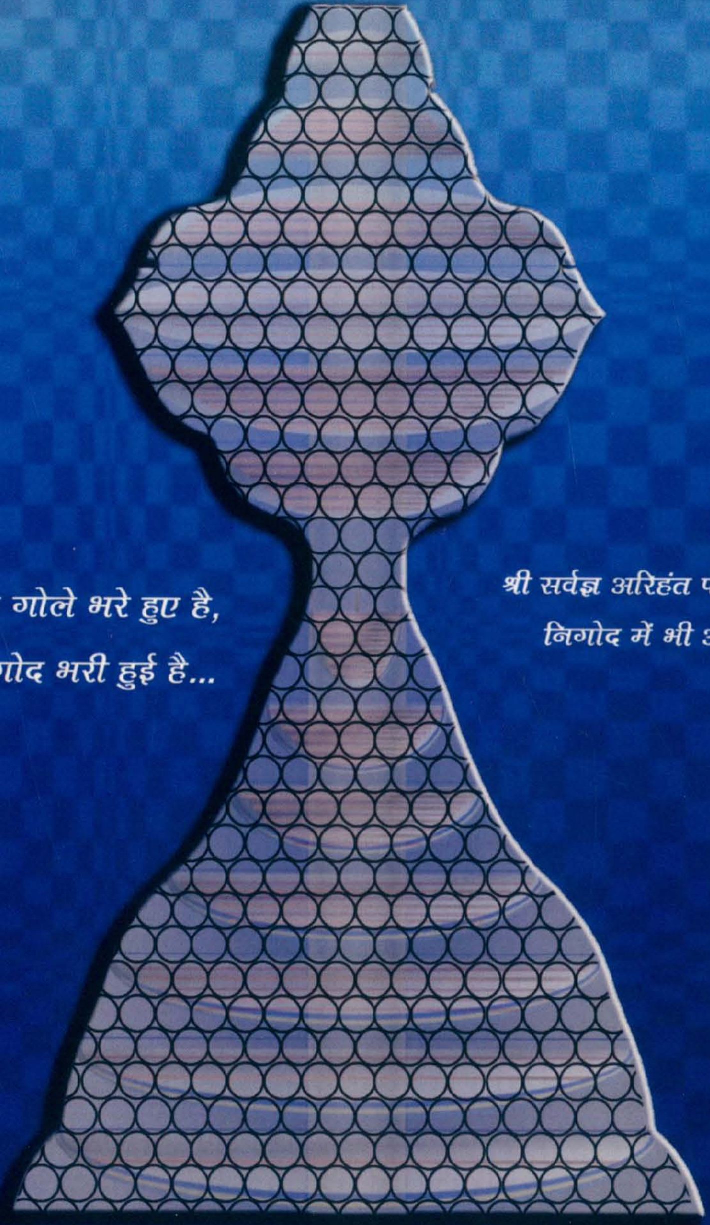

: चित्र परिचय :

१४ राजलोक में निगोद के असंख्य गोले भरे हुए है,
और एक एक गोले में असंख्य निगोद भरी हुई है...

श्री सर्वज्ञ अरिहंत परमात्माओ के द्वारा एक एक
निगोद में भी अनंती जीवराशी कहीं है!

निगोद के जीवों का स्वरूप.....

समग्र लोकाकाश में गोले भरे होने से निगोद के सर्व गोले असंख्यात हैं। एक-एक निगोद के गोले में निगोदिये जीव के साधारण शरीर असंख्य असंख्य है, साथ ही १-१ निगोद में ज्ञानी महर्षिओंने अनंत अनंत जीव कहे हैं[1] इस एक एक (१-१) निगोदाश्रयी जीवों तीनों काल के सिद्ध के जीवों से अनंतगुण आज है और अनंतकाल जाने पर भी अनंतगुण ही रहनेवाले हैं, इसलिए कहा गया है की - जइआइ होइ पुच्छा जिणाणमग्गंमि उत्तरं तइया । इक्कस्स निगोयस्स, अनंतभागो अ सिद्धिगओ ॥१॥ अर्थ स्पष्ट है तथा कहा भी गया है कि - ''घटे न राशि निगोद की, ओर बढ़े न सिद्ध अनंत ।'' पुद्गलों से जैसे सर्वलोक व्याप्त है वैसे जीवों से भी यह लोक व्याप्त हैं अर्थात् निगोदादि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव अंजनचूर्ण से भरी डिबिया की तरह ठांस ठांस कर लोक में सर्वत्र रहे हुए हैं । उन सूक्ष्मजीवों का मनुष्यादिक जीवों के हलचल से, शस्त्रादिक से, अग्नि से भी नाश नहीं होता, ये जीव किसी भी कार्य में अनुपयोगी तथा शस्त्रादिक के घात से अविनाशी चर्मचक्षु से अदृश्य होने से ''सूक्ष्म'' कहलाते हैं, इनसे विपरीत लक्षणवाले को ''बादर'' कहते हैं।

इस निगोद के जीव के दो प्रकार हैं। (१) सांव्यवहारिक (२) असांव्यवहारिक[2] । जो जीव अनादि सूक्ष्म निगोद से एक बार भी निकलकर बादर पृथ्व्यादि जीवों में आते है वहाँ वे पृथ्व्यादि विविध नाम के व्यवहार (अनादिकाल से ''सूक्ष्म निगोद'' रूप का सूक्ष्मत्व नष्ट करके अन्य नाम से व्यवहार होना वह) के योग से ''सांव्यवहारिक'' गिना जाता है। साथ ही सांव्यवहारिक की छाप पाये हुए जीव दुर्भाग्य योग से पुनः निगोद में जाए तो भी एक बार व्यवहार में आ गये होने से, वहाँ भी उनका व्यवहार सांव्यवहारिक रूप में ही होता हैं। ''असांव्यवहारिक'' वे कहलाते है जो जीव अनादिकाल से गुफा में जन्मे और गुफा में ही मर गये की तरह सूक्ष्म निगोद में ही रहे हैं, कदापि बाहर निकलकर बादरत्व या त्रसादिपने का पाये नहीं हैं।

जितने जीव सांव्यवहारिक राशि में से मोक्ष में जाए, उतने ही जीव असांव्यवहारिक राशि में से निकलकर सांव्यवहारिक राशि में आते हैं। जिससे व्यवहार राशि हमेशा समान रहे, जबकी असांव्यवहारिक राशि हर समय घटती जाती है (परंतु कदापि अनंत मिटकर असंख्य नहीं हो सकती) इस निगोद में भव्य तथा अभव्य जीव सदाकाल अनंत-अनंत ही होते हैं तथा ऐसे भी अनंत भव्य जीव हैं जो सामग्री के अभाव से कभी भी मुक्ति में नहीं जाने वाले है। (जिसे जातिभव्य जीव कहा जाता है।) निगोद अर्थात् ''अनंत जीवों का एक साधारण शरीर'' जो स्तिबुकाकार (पानी के बुलबुले) समान है। इस निगोद में वर्तित जीव समकाल में उत्पन्न होनेवाले होते हैं, अनंत जीवों की शरीररचना, उच्छ्वास, निःश्वास, आहारादि योग्य पुद्गलों का ग्रहण-विसर्जन आदि सब एक साथ में ही समकाल में होता है, और इसी से साधारण (समान स्थितिवाले) रूप में पहचाने जाते हैं।

निगोद के जीवों की भव गिनती : *१ मिनिट में १,३४६ भव, ४८ मिनिट में ६५,५३६ भव, १ दिन में १९,६६,०८० भव, १ महिने में ५,८९,८२,४०० भव करे तो १ वर्ष में ७०,७७,८८,७०० भव करते हैं। अब १ मिनिट = ६० सेकन्ड, ४८ मिनिट = २,८८० सेकन्ड, अब १ सेकन्ड में १ भव करे तो ४८ मिनिट में २,८८० भव होते हैं। १ सेकन्ड में १० भव करे तो ४८ मिनिट में २८,८८० भव होते हैं। १ सेकन्ड में २० भव करे तो ४८ मिनिट में ५७,६०० भव होते हैं। १ सेकन्ड में २२ भव करे तो ४८ मिनिट में ६३,३६० भव होते हैं फिर भी २,१७६ भव जो बाकी रहते है तो उसके लिए त्रेवीसवाँ भव प्रायः ७७% जीतना पूर्ण करते हैं।*

(१) (A) त्रैलोक्यदीपिका-४५६ (B) पदार्थस्थापनासंग्रह-६१ (C) बृहत्संग्रहणी-३०१ (D) निगोदषट्त्रिंशिका-१२ (२) पदार्थस्थापनासंग्रह-६०

वटवृक्ष मात्र नन्हा सा बीज ही नहीं है परंतु उसमें एक महान वटवृक्ष बनने की सभी सम्भावनाएं छिपी हुई है। वैसे ही आत्मा मात्र सामान्य शक्तियों का ही स्वामी नहीं, उसमें परमात्मा बनने की सभी सम्भावनाएं छिपी हुई है। उन्हीं सभी सम्भावनाओं को पूर्वरूपेण प्रगट करने के लिए ही यह अनमोल-दुर्लभ मनुज जन्म है। इसलिए इस मानवजन्म को प्रमाद में युं ही गवाँ मत देना।

औदारीकादि ५ शरीर...

औदारीक शरीर...
वैक्रिय शरीर...
आहारक शरीर...
तैजस शरीर...
कार्मण शरीर...
गौत्र
अंतराय
नाम
ज्ञाना.
आयुष्य
आत्मा
दर्शना.
मोहनीय
वेदनीय

औदारिकादि ५ शरीर.....

जिस कर्म के उदय से जीव को शरीर की प्राप्ति होती है उसे शरीर नामकर्म कहते हैं। इस शरीर के पांच प्रकार[१] शास्त्रों में बताए गए हैं... चलिए ! देखते हैं अनुक्रम से...

(१) औदारिक शरीर = जिस कर्म के उदय से जीव को औदारिक शरीर की प्राप्ति होती हैं, उसे औदारिक शरीर नामकर्म कहते हैं। जिस शरीर में माँस, रस, रक्त, अस्थि, वसा (चर्बी), शुक्र (वीर्य) और मज्जा हो वह औदारिक शरीर होता है। सभी मनुष्य एवं तिर्यंचों का वह औदारिक शरीर ही है।

(२) वैक्रिय शरीर = विक्रिया अर्थात् विविध क्रिया करनेवाला शरीर। जिस नाम कर्म से जीव को वैक्रियशरीर की प्राप्ति होती है, वह सूक्ष्म पुद्गलों से निर्मित होता हैं इस वैक्रिय शरीर से विभिन्न प्रकार के रूपादि बनाए जा सकते हैं इसलिए इसे वैक्रिय शरीर कहते हैं। ऐसा शरीर देव एवं नारकीयों को तो जन्म से ही प्राप्त होता हैं तो कुछ तिर्यंच एवं मनुष्यों को भी तप-त्यागादि के द्वारा वैक्रियलब्धि प्राप्त होने से यह वैक्रिय शरीर की रचना कर सकते हैं।

(३) आहारक शरीर = जिस कर्म के उदय से जीव को आहारक शरीर की प्राप्ति हो, उसे आहारक शरीर नामकर्म कहते हैं। तीर्थंकर परमात्मा की ऋद्धि देखने के लिए, अथवा अपने संशय का निराकरण करने के लिए १४ पूर्वधर महात्मा स्फटिक की भाँति अत्युज्ज्वल एवं व्याघात रहित अर्थात्, न तो स्वयं दूसरों से रूकता है और न दूसरों को रोकनेवाला होता है। ऐसे जो शरीर का निर्माण करते हैं उसे आहारक शरीर कहते हैं। ऐसे शरीर से अन्य क्षेत्र में स्थित सर्वज्ञ के पास पहुँचकर अपने संदेह का निवारण कर फिर अपने स्थान पर पहुँच जाते हैं। यह कार्य भव परंपरा की अपेक्षा से ४ बार और एक भव में सिर्फ २ बार ही होता है, जिसका समय मात्र अंतर्मुहूर्त प्रमाण ही कहा गया है।

(४) तैजस शरीर = जिस कर्म के उदय से जीव को तैजस शरीर की प्राप्ति होती है उसे तैजस शरीर नामकर्म कहते हैं। यह शरीर तैजस पुद्गलों से बना हुआ, आए हुए आहार को पचानेवाला तथा तेजोलेश्या और शीतलेश्या के साधक जीवों का शरीर तैजस शरीर कहलाता हैं। यह शरीर संसारी एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय सभी जीवों को होता ही हैं।

(५) कार्मण शरीर = जिस कर्म के उदय से जीव को कार्मण शरीर की प्राप्ति होती है, उसे कार्मण शरीर नामकर्म कहते है। कार्मण वर्गणा से बने शरीर को कार्मण शरीर कहते हैं। कार्मण शरीर स्वयं आठ कर्म स्वरूप है, एवं अति सूक्ष्म है इसलिए इसका अंत किए बिना संसार चक्र का भी अंत नहीं होता हैं।

किस गति में कितने शरीर पाये जाते है ? चलिए ! देखते हैं नीचे के कोष्टक से...

क्रम	गति	शरीर	क्रम	गति	शरीर
१	पृथ्वीकाय	औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर	६	विकलेन्द्रिय	औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर
२	अप्काय	औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर	७	तिर्यंच पंचेन्द्रिय	औदारिक-वैक्रिय-तैजस-कार्मण शरीर
३	तेउकाय	औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर	८	मनुष्य गति	औदारिक-वैक्रिय-आहारक-तैजस-कार्मण शरीर
४	वायुकाय	औदारिक-वैक्रिय-तैजस-कार्मण शरीर	९	देवगति	वैक्रिय-तैजस-कार्मण शरीर
५	वनस्पतिकाय	औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर	१०	नरकगति	वैक्रिय-तैजस-कार्मण शरीर

(१) (A) षट्खंडागम-१४/५, ६/सूत्र-४४/४६ (B) प्रवचनसार, मूल-१७१ (C) तत्त्वार्थसूत्र-२/३६ (D) सर्वार्थसिद्धि-८/११/३८९/९ (E) पंचसंग्रह-२/४/४७/६ (F) राजवार्तिक-५/२४/९/४८८/२

"It is imposible to know the begining of Jainism.

- Major Genral Forlong England

"Bhagwan Mahavira again taught Jainism. Before him, there were twenty-three Teachers. They also propagated Jainism. From this, the antiquity of Jainism is established."

- Lokmanya Balgangadhar Tilak

ऋजु एवं वक्रगति...

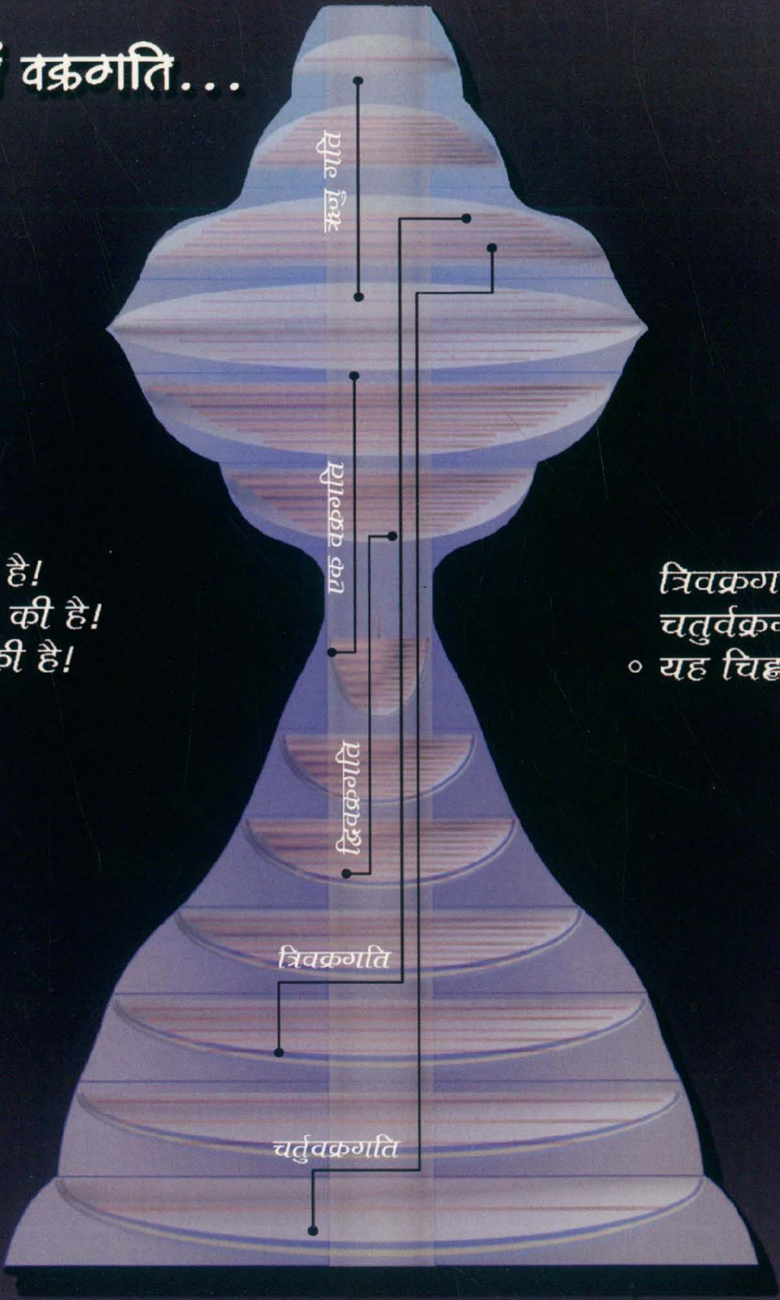

ऋजुगति १ समय की है!
एक वक्रगति २ समय की है!
द्विवक्रगति ३ समय की है!

त्रिवक्रगति ४ समय की है!
चतुर्वक्रगति ५ समय की है!
◦ यह चिह्न "आत्मा" का सूचक है!

ऋजु और वक्रगति का स्वरूप.....(पार्ट - १)

विवक्षित भव का आयुष्य पूर्ण करके दूसरे किसी भव में (अथवा मोक्ष पर) पहुँचने के लिए अथवा एक शरीर को छोड़कर भवान्तर में दूसरा शरीर ग्रहण करने के लिए जीव दो प्रकार से प्रस्थानगति करता हैं... (१) ऋजु (सरल) और (२) वक्र (कुटिल)। ये गतियाँ एक भव से लेकर दूसरे भव के बीच आती होने से इसे ''अन्तराल'' गति भी कहते हैं। (१) ऋजुगति : यह गति एक समय की ही हैं, इसका दुसरा नाम ''अविग्रहा'' भी हैं।[१] इस गति से परभव में जाता जीव मृत्यु पाने के साथ ही सीधी गति से उत्पत्ति स्थान में सीधा एक ही समय में उत्पन्न हो जाता हैं। इसे एक से अधिक समय लगता ही नहीं हैं। इसका कारण यह भी है कि - संसारी जीव के मृत्यु स्थान का जो श्रेणिप्रदेश होता है उसकी समश्रेणी पर ही (छः दिशाओं में से किसी भी एक दिशा की) उत्पत्ति प्रदेश हो तो सूक्ष्म शरीरधारी जीव वक्रगति से न जाता हुआ सीधा ही अपने जन्मस्थान पर पहुँचता होने से अधिक समय का अवकाश रहता ही नहीं है। (२) वक्रगति : यह गति एक से अधिक समयवाली हैं। अतः एकविग्रहा = दो समयवाली, द्विविग्रहा = तीन समयवाली, त्रिविग्रहा = चार समयवाली और चतुर्विग्रहा[२] = पांच समयवाली... इस प्रकार वह चार प्रकारी है और इस गति का ''विग्रहगति'' ऐसा नामांतर भी हुआ है।

वक्रगति ऐसा नामकरण क्यों किया गया है ? तो इसका समाधान इस प्रकार है कि - जीव एक शरीर को छोड़कर जब किसी दूसरे शरीर को ग्रहण करने के लिए परभव की ओर प्रस्थान (गति) करता है, तब स्वोपार्जित कर्मवश कारण उसे कुटिल वक्रगति की और जाना पड़ता है अर्थात् उसके द्वारा वहाँ उत्पत्ति स्थान पर पहुँचता हैं। इस तरह संसारी जीवों का परलोकगमन ऋजु (सरल) और वक्र (कुटिल) इन दो गतियों से होता है। ऋजु की बात तो ऊपर बताई गई है, लेकिन वक्रगमन क्यों करना पड़ता है ? तो इसके समाधान में यह बताते हैं कि - वक्रगति से जानेवाले जीव का मृत्युस्थान और उत्पत्तिस्थान (ऋजु की तरह) दोनों जब समश्रेणी पर होते नहीं है लेकिन वक्रगति विश्रेणी पर होते है, इसी कारण जीव सीधा या श्रेणिभंग करके तिरछा भी जा सकता नहीं है। यह एक अटल नियम है, अतः इसे प्रथम सीधा जाकर बाद में मोड़ लेकर ही उत्पत्ति की श्रेणी पर पहुँचकर उत्पत्ति प्रदेश पर पहुँचना पड़ता है, इसी मोड़ को धारण करने का नाम ही ''वक्रगति'' है।

ऋजुगति किसे प्राप्त होती है ? कर्ममुक्त होकर मोक्ष में जाते सभी जीवों में तथा संसारी जीवों में ऋजुगति मिलती हैं। इसमें मुक्तात्मा का मुक्तिगमन (मोक्षगमन) हमेशा ऊर्ध्व-समश्रेणी पर ही होता है। यह अटल नियम है, इसी से यह रहस्य भी स्पष्ट होता है कि - जीव की मूलगति तो ऋजु (सरल) ही है, लेकिन अपने कर्मवशवर्ती होकर उसे वक्रगति का अनुभव करना पड़ता है।

वक्रगति किसे मिलती हैं ? सिर्फ संसार में जन्म धारण करनेवाले जीवों में वक्रगति मिलती है। जब की मुक्तिगामियों में यह गति नहीं मिलती है।

(१) तत्त्वार्थ-भाष्य में यह नाम हैं। (२) तत्त्वार्थ-भाष्य में यह गति हीं नही हैं।

"Yes, his (the Jaina's) religion is only true one upon earth, the primitive faith of all mankind."

- Rev. A.J. Dubois

ऋजु एवं वक्रगति में आहार - अणाहारक दर्शक चित्र...

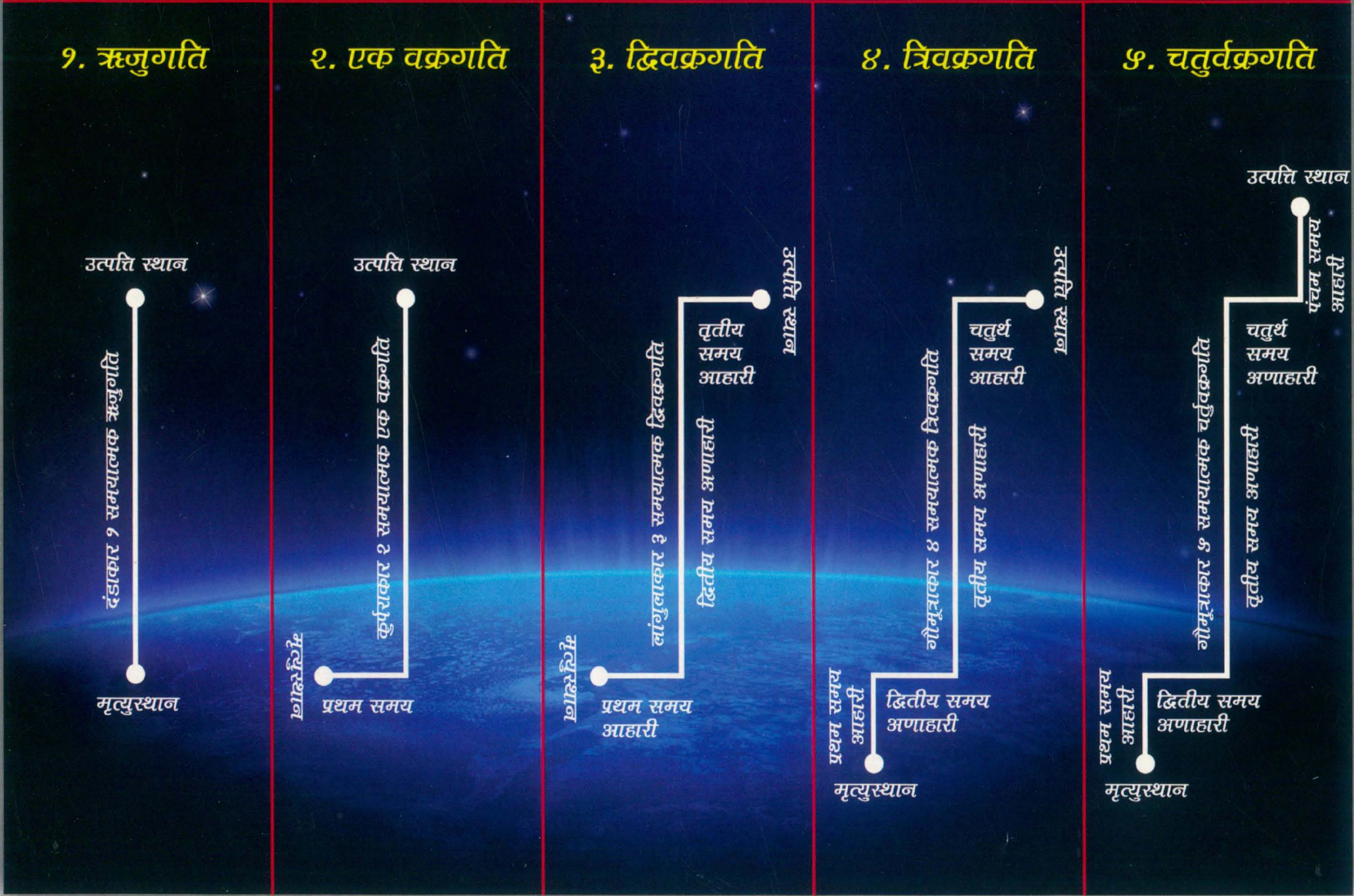

ऋजु और वक्रगति का स्वरूप.....(पार्ट-२)

इसमें भी (पूर्व में बताई हूई.....) चार प्रकार की इन विग्रहगतियों में से एकविग्रह और द्विविग्रहा तो सिर्फ त्रस जीव मरकर पुन: त्रस होनेवाले है उनके लिए ही होती है क्योंकि त्रसनाडी में मरकर त्रसनाडी में ही उत्पन्न होनेवाले जीवों में अधिक वक्रा का संभव रहता ही नहीं हैं। जो जीव स्थावर है उनमें (ऋजुसहित) पांचों गतियाँ होती हैं, क्योंकि उन्हें त्रसनाडी के बाहर भी जन्म धारण करना पड़ता है। एक वक्र में १, दो में २, तीन में ३, चार में ४ मोड़ (घुमाव) आते हैं।

इस प्रकार जब विग्रहगति को प्राप्त हुए जीवों में पाँच समय की चतुर्विग्रहा होती है तब चार मोड़ आते होने से चार समय (व्यवहारनय से ३) अनाहारीपन होता है, तो ऐसी ही दूसरी विग्रहगतियों में ३-२-१ (व्यवहारनय से २-१-०) अनुक्रम से अनाहारीपन मिलता हैं। ऋजुगति से उत्पन्न होनेवाले को अनाहारक बनने का अवसर मिलता ही नहीं हैं।

दो गति की जरूरत है क्या ? हाँ। चैतन्य और जड़ कहो, अथवा जीव और पुद्‌गल कहो ये पदार्थ गतिशील हैं। ये गतिशील पदार्थ स्वाभाविक रूप में ही निश्चित नियमपूर्वक ही गति करनेवाले हैं, और उसकी स्वाभाविक गति तो आकाशप्रदेश की समश्रेणी के अनुसार ही होती हैं (जिस आकाशप्रदेश श्रेणी को हम तो देख ही नहीं सकते।) अर्थात्, दिशाओं की समानान्तर श्रेणी होती हैं। अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व, अधो इन छ: में से किसी भी दिशा में समश्रेणी में होती हैं। लेकिन दिशा से विदिशा में या विदिशा में से दिशा में सीधी सीधी नहीं होती। अत: विश्रेणिगमन नहीं होता। लेकिन सब जीवों के लिए समश्रेणी गति संभवित भी नहीं है। इसलिए जो जीव उस कर्मवशवर्ती है उन्हें तो विश्रेणी से भी गति करनी पड़ती है, जिसे हम वक्रगति कहते हैं। तब जैसे मोड़ आया कि गति में एक समय का काल ज्यादा जाएगा ही इसलिए ऊपर कह आएँ की एक वक्र को दो समय दो वक्र को तीन समय जाता है इत्यादि....।

॥ ऋजु-वक्रगति में परभवायुष्य के उदय समय में आहारक अनाहारक समय-निर्णय का यंत्र... ॥

क्रम	गतिनाम	कितने समय की ?	परभवायुष्य उदय		आहारीपना		अनाहारीपना	
			व्यवहार नय से	निश्चय नय से	व्यवहार नय से	निश्चय नय से	व्यवहार नय से	निश्चय नय से
१	ऋजुगति	एक समय की	प्रथम समय में	प्रथम समय में	प्रथम समय में	प्रथम समय में	अनहारीपणा नहीं है	अनहारीपणा नहीं है
२	एकवक्रा	दो समय की	द्वितीय समय में	प्रथम समय में	पहले-दुसरे समय पर	पहले-दुसरे समय में	---	१ समय
३	द्विवक्रा	तीन समय की	द्वितीय समय में	प्रथम समय में	पहले-तीसरे समय पर	पहले-तीसरे समय में	दुसरे समय पर	२ समय
४	त्रिवक्रा	चार समय की	द्वितीय समय में	प्रथम समय में	पहले-चौथे समय पर	पहले-चौथे समय में	दुसरे-तीसरे समय पर	३ समय
५	चतुर्वक्रा	पांच समय की	द्वितीय समय में	प्रथम समय में	पहले-पांचवे समय पर	पहले-पांचवे समय में	तीसरे-चौथे-पांचवे समय पर	४ समय ५ समय

(१) तत्त्वार्थ-भाष्य में यह नाम हैं। (२) तत्त्वार्थ-भाष्य में यह गति हीं नही हैं।

175

"I personally believe that if only Jainism had kept its hold firmly in India, we would perhaps have had more united India & certainty a greater India than today."

Shri R.K.Shanmukham Chetty (Minister of the Central Cabinet, Govt. Of India)

"From modern historical researches, we come to know that long before Brahminism developed into Hindu Dharma, Jainism was prevalent in this country."

- JusticeRengnekar (Mumbai High Court)

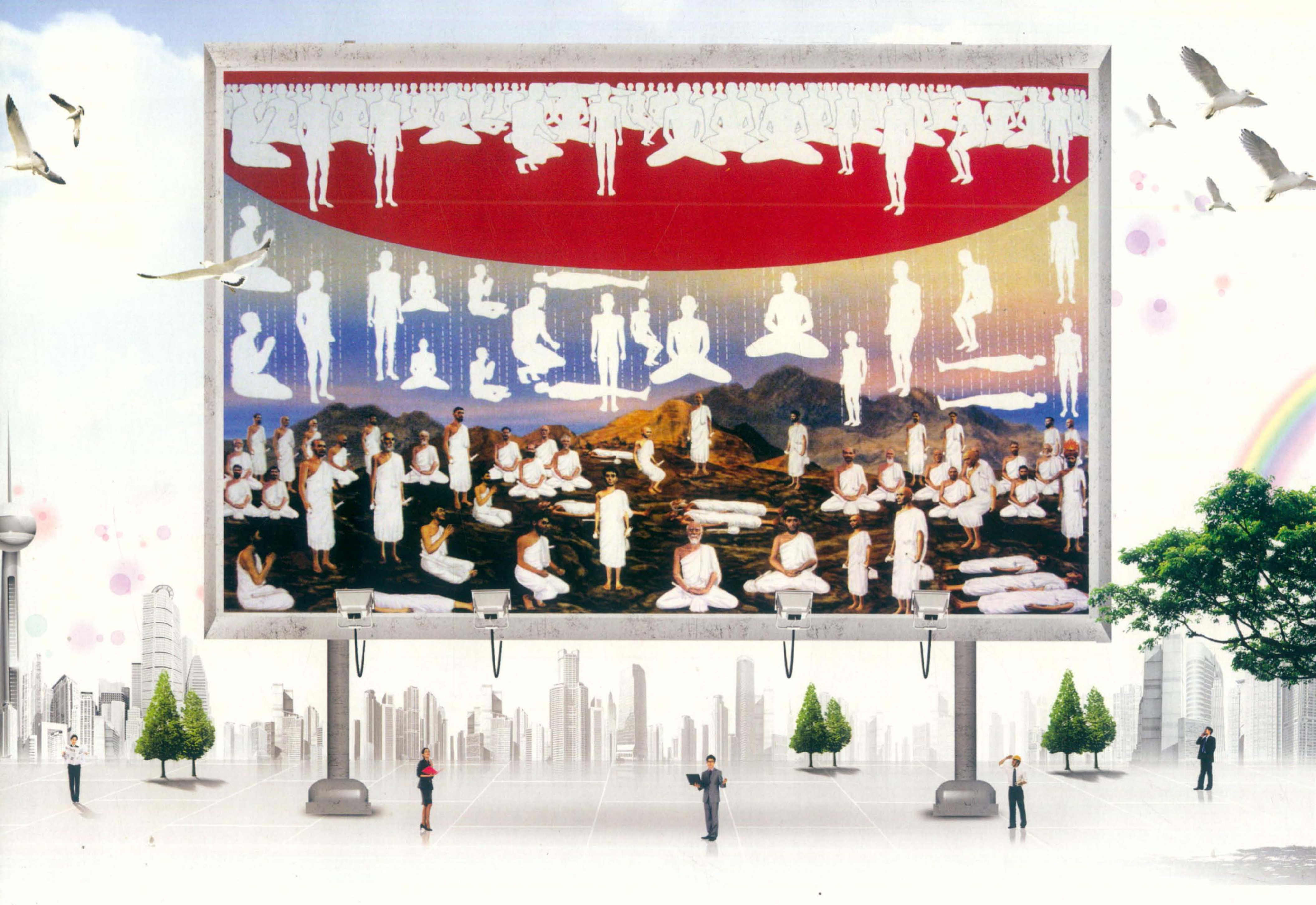

मनुष्य और देवों के सुख से अनंतगुण सुख सिद्धात्माओं के पास हैं। तीनों काल में उत्पन्न हुए अनुत्तर विमानवासी देवों से भूतकाल में भोगा हुआ, वर्तमान में भोगने का और भविष्य में भोग जानेवाला-इन तीनों काल के सुख को एकत्र करके अनंत वर्ग से वर्गित (अनंतबार वर्ग गुना) करें तो भी मोक्षसुख की तुलना न पाई जा सकती है। यह सुख किसी भी इन्द्रिय से ग्राह्य नहीं है, वचनग्राह्य भी नहीं है। मनोग्राह्य और तर्कग्राह्य भी नहीं है, लेकिन सूक्ष्मबुद्धि से अर्थात् सर्वज्ञ से ही ग्राह्य हैं। तप-ध्यान से साधना करनेवाला महापुरुष ही इसका साक्षात्कार कर सकता है। अन्यथा इस सुख की मधुरता को केवली भगवान ज्ञान से जानने पर भी गुड़ को पानेवाला मूंगा आदमी गुड़ के स्वाद को जानने पर भी उसकी मिठास नहीं बता सकता वैसे ही केवली भगवान भी स्वमुख से नहीं कह सकते...।

जैसे मन यथेच्छित अन्न-पाणी का भोजन करने के बाद पुरुष अपने को तृप्त हुआ समझता हैं वैसे ही सिद्धात्माएँ स्वात्मगुण से तृप्त हुई होने से वे कभी अतृप्त होती ही नहीं है अतः वे सदा सुखी ही होती हैं। साथ ही वस्तुतः तीनों जगत में मोक्ष की उपमा देने लायक कोई दृष्टांत हैं ही नहीं। वह तो उपमा के लिए भी अगोचर ही है। उसके लिए उववाईसुत्त (औपपातिक सूत्र) में एक दृष्टांत भी दिया हैं।

जैसे कि- एक जंगल में एक मलेच्छ भील निराबाध रूप से रहता था। एक बार उसी अटवी में उलटीचालवाले के घोडे के कारण मार्गभ्रष्ट होकर पास में रहता एक राजा वहाँ आ पहुँचा। मलेच्छ ने उसे देखा। उसने राजा का यथोचित आदर-सत्कार किया और मार्ग भूले राजा को मार्ग बताकर उसे अपने देश में पहुँचा दिया। अब वह मलेच्छ प्रतिगमन करने की तैयारी करता है लेकिन राजाने देखा कि इसने मुझ पर उपकार किया है अतः उसका बहुत ही आथित्य करना चाहिए। तत्पश्चात् राजा ने उसे रहने की लिए एक विशाल महल दिया। राजा का माननीय बना था अतः प्रजा का भी वह माननीय बन गया।

यह गरीब मलेच्छ जन ऊँचे महल की अटारी में, मनहर बाग-बगीचे में, सुंदर स्त्रियों से परिवृत्त (घीरा हुआ) अनेक प्रकार के विषय सुखों को भोगता है। इतने में वर्षाऋतु आ गई। आकाश में मेघाडम्बर हुए, मृदंग के जैसी मधुर गर्जनाएँ होने से मयुर केकारव करते नाच उठे, यह देखकर उसे अपना अरण्यावास याद आया तथा वहाँ जाने की तीव्र अभिलाषा के कारण, अंत में राजा ने उसे जाने की रजा (अनुमति) दी, अतः वहाँ पर वो अपने अरण्यावास में आ पहुँचा। वहाँ उसे अपने परिवारजन्य तथा मित्रोंने पूछा-भाई ! आप जहा रह आएं, वह नगर कैसा था ? वहाँ कैसा आनंद भोगा ? आदि... परंतु जंगल में नगर की वस्तुओं के समान, वस्तुओं के अभाव के कारण कहने की अत्यंत उत्कंठा होने पर भी वह मलेच्छ एक भी वस्तु को समझा न सका। इसी तरह उपमा के अभाव में सिद्ध परमात्मा के सुख का वर्णन भी कहा नहीं जा सकता हैं अर्थात् मैं कहने को असमर्थ हूँ।

(१) प्रज्ञापना सूत्र, प्रथम-पद, सूत्र-८

सिद्ध भगवंत हमेशा सुखी क्यों ?
क्योंकि इनके पास ये ४ वस्तुऐं नहीं है...
१) तन, २) मन, ३) स्वजन, ४) समाज

सिद्ध भगवंतों का सुख कैसा ?
१) परफेक्ट, २) परमानेन्ट, ३) प्योर, ४) पर्सनल, ५) पेरेमल

सिद्ध भगवंतों का सुख अनुभव में क्यों नहीं आता है ?
कारण - अपना सुख
१) प्रवृत्तिजन्य, २) प्रयत्नजन्य,
३) पुण्यजन्य, ४) पुद्गलजन्य,
और ५) पण्डा (शरीर) जन्य है।

उपर से सिद्धशिला का विहंगम दृश्य...

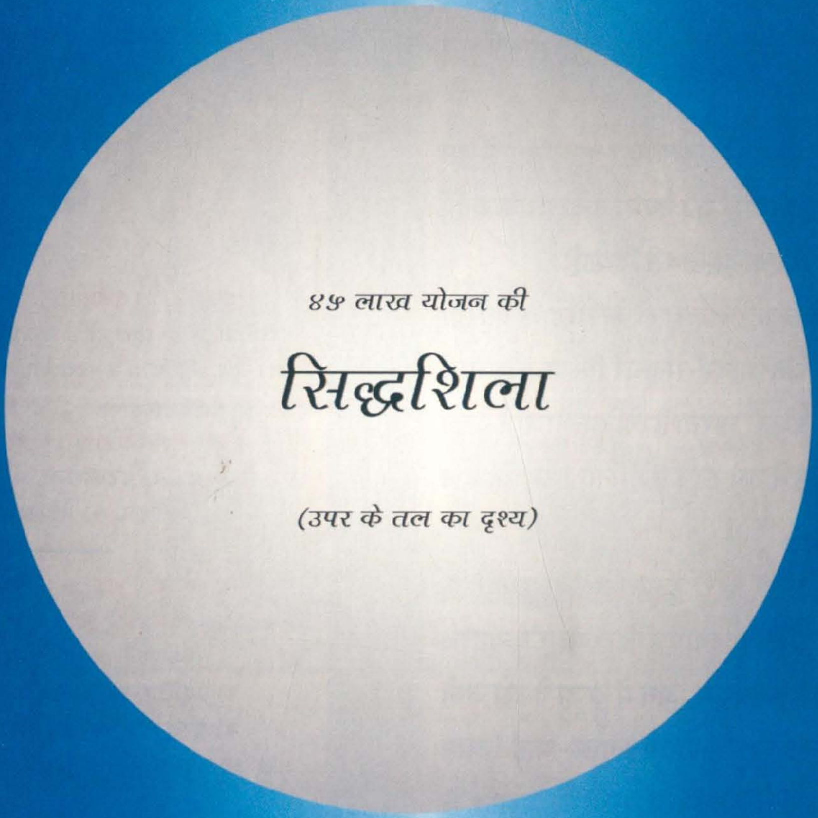

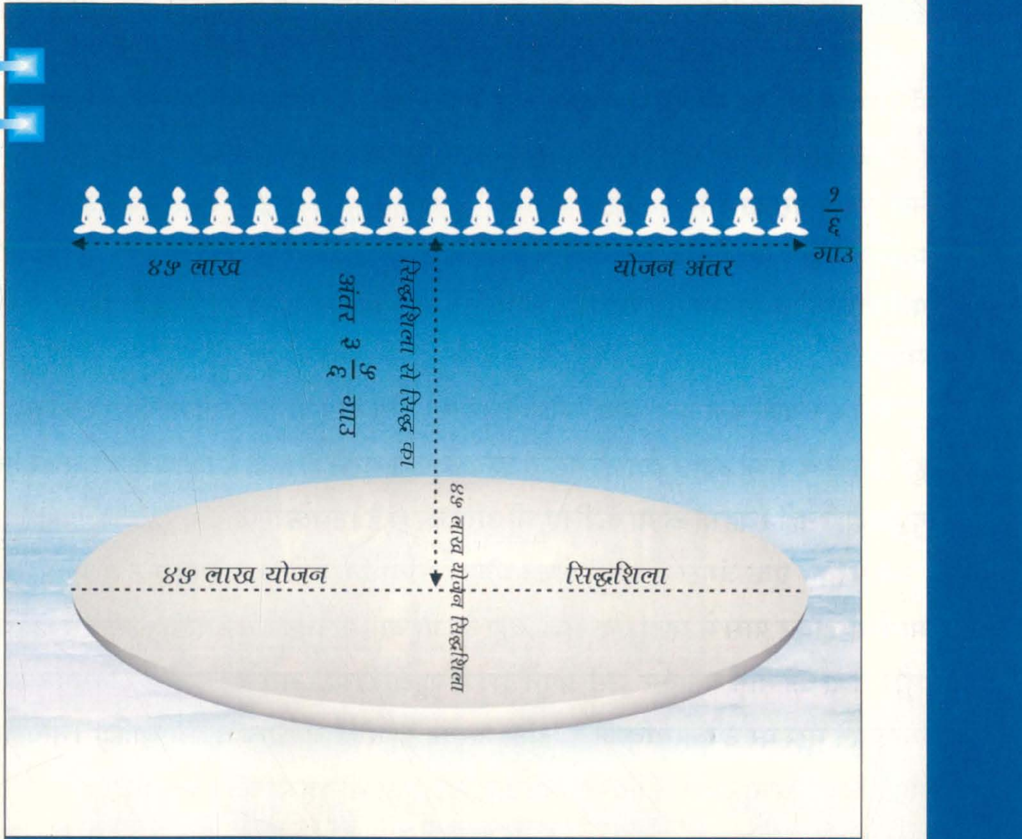

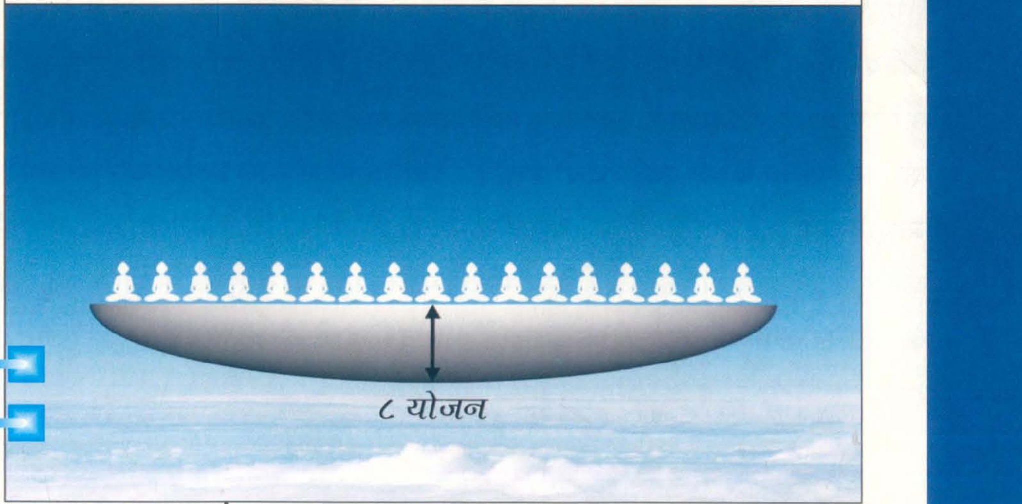

सिद्धशिला एवं सिद्धात्माएँ.....

वैमानिक निकाय के अंतिम अनुत्तर के मध्यवर्ती सर्वार्थसिद्ध नाम के महाविमान से ऊपर बारह (१२) योजन जाने पर ४५ लाख योजन के विष्कम्भवाली (वृत्त होने से आयाम भी उतना ही) स्फटिक के समान निर्मल, ईषत्प्राग्भार नाम की ''सिद्धशिला'' आई है। इस शिला से ऊपर उत्सेधांगुल प्रमाणवाले एक योजन के अंत में लोक का अंत आता है, वहाँ तक सिद्ध के जीवों की स्थिति अवगाहना होती है।

विशेषतः ये सिद्ध के जीव लोक के अंतभाग में स्पर्शकर रहे हैं, उन जीवों का कभी पुनरागमन नहीं होता। यह सिद्धशिला श्वेत-सुवर्णमय और कुछ पीतवर्ण, संयुक्त, ऊर्ध्व (सीधा) छत्र के आकार में संस्थित, घी से भरे कटोरे के समान, प्राण-भूत-जीव-सत्त्वों को सुख देनेवाली तथा हिम-गौक्षीर जैसी उज्ज्वल हैं। श्री जिनेश्वर परमात्माने इस सिद्धशिला के १२ नाम कहे हैं जो इस प्रकार हैं... (१) ईषत् (२) ईषत्प्राग्भार (३) तन्वी (४) तनुतन्वीका (५) सिद्धि (६) सिद्धालय (७) मुक्ति (८) मुक्तालय (९) लोकाग्र (१०) लोकस्तुपिका (११) लोकाग्रप्रतिवाहिनी तथा (१२) सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वसुखावहा...

यह सिद्धशिला बराबर मध्य में ऊपर से नीचे तक आठ योजन मोटी हैं। तत्पश्चात् उस मोटाई को सर्व दिशा-विदिशाओं में १-१ प्रदेश में (और योजनान्त में अंगुलपृथक्त्व प्रमाण) हीन करते करते यावत् शिला के अंतिम भाग में पहुँचने पर अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी पतली होती हैं। अर्थात् मक्खी के पंख से भी अधिक पतली होती हैं।

देह में से आत्मा निकलकर मोक्ष में जाए तब अस्पृशद्गति से अर्थात् बीच के या आजुबाजु के किसी भी आकाशप्रदेशों को स्पर्श किये बिना ही ऋजुगति से सीधी ही एक समय पर मोक्ष में जाती है। कहा जाता है मोक्ष में जाते वक्त आत्मा सर्व अंगों में से निकलती है। जहाँ एक सिद्ध है वहा अनन्त सिद्ध पूर्व से बिराजित हैं।

सिद्ध आत्मा के अष्टकर्म क्षय होने से अष्ट महागुणों की प्राप्ति होती है। इनमें (१) ज्ञानावरणीय कर्मक्षय से अनन्तज्ञान। (२) दर्शनावरणीय कर्मक्षय से अनन्तदर्शन। (३) वेदनीय कर्मक्षय से अव्याबाधसुख। (४) मोहनीय कर्मक्षय से शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व तथा क्षायिक चारित्र (५) आयुष्य कर्मक्षय से अक्षयस्थिति (६) नाम कर्मक्षय से अरूपीपणा (७) गोत्र कर्मक्षय से अगुरुलघुपणा और (८) अंतराय कर्मक्षय से अनन्तवीर्य[१]।

(१) (A) भगवती आराधना, मूल-२१३३ (२) (A) नियमसार, मूलगाथा-७२ (B) धवला-१/१, १/२३, गाथा-१२७/२०० (C) गोम्मटसार-जीवकाण्ड, मूल-६८/१७७ (D) महापुराण-२१/११४-११८ (E) द्रव्यसंग्रह, मूल-१४/४१ (F) तत्त्वानुशासन-१२०/१२२

177

मृत्यु काल पर तमाम आत्मप्रदेश जो पैर में जमा हो जाये और अंत में वही से ही जो आत्मा निकले तो वह जीव नरकगामी, जंघा से निकले तो तिर्यंचगामी, छाती से निकले तो मनुष्यगामी और मस्तक से निकले तो आत्मा देवगामी बनता है एवं सर्व अंगो से जो आत्मा निकले तो सिद्ध बनता है।

(स्थानांग सूत्र / अध्याय ५.)

९ प्रकार के "क" से अतीत सिद्ध भगवंत :-

१) कालातीत, २) कायातीत, ३) कार्यातीत, ४) कामातीत, (इच्छातीत), ५) कर्मातीत, ६) क्रियातीत, ७) कषायातीत, ८) कल्पनातीत, ९) कल्पातीत।

जघन्य अवगाहना
१ हाथ- ८ अंगुल
मध्यम अवगाहना
४ हाथ- १६ अंगुल
उत्कृष्ट अवगाहना ३३३ १/३ धनुष्य
मध्यम अवगाहना
४ हाथ- १६ अंगुल
जघन्य अवगाहना
१ हाथ- ८ अंगुल
सिद्धशिला

सिद्धात्मा की अवगाहना.....

सामान्यत: सिद्ध का संस्थान नहीं होता फिर भी पूर्वभव की अपेक्षा से औपाधिक आकार का स्थूल से व्यपदेश किया जा सकता है। सिद्धगति में जानेवाले जीव मनुष्यभव में उत्कृष्ट से ५०० धनुष्य की अवगाहनावाले (इससे अधिक शरीरी नहीं) और जघन्य से दो हाथ की अवगाहनावाले (इससे न्यून शरीरी नहीं) तथा जघन्य से आगे और उत्कृष्ट से अर्वाक्-अंदर के सर्व मध्यम अवगाहनावाले जीव कहलाते हैं। सामान्यत: एसा नियम है कि - अन्तिम समय में मनुष्य के मूल शरीर की जो अवगाहना हो उसके तीसरे $^1/_3$ भाग की हीन अवगाहना में वे जीव मोक्ष में जाते हैं [१], अत: ५०० धनुष्य की उत्कृष्ट कायावाले जीव चौदहवे गुणस्थानक में अयोगी अवस्था में शैलेशीकरण के समय, सूक्ष्मक्रियाअप्रतिपाती ध्यान के बल से अपने शरीर के मुख-उदरादि सारे पोले भागों को स्वात्मप्रदेशों से पूरा करते हैं। और सर्व आत्मप्रदेशों को एकत्र करने पूर्वक प्रदेशघन करने से (जो शरीर विस्तृत था, उसके पोले भाग पूरित हो जाने से तीसरे भाग से हीन हुआ, क्योंकि प्राय: स्वशरीर में तीसरे भाग का पोलापन होता है।) ५०० धनुष्य की काया का मान तीसरे भाग से हीन होने से ३३३ धनुष्य और एक धनुष्य का तीसरा भाग - अथवा एक कोश का छट्ठा भाग इतना हुआ। इसी अवगाहना में ये जीव लोकान्त में आए सिद्धस्थान में उत्पन्न होते हैं, अत: इस सिद्धस्थान पर पहुँचने के बाद की परम उत्कृष्ट अवगाहना एक कोश के छट्ठे भाग (३३३ $^1/_3$ धनुष्य) की जानें...

(इति उत्कृष्टावगाहना.....)

मध्यमावगाहना, वह सात हाथ के शरीरवाली आत्मा (जिस तरह प्रभु महावीर) सूक्ष्म ध्यानबल से पूर्वोक्त रीत से प्रदेशघन करने पूर्वक तीसरे भाग से हीन होने से सिद्ध में उत्पन्न हो तब ४ हाथ और १६ अंगुल की होती है ऐसा शास्त्र में कहा है। सचमुच तो जघन्य से आगे और उत्कृष्ट से अर्वाक् वह सर्व मध्यम अवगाहना ही कहलाती है। फिर भी आगम में निश्चित रूप से (४ हाथ - १६ अंगुल) कही है अत: इस प्रकार यहाँ कहा हैं।

(इति मध्यमावगाहना.....)

दो हाथ की कायावाला संसारी जीव पूर्वोक्त नियमानुसार शुषिर भागों को पूर कर प्रदेशघन करें तब दो हाथ का तीसरा भाग हीन होने से शेष १ हाथ और ८ अंगुल अवगाहनावाला रहता है। और फिर तुरंत सिद्ध हो तब (उसी अवगाहना में सिद्धात्माएँ सिद्धस्थान में उत्पन्न होने से) १ हाथ अधिक ८ अंगुल सिद्धों की जघन्य अवगाहना निश्चय रूप में होती हैं।

(इति जघन्यावगाहना.....)

ये सिद्ध होनेवाले जीव मृत्यु के समय सोते-बैठे-खड़े सीधे-उलटे या संक्षिप्त में जिस जिस अवस्था में रहकर काल (मृत्यु) पाये, वैसे ही संस्थान में, उसी आकार में सिद्धक्षेत्र में उत्पन्न होते हैं। साथ ही अंतिम समय में पोलापन पूरित होने से अनिश्चित आकृतिवाला प्रदेशघन होता होने से उस संस्थान को (घटाकाश की तरह) निश्चित नाम दिया नहीं जा सकता, इसलिए सिद्ध के जीव को दीर्घ-ह्रस्व आदि संस्थान नहीं है साथ ही अशरीरी होने से वृद्धत्व भी नहीं है।

(१) (A) परमात्मप्रकाश, मूल-१/५४ (B) तिलोय पण्णत्ति-९/१० (C) द्रव्यसंग्रह, मूल व टीका-१४/४४/२

178

"In Jainism I find a solution to the hitherto unsolved problems of existence, I find plain answers to dificult question which cannot be truthfully refuted and which sink into and satisfy every corner of the brain, which if attacked by a sear-ching criticism show up only still more brilliantly."

-H. Warren, London

सिद्ध के १५ भेद.........

जिनसिद्ध
अजिनसिद्ध
तीर्थसिद्ध
अतीर्थसिद्ध
स्वयंसंबुद्धसिद्ध
प्रत्येकबुद्धसिद्ध
बुद्धबोधितसिद्ध
स्त्रीलिंगसिद्ध
पुरुषलिंगसिद्ध
नपुंसकलिंगसिद्ध
स्वलिंगसिद्ध
अन्यलिंगसिद्ध
गृहस्थलिंगसिद्ध
एकसिद्ध
अनेकसिद्ध

सिद्ध के १५ भेद और अनंतरादि प्रकार.....

प्रज्ञापनादि आगम ग्रंथों में सिद्ध के जीवों का २ प्रकार से वर्णन देखने को मिलता है (१) अनन्तर सिद्ध (२) परम्पर सिद्ध । यह अनन्तर सिद्ध १५ प्रकार के बताएँ गए है जो इस प्रकार हैं (१) जिनसिद्ध - जो तीर्थंकर रूप में सिद्ध होता हैं । (२) अजिनसिद्ध - तीर्थंकर पद रहित (बाहुबली आदि) (३) तीर्थसिद्ध - तीर्थ स्थापना के बाद सिद्ध बननेवाले (गौतमस्वामी आदि) (४) अतीर्थसिद्ध - तीर्थ स्थापना के पहले सिद्ध बननेवाले (मरुदेवी माता आदि) (५) स्वयंसंबुद्धसिद्ध - जो जीव कोई भी उपदेश बिना ही बोध पाकर सिद्ध बने... (तीर्थंकरादि) । (६) प्रत्येकबुद्धसिद्ध - वह जीव जो एकाद बाह्य कारण से बोध पाकर सिद्ध होता हो.. (करकंडु आदि...) (७) बुद्धबोधितसिद्ध - जो जीव आचार्यादि के उपदेश से बोध पाकर सिद्ध होता है । (गजसुकुमालादि) (८) स्त्रीलिंगसिद्ध - जो जीव स्त्रीशरीर को धारण कर सिद्ध बने... (चंदनबाला आदि) (९) पुरुषलिंगसिद्ध - जो जीव पुरुषलिंग को धारण कर सिद्ध बने... (११ गणधरादि साधु पुरुष) (१०) नपुंसकलिंगसिद्ध-जो जीव जन्म से नपुंसक न हो परंतु पीछे से कोई कारणोसर नपुंसक बना हो ऐसा जीव सिद्ध हो.. (गांगेय आदि) (११) स्वलिंगसिद्ध - जो जीव रजोहरण-पात्रा-गुच्छादि साधुवेष रूप द्रव्यलिंग में सिद्ध हो... (जंबूस्वामी आदि...) (१२) अन्यलिंगसिद्ध- जो जीव परिव्राजकादि अथवा वल्कलादि रूप द्रव्यलिंग में रहे हुए सिद्ध हो (वल्कलचिरी आदि) (१३) गृहिलिंगसिद्ध - जो जीव गृहस्थाश्रम में रहते हुए सिद्ध हों । (भरत चक्रवर्ती आदि) (१४) एक सिद्ध - वह जीव जो एक समय में अकेला ही सिद्ध हो (भगवान महावीर स्वामी जैसे...) (१५) अनेकसिद्ध - जो जीव एक समय में अनेक के साथ सिद्ध हो.. (भगवान ऋषभदेव आदि)[१]

एक समय में अनेक जीव जो मोक्ष में जाते हैं तो ज्यादा में ज्यादा १०८ ही जा सकते हैं इसलिए तो ''प्रवचन सारोद्धार'' में कहा गया है कि बतीसा अडयाला सट्ठी, बावत्तरी य बोद्धव्वा । चुलसीई छन्नउई उ, दुसहियमट्ठुत्तरसयं च ॥ जिसका अर्थ इस प्रकार हैं...

८ समय तक निरंतर १ से लेकर ३२ जीव मोक्ष में जाते हैं... फिर नियमा अंतर पड़ता हैं ।
७ समय तक निरंतर ३३ से लेकर ४८ जीव मोक्ष में जाते हैं... फिर नियमा अंतर पड़ता हैं ।
६ समय तक निरंतर ४९ से लेकर ६० जीव मोक्ष में जाते हैं... फिर नियमा अंतर पड़ता हैं ।
५ समय तक निरंतर ६१ से लेकर ७२ जीव मोक्ष में जाते हैं... फिर नियमा अंतर पड़ता हैं ।
४ समय तक निरंतर ७३ से लेकर ८४ जीव मोक्ष में जाते हैं... फिर नियमा अंतर पड़ता हैं ।
३ समय तक निरंतर ८५ से लेकर ९६ जीव मोक्ष में जाते हैं... फिर नियमा अंतर पड़ता हैं ।
२ समय तक निरंतर ९७ से लेकर १०२ जीव मोक्ष में जाते हैं... फिर नियमा अंतर पड़ता हैं ।
१ समय तक निरंतर १०३ से लेकर १०८ जीव मोक्ष में जाते हैं... फिर नियमा अंतर पड़ता हैं ।[२]

परंपरसिद्ध = अप्रथमसमयसिद्ध, द्वितीयसमयसिद्ध, तृतीयसमयसिद्ध, चतुर्थसमयसिद्ध यावत् संख्यात्-असंख्यात् और अनंतसमय सिद्ध भी होते हैं ।[३]

---

* *सिद्ध भगवंत के ३१ गुण : गोल-चोरस आदि ५ संस्थान, शुक्लादि-५ वर्ण, सुरभि-दुरभि २ गंध, मधुरादि ५ रस, गुरु-लघु आदि ८ स्पर्श, पुरुषवेदादि-३ रहित, अशरीरीपणा-१, असंगपणा-१, जन्मरहितपणा-१ = ५ + ५ + २ + ५ + ८ + ३ + १ + १ + १ = ३१ (दूसरी रीत से) - ५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय, दर्शन-चारित्र रूप २ मोहनीय, ४ आयुष्य, शुभाशुभ रूप २ नामकर्म, २ गौत्रकर्म, ५ अंतरायकर्म के क्षय से = ५ + ९ + २ + २ + ४ + २ + २ + ५ = ३१ गुण सिद्ध भगवंत के होते हैं ।*

(१) (A) प्रज्ञापना सूत्र, प्रथम-पद सूत्र-६/७ (B) चैत्यवंदन महाभाष्य-७३०/७३१ (C) सर्वार्थसिद्धि-१०/९/७७/३ (२) प्रज्ञापना सूत्र, प्रथम-पद, सूत्र-७ की टीका (३) प्रज्ञापना सूत्र, प्रथमपद, सूत्र-८

"Some of the Jaina priest persuaded him to accept Jain religion."
M.C.Notovich
(Christ In India)

"The first poet of the Kannada language was a Jaina. The credit for writting the ancient and the best literary works goes to the Jainas."
Dr.R.R.Narasimhacharya

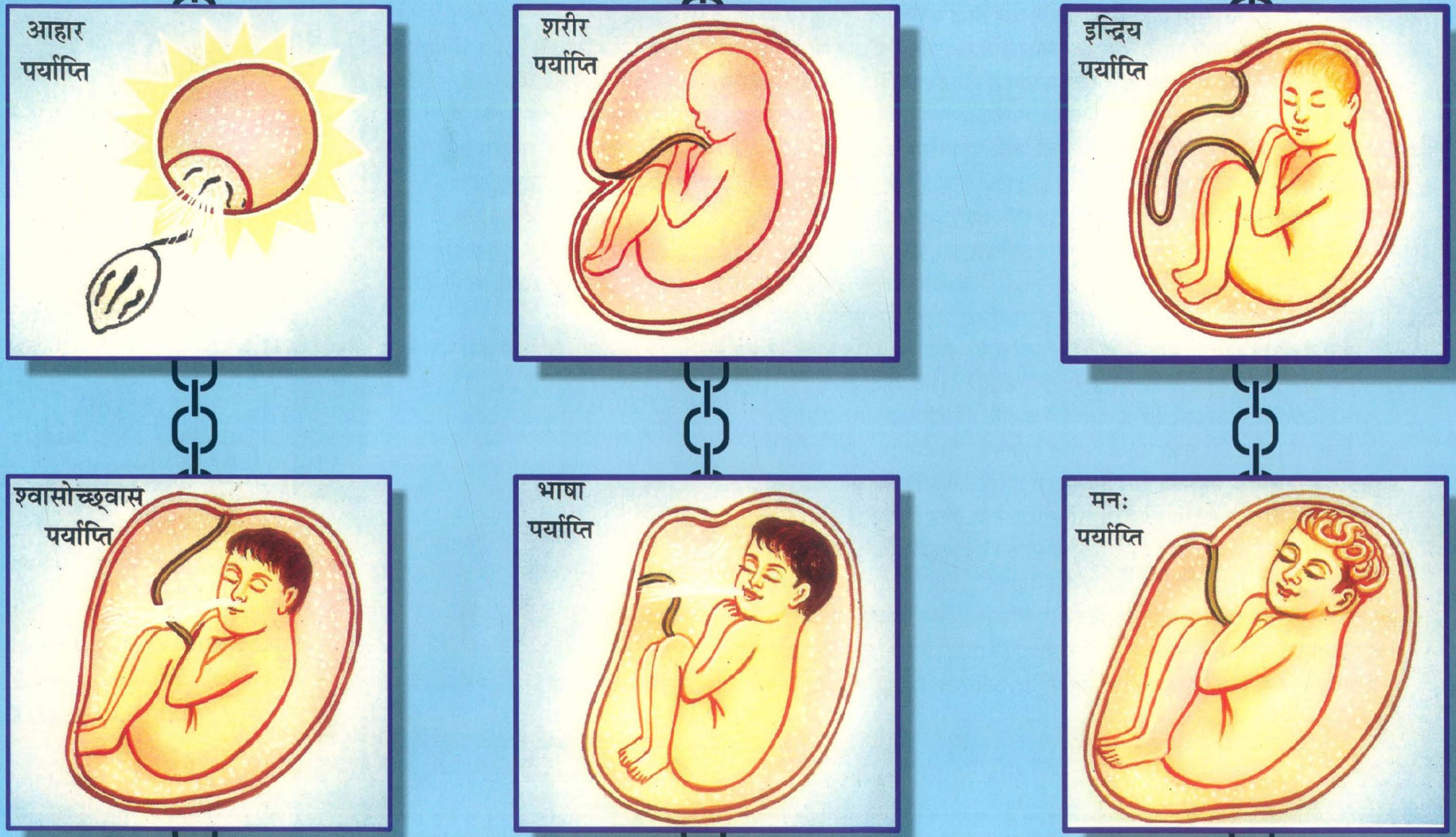
आहार पर्याप्ति
शरीर पर्याप्ति
इन्द्रिय पर्याप्ति
श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति
भाषा पर्याप्ति
मनः पर्याप्ति

आहारादि ६ पर्याप्ति.....

सर्व संसारी जीवों को जन्म के साथ ही जीवनयात्रा में (आयुष्य कर्म के अंत तक) उपयोगी साधन रूप पर्याप्ति की जरूर पड़ती है। जीव जब इस संसार में जन्म धारण करता है कि तुरंत ही पुद्गल परमाणु की सहायता से अपनी-अपनी योग्यतानुसार आहारादि पर्याप्ति रूप शक्ति विशेष का सर्जन करते हैं। तो चलिए मित्रो ! इन ६ पर्याप्ति का स्वरूप नीचे मुजब देख लेते हैं।

(१) आहार पर्याप्ति = जिस शक्ति से जीव उत्पत्ति स्थान में रहकर आहारयोग्य पुद्गल ग्रहण करके उसे खल (मल-मूत्रादि) और रस के रूप में परिणमन करता है... उसे आहार पर्याप्ति* कहते हैं। (२) शरीर पर्याप्ति = जिस शक्ति से जीव रस योग्य पुद्गलों को रस (धातु विशेष), रुधिर, मांस, भेद, अस्थि (हड्डी), मज्जा और वीर्य इन ७ धातुओं के रूप में परिणमन करता हैं... उसे शरीर पर्याप्ति कहते हैं। (३) इन्द्रिय पर्याप्ति = जिस शक्ति से जीव शरीर के रूप में परिवर्तित पुद्गलों से इन्द्रिय योग्य पुद्गल को ग्रहण करके, उसे इन्द्रिय रूप में परिणमन करता है... उसे इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं। (४) श्वासोश्वास पर्याप्ति = जिस शक्ति से जीव श्वासोश्वास योग्य वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके श्वासोश्वास के रूप में परिणमन करके, विसर्जन करे... उसे श्वासोश्वास पर्याप्ति कहते हैं। (आज के Science की भाषा में श्वास लें तो Oxygen तथा विसर्जन करें तो Carbon dioxide.....) (५) भाषा पर्याप्ति = जिस शक्ति से जीव भाषा योग्य वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके उन्हे भाषा के रूप में परिणमन करके छोड़े..... उसे भाषा पर्याप्ति कहते हैं। (६) मनः पर्याप्ति= जिस शक्ति से जीव मन योग्य वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके उन्हें मन रूप में परिणमन करके, उसका परित्याग करे उसे मनःपर्याप्ति कहते हैं। कोई भी जीव आहार-शरीर और इन्द्रिय रूप तीन पर्याप्तियाँ पूर्ण किये बिना नहीं मरता...।

अब किस जीव को कितनी पर्याप्ति होती है ? और कितने समय में ये पर्याप्तियाँ पूर्ण होती हैं देखते हैं नीचे के कोष्टक से.....

क्रम	पर्याप्ति नाम[१]	प्राण बनता है	एकेन्द्रिय (स्थावर)	विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचे.	औदारिक शरीर, संज्ञी पंचे.	वैक्रिय तथा आहारक शरीर	देव तथा नारक
१	आहार	आयुष्य	१ समय	१ समय	१ समय	१ समय	१ समय
२	शरीर	कायबल	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त
३	इन्द्रिय	पांच इन्द्रिय	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	१ समय	१ समय
४	श्वासोश्वास	श्वासोश्वास	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	१ समय	१ समय
५	भाषा	वचनबल	-	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	१ समय	दोनों पर्याप्ति को एक ही
६	मन	मनोबल	-	-	अंतर्मुहूर्त	१ समय	समय में पूर्ण करते है।)

★ आहार के तीन प्रकार हैं। (१) ओजाहार (२) लोमाहार (३) कवलाहार

(१) ओजाहार = उत्पत्ति प्रदेश पर आए हुए आत्मा का प्रथम समय का माता-पिता के अंश का आहार...।

(२) लोमाहार = शरीर के छिद्रों द्वारा जो आहार ग्रहण करने में आता है।

(३) कवलाहार = मुख्र के द्वारा कवल के स्वरूप में जो आहार किया जाता हैं वह...।

(१) बृहत्संग्रहणी सूत्र-३३८

180

जैसे उन्हें आदिकाल में खाने, पीने, न्याय, नीति और कानून का ज्ञान मिला, वैसे ही अध्यात्मशास्त्र का भी ज्ञान जीवोंने पाया। और वे अध्यात्म शास्त्र में सब है, जैसे सांख्य योगादि दर्शन और जैनादि दर्शन। तब तो सज्जनो ! आप अवश्य जान गये होगे कि - जैनमत तब से प्रचलित हुआ है जब से संसार में सृष्टि का आरंभ हुआ।

- सर्वतन्त्र स्वतंत्र सत्संप्रदायचार्य स्वामि राममिश्र शास्त्री

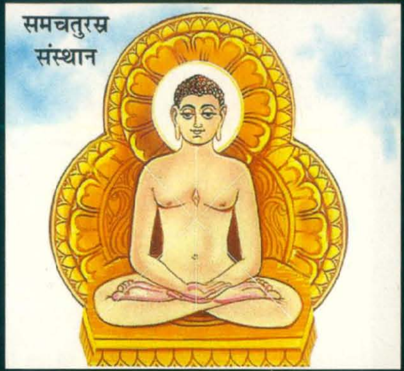

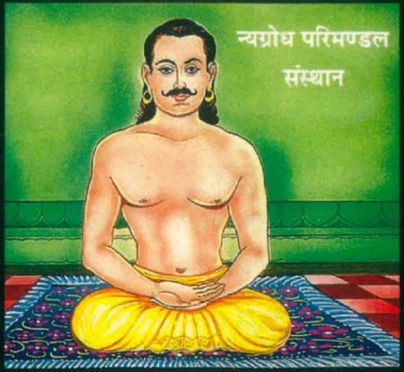

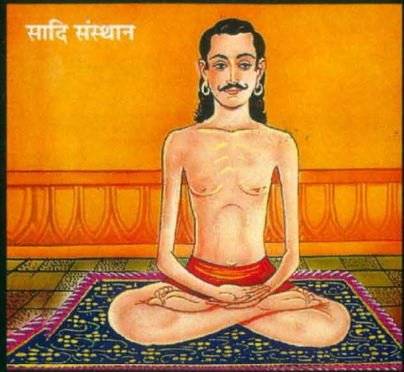

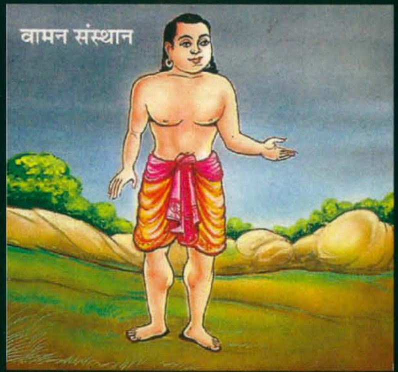

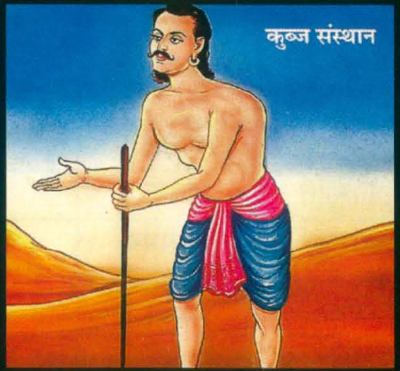

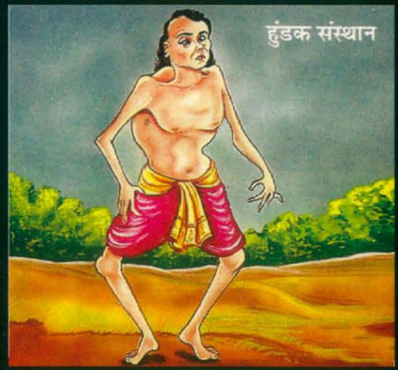

परिमंडल संस्थान

वृत संस्थान

त्रिकोण संस्थान

चतुरस्र संस्थान

आयत संस्थान

जीव के छः संस्थान और अजीव के पांच संस्थान.....

कोई भी वस्तु के आकार को 'संठाण' अथवा 'संस्थान' कहा जाता हैं।[१]

''संतिष्ठन्ते प्राणिनोऽनेन आकारविशेषेणेति संस्थान:'' अर्थात् जिस आकारविशेष से प्राणी अच्छी तरह रह सकते हैं उसे संस्थान कहते हैं। इन संस्थानों के समचतुरस्त्रादि से हुंडक तक छः प्रकार हैं...।[२]

(१) **समचतुरस्त्र संस्थान** = जिनके अंग सुलक्षणोपेत हों उन्हें समचतुरस्त्र संस्थानी कहते हैं अर्थात् पद्मासन पर (तथा पर्यंकासन पर) बैठे हुए पुरुष के चारों कोण विभाग समान मानवाले हों यह..., अर्थात् दाहिने (दक्षिण) घुटन से बाँये काँध (कन्धा) तक, बाँये घुटन से दाहिने काँध तक, दौ पैरों के बीच (कलाई से लेकर) से नासिका तक और बाँये घूटन से दाहिने घुटन तक (ये चारों भाग हर एक और से समान मापवाले होते हैं।) (२) **न्यग्रोध संस्थान** = जो शरीर नाभि से उपर सभी ओर से सुलक्षणयुक्त सुशोभित हों और नीचे वटवृक्ष की तरह लक्षणरहित हो वह न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान हैं। (३) **सादि संस्थान** = न्यग्रोध से विपरित अर्थात् नाभि के नीचे के अंग अच्छे लक्षणयुक्त और नाभि से ऊपर के अंग कुलक्षणयुक्त-कुरूप हो (जैसे शाल्मली वृक्ष) उसे सादि संस्थान कहते हैं। (४) **वामन संस्थान** = पीछे की पीठ-पृष्ट, उदर (पेट) तथा छाती इन तीनों को छोड़कर शेष शिर, कण्ठ, हाथ, पैर इत्यादि अंग यथार्थ लक्षणयुक्त हों वह... वामन संस्थान कहलाता है। (५) **कुब्ज संस्थान** = वामन से ऊलटा अर्थात् शिर, कण्ठ, हाथ, पैर ये सभी लक्षणहीन हो और शेष अवयव लक्षणयुक्त हो वह कुब्ज संस्थान कहा जाता हैं। (६) **हुण्डक संस्थान** = जिसके सभी अंग-अवयव लक्षणरहित हों वह... हुण्डक संस्थान वाले कहे जाते हैं। ये छःहो संस्थान गर्भज मनुष्य तथा तिर्यंचों में हो सकता हैं।

देव हमेशा भवधारणीय शरीर की अपेक्षा से समचतुरस्त्रसंस्थानवाले (चारों और से समान विस्तारवाले) सुलक्षणवंत होते हैं, (उत्तरवैक्रिय की अपेक्षा से ये छः संस्थान हो सकते हैं।) शेष रहे हुए नारक, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय, संमुर्च्छिम पंचेन्द्रिय मनुष्य तथा तिर्यंच इन सभी को हुण्डक संस्थानवाले जाने-समझें (यह मत आगम का है परंतु कर्मग्रंथकार तो छः संस्थान कहते है।)। (एकेन्द्रिय में पृथ्वी-अप्-तेजो-वायु के मसुरचन्द्र-बुलबुला-सुई और पताकादि के आकार जाने।)

अजीव अर्थात् जड़ वस्तु। इस पुद्‌गल रूप जड़ के पांच प्रकार के आकार संस्थान होते हैं।[३]

(१) **परिमंडल अजीव संस्थान** - अर्थात् वृत्ताकार (वलयाकार) जैसा आकार। जिसमें बीच में पोला और बोर्डर पर फिरते गोल चक्कर बंगड़ी जैसा संस्थान... वह परिमंडल संस्थान। (२) **वृत अजीव संस्थान** - अर्थात् थाली जैसा गोल संस्थान...। (३) **त्रिकोण अजीव संस्थान** - अर्थात् त्रिकोणाकार (जिसमें मात्र तीन ही काटखुणे मिलते हो...) (४) **चतुरस्त्र अजीव संस्थान** - अर्थात् चौरसाकार। (जिसमें मात्र चार ही काटखुणे मिलते हों...) (५) **आयत अजीव संस्थान** - अर्थात आकार में जो लंबचौरसवाला हो उसे आयत अजीव संस्थान कहते हैं।[४]

(१) (A) सर्वार्थसिद्धि-५/२४/२९६/१, (B) गोम्मट कर्मकाण्ड-जीवतत्त्वप्रदीपिका-३३/२९/३, (२) (A) त्रैलोक्यदीपिका-२६५ (B) कर्मविपाक (प्र.क.)-१११ (C) बृहत्संग्रहणी-१६३/१६४/१६५ (D) जीवसमास-५१ (E) सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धार-१६ (F) ठाणांगसूत्र-६/४९५ (३) (A) विभक्तिविचार-१२५ (B) पदार्थस्थापना संग्रह-१०० (४) (A) कषायपाहुड-२/२-२२, १५/९/२ (B) भावपाहुड-टीका-६४/२, ९/१३ (C) द्रव्यसंग्रह-१६/५३/६ (D) पंचसंग्रह-प्राकृत-१/४ की टीका, (E) सर्वार्थसिद्धि-८/११/३९०/३ (F) षट्खंडागम-१३/५/५/सूत्र/१०७-३६८

181

The earth does not rotate. The earth has heaviness and elasticity. Therefore it can't move That which moves cannot be heavy and elastic. e.g. fire and air. Air has no heaviness, therefore, it is not steady. Fire has no elastictiy therefore it is not steady. This is not the case with the earth. The earth, therefore, does not rotate.
"Soorya Gati Vigyan"

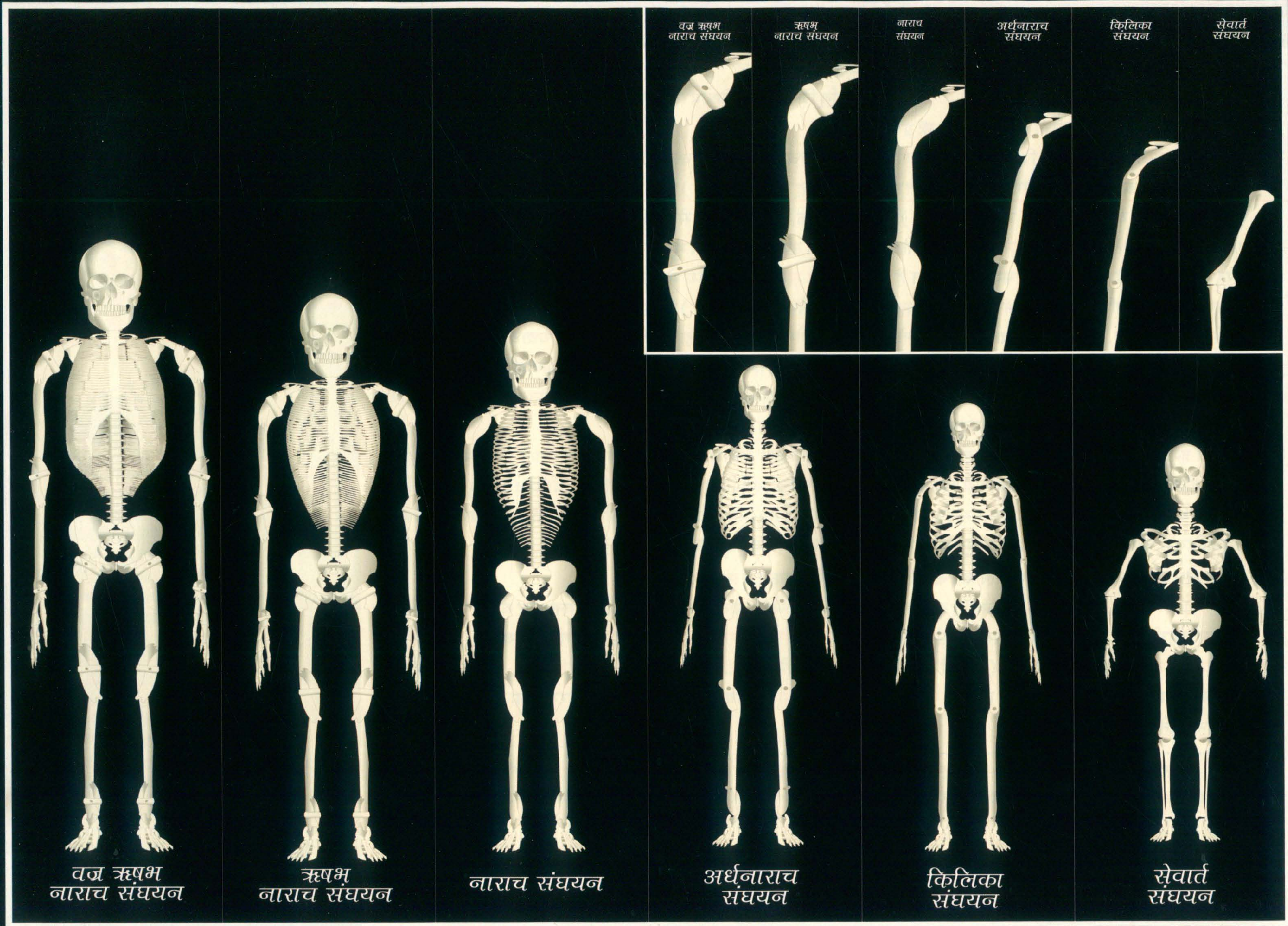
वज्र ऋषभ नाराच संघयन
ऋषभ नाराच संघयन
नाराच संघयन
अर्धनाराच संघयन
किलिका संघयन
सेवार्त संघयन
वज्र ऋषभ नाराच संघयन
ऋषभ नाराच संघयन
नाराच संघयन
अर्धनाराच संघयन
किलिका संघयन
सेवार्त संघयन

छः प्रकार के संघयण.....

संघयण अथवा संहनन ये दोनो शब्द एकार्थकवाची है । संहनन अर्थात् ''सहन्यते संहति विशेषः प्राप्यन्ते शरीरस्यावयवा यैस्तानि संहननानि'' अर्थात् जिससे शरीर के अवयव तथा हड्डियाँ विशेष रूप से मजबूत हो सके उस प्रकार के बंधारण को संहनन-संघयण कहा जाता है ।[1] अथवा ''संघयणमट्ठिनिचओ'' इस पद से ''अस्थि का समूह-गठन विशेष'' उसे संघयण कहते हैं । दूसरे मत से संहनन माने ''शक्तिविशेष'' ऐसा भी अर्थ करते हैं । अथवा उत्तरोत्तर दृढ-दृढतर जो शरीर का गठन (रचना) हैं वह...।

ये संघयण के ६ प्रकार हैं ।[2] (१) **वज्रऋषभनाराचसंघयण** - वज्र अर्थात् कीलि, ऋषभ अर्थात् पट्टा, और नाराच अर्थात् मर्कटबन्ध अर्थात् आमने-सामने हड्डी के भाग एक-दूसरे पर आँटी लगाकर जुटे हुए हो, (बंदर के बच्चे के समान) और उस अस्थि के मर्कटबन्ध पर मध्यभाग में नीचे से ऊपर तक चारों ओर से हड्डियों का एक पट्टा वृत्ताकार से घिरा हुआ होता हैं, और पुनः उसी पट्टे के उपर मध्यभाग में हड्डी से बनी हुई एक मजबूत कीलिका पूरे पट्टे को भेदकर, ऊपर के मर्कटबन्ध को भेदकर, अथवा नीचे के पट्टे को तथा मर्कटबन्ध को भेदती हुई बाहर निकलती है। अर्थात् आरपार निकली हुई होती है । इसे पहला ''वज्रऋषभनाराचसंघयण'' कहते हैं । यह संघयण इतना मजबूत होता है की हड्डी की संधि पर चाहे जितना भी उपद्रव-प्रहार करे या चोट लगाये फिर भी इसका अस्थिभंग होता ही नहीं है और न तो वह भाग संधि से अलग होता है, अर्थात् वह अत्यंत मजबूत हड्डियों की रचना हैं । (२) **ऋषभनाराचसंघयण** - इस संघयण में सिर्फ वज्र शब्द नहीं है, अतः मर्कटबन्ध तथा उसके उपर पट्टा-वे दोनों है लेकिन एक किली नहीं होती है । (३) **नाराचसंघयण** - इसमें सिर्फ मर्कटबन्ध अकेला ही रहता हैं । (अनुक्रम से १-१ गठन घटता जाता है और इससे संघयण में उत्तरोत्तर बल हानी होती है ऐसा समझें) (४) **अर्धनाराचसंघयण** - इसमें मर्कटबन्ध होता है लेकिन अर्धविशेषण से आधा मर्कटबन्ध अर्थात् एक हड्डी का छोर सीधा और कुन्द होता है । उस पर दूसरा सामने की हड्डी का छोर, इसी सीधी हड्डी पर चक्कर काटता हुआ वृत्ताकार में लगाया हुआ रहता हैं, ऐसे चक्कर काटती हुई हड्डी के दूसरे भाग पर हड्डी की कीलिका आरपार निकली हुई होती हैं । (५) **कीलिकासंघयण** - दोनों अस्थि-हड्डियाँ बिना चक्कर लगाए (बिना वृत्ताकार) आपस में सीधे रूप में जुड़े हुए होते है और दोनों हड्डियों को बींधकर कीलिका आरपार निकली हुई होती है ऐसा समझें । (६) **छेवट्ठसंघयण** - यह संघयण अंतिम कोटि का है । इसके हड्डी के संधि के स्थान पर आमने सामने जो छोर है उनमें से एक हड्डी के गड्ढे में दूसरी हड्डी का कुंठित छोर थोड़ा सा अंदर स्पर्श करके रहा हुआ होता है । इसे अन्य भाषा में ''छेदस्पृष्ट'' (उसी हाड के अंतिम भाग से स्पर्शीत) कहा जाता है । उसी तरह इसे ''सेवार्त'' नाम से भी पहचाना जाता है अर्थात् जिन्हे बारंबार सेवा की जरूरत पड़ती है । किसी सामान्य कारण मात्र से ही इस हाड का गठन (रचना) टूट पड़ता है जिसे हड्डी टुटना या उतर जाना या फेक्चर कहा जाता है और तैलादिक मर्दनादि के सेवन से फिर से हड्डी मूल स्थान में बैठ (गड्ढे में) जाती हैं । अतः दर्द से पीड़ित होते हुए भी सेवा मिलने से स्वस्थान में जो अस्थि रचना प्राप्त होती है वह... । वर्तमान के सर्व जीवों को यह अंतिम संघयण मिला हुआ हैं ।

(१) (A) गोम्मटसार-कर्मकाण्ड, जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका-३३/२९/६ (B) सर्वार्थसिद्धि-८/११/३९०/५ (C) राजवार्तिक-८/११/९/५७७/५ (D) धवला-१३, ५, ५-१०७/३६४/५ (२) (A) बृहत्संग्रहणी-१५९ (B) त्रैलोक्यदीपिका-२६१ (C) कर्मविपाक (प्र.क.)-१०८ (D) जीवसमास-१०८ (E) कर्मबत्रीशी-१७ (F) ठाणांग सूत्र-६/४९४ (G) तन्दुलवैचारिक प्रकीर्णक, सूत्र-१४ (H) षट्खण्डागम-६, १/९, सूत्र-३६/७३

Some person says that the earth rotates and stars and planets doesn't rotate or revolve. If it is so, how can birds return to their own nests which they had left some time ago..

- Panch-Siddhantika oh 12-6 (Shree varahmihir)

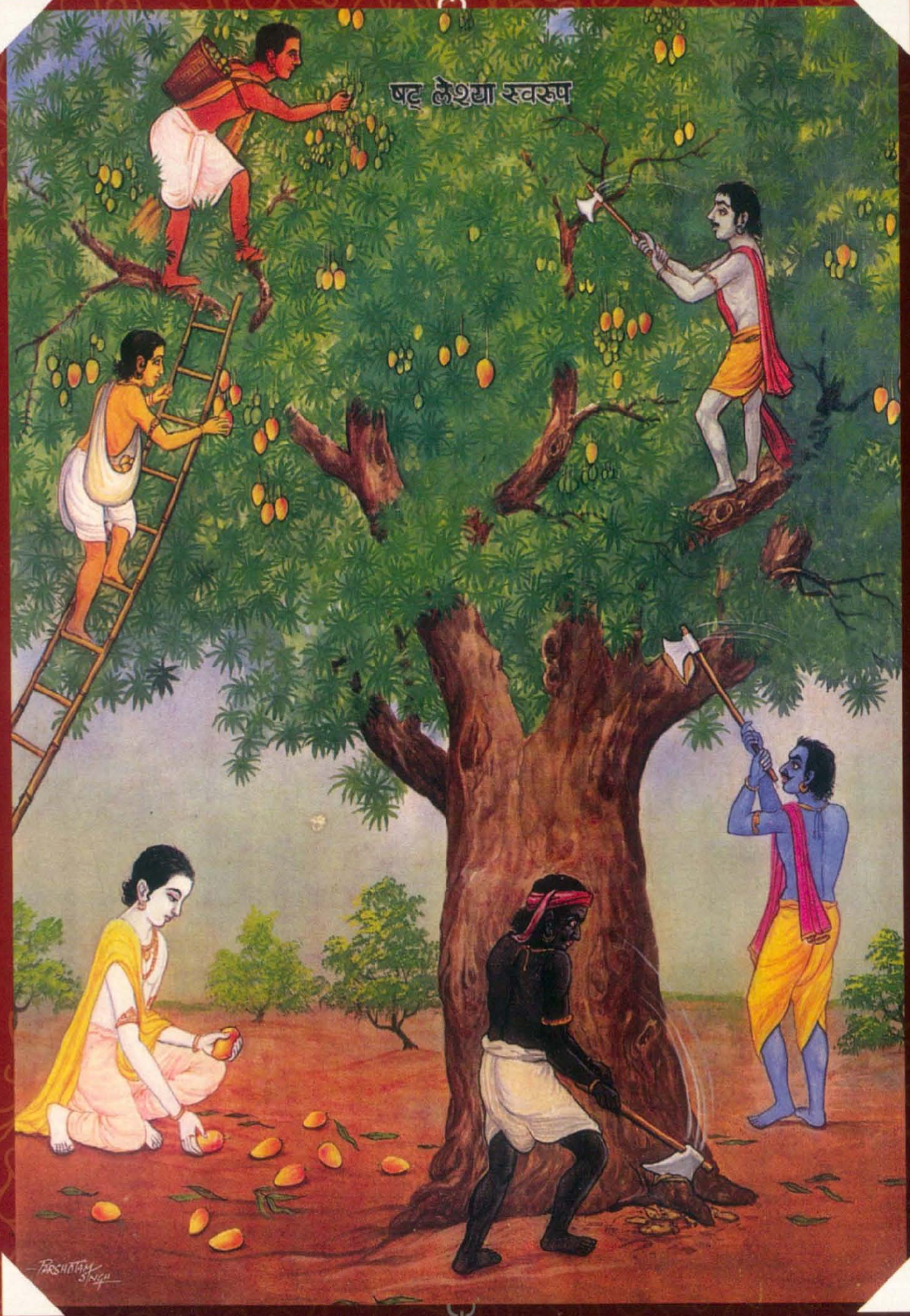
षट् लेश्या स्वरूप

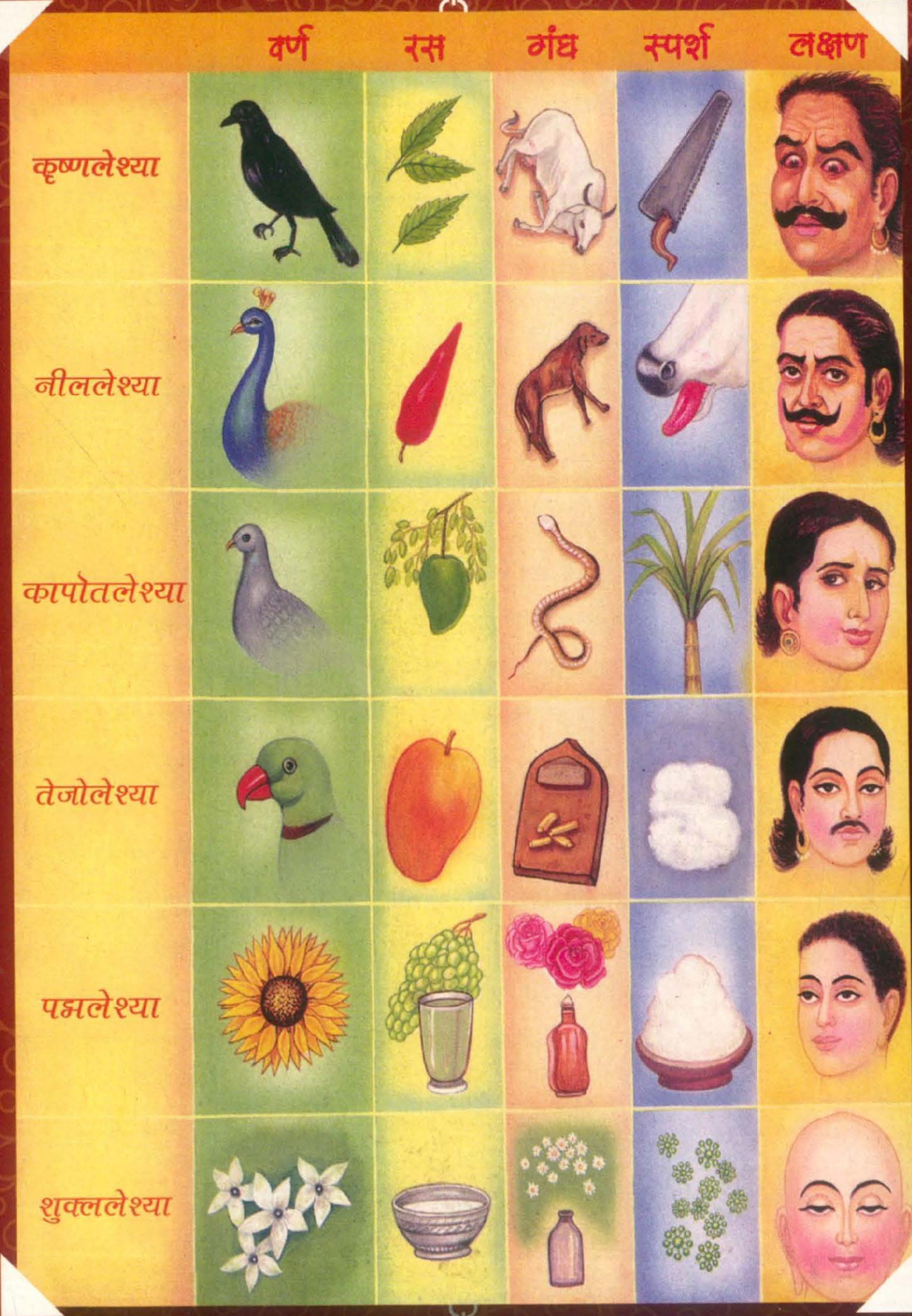
वर्ण
रस
गंध
स्पर्श
लक्षण
कृष्णलेश्या
नीललेश्या
कापोतलेश्या
तेजोलेश्या
पद्मलेश्या
शुक्ललेश्या

६ लेश्या का स्वरूप.....

लेश्या अर्थात् क्या ? "लिश्यते-श्लिष्यते जीवः कर्मणा सहाभिरिति लेश्या ।" जिसके द्वारा जीव कर्म से जुड़ जाता है उसे लेश्या कहते हैं । उसमें भी जिन कृष्णादि द्रव्यों के साहचर्य से आत्मा में परिणाम उत्पन्न हो, उन द्रव्यों को "द्रव्य लेश्या" कहते हैं और इससे उत्पन्न होते परिणाम को "भावलेश्या" कहते हैं । कर्म के स्थितिबंध में जिस तरह कषाय मुख्य रूप से कारण बनते हैं, उसी प्रकार कर्म के रसबंध में लेश्याएँ मुख्य कारण रूप हैं । यह द्रव्यलेश्या अनुक्रम से (१) कृष्ण (२) नील (३) कापोत (४) तेजो (५) पद्म और (६) शुक्ल[१] के नाम से जानें ।

सामने दिये गए चित्र में ६ लेश्या के परिणाम को जांबु के वृक्ष द्वारा निरूपण किया गया है... जैसे कि...

किसी एक समय कोई छः मनुष्य एक अरण्य (जंगल) में जा पहुँचे । वहाँ वे क्षुधातुर थे और इतने में सामने जांमुन का एक पेड़ दिखाई पड़ा । अब फल खाने की ईच्छा से सभी ने अपने अपने भाव व्यक्त किए...

कृष्णलेश्यावाला कहता है कि पूरे पेड़ को मूल (जड) से ही काट दे तो बिना परिश्रम उठाए सुख से हम जामुन खा सकते हैं ।

नीललेश्यावाला कहता है कि ऐसा नहीं ? वृक्ष को काटने की जरूरत नहीं, हम बड़ी बड़ी शाखाएं ही काट देते हैं ।

कापोतलेश्यावाला कहता है कि छोटी छोटी डालियों से हमारा काम चल सकता है तो छोटी ही काटें । बड़ी शाखाएं क्यों काटे ?

तेजोलेश्यावाला कहता है कि सभी छोटी डालियों का भी नाश क्यों करें ? इसके बदले जहा जामुन के झुमखे है, वे ही तोड़ें...।

पद्मलेश्यावाला कहता है कि हमें तो अच्छे पके फलों की ही ईच्छा है तो वो ही तोडे, झुमखे तोड़ने से क्या फायदा ?

तब शुक्ललेश्यावाला कहता है कि मेरे प्यारे भाईयो ! ऐसे पाप के कुविचार करके आत्मा को कष्ट देने के बदले यहाँ नीचे ही अच्छे पके हुए फल गिरे हुए हैं, चलो इन्हें ही खा लें । इस दृष्टांत से लेश्या में भावों की तरतमता जानने को मिलती हैं ।

अब कृष्णादि लेश्यावाले जीवों की प्रकृति कैसी होती है वह बता रहे हैं.....

★ कृष्णलेश्यावाले-जीव हिंसा, चोरी, आदि पाँचों आश्रवों का सेवन करनेवाले, प्रचंड क्रोधी, तथा क्षुद्र प्रकृतिवाले और किसी भी प्रकार के पाप करने में साहसीक वृत्तिवाले होते हैं । ★ नीललेश्यावाले-जीव विषयों में लोलुप, मायावी, आलसी, ईर्ष्यालु तथा पुद्गल प्रति आसक्त होते हैं । ★ कापोतलेश्यावाले-जीव वक्र आचारवाले, सही-गलत का विवेक न रखनेवाले, परनिंदा-स्वप्रशंसाकारक होते हैं । ★ तेजोलेश्यावाले-जीव सही-गलत का विवेक रखनेवाले, दया-दान करनेवाले, मंद कषायी, अचपल तथा तपस्वी होते हैं । ★ पद्मलेश्यावाले-जीव उपरोक्त गुणों से युक्त तथा भद्र परिणामी, सुपात्रदानी, क्षमावान, शीलव्रतादि का पालन करनेवाले, तथा अल्पभाषी और शांत स्वभावी होते हैं । ★ शुक्ललेश्यावाले जीव धर्मध्यान और शुक्लध्यान का ध्यान करने वाले, प्रशांत चित्त, वीतराग संयमी, समभावी और निदानादि न करनेवाले होते हैं ।[२]

लेश्याओं का विशेष स्वरूप प्रज्ञापना, आवश्यकादि सूत्र, लोकप्रकाशादि ग्रंथ, दिगम्बरीय ग्रंथ-सर्वार्थसिद्धि, गोम्मटसार, बौद्धग्रंथ दीर्घनिकायादि में हैं । महाभारत, पातंजल योगदर्शनादि में भी इनकी अमुक कल्पना मिलती हैं ।

सभी लेश्याओं का विशेष स्वरूप सामने दिये गये चार्ट में से देख लेवे...

(१) (A) प्रवचन सारोद्धार-१,१५९ (B) बृहत्संग्रहणी-१७६ (C) दर्शनशुद्धि प्रकरणम्-२२५ (D) जीवाजीवाभिगम संग्रहणी-१७४ (E) त्रैलोक्यदीपिका-२८२ (F) आराधना पताका-८३८ (G) मार्गणासुबंधहेतूदयत्रिभंगी-९ (H) "षड्शीति" नामा चतुर्थ कर्मग्रंथ-१३ (I) जीवसमास-७० (J) समवायांग, सूत्र-६ (K) ठाणांग सूत्र-६/५०४ (L) सूक्ष्मार्थसंग्रहप्रकरणम्-२० (२) गोम्मटसार जीवकाण्ड, मूल-५०९ से ५३७

183

"Huge building and summits of mountain will undoubtedly fall to the ground because of the winds caused by velocity of the earth more over flags must always remain fluttering towards the western direction only. Heavy speed makes it impossible for any thing to remain firmly fixed.."

- Shreepati panditji

आत्मा का विकासक्रम एवं १४ गुणस्थानक.....

आत्मा का विकासक्रम एवं १४ गुणस्थानक..... (पार्ट - १)

(१) मिथ्यात्व गुणस्थानक - मिथ्यात्व अर्थात् अतत्त्वश्रद्धा-तत्त्व अरुचि दोष रूप होने पर भी मिथ्यात्व अवस्था को यहाँ पहला गुणस्थानक कहने में दो अपेक्षाएँ हैं।(१) जीवतत्त्व की अति प्रारम्भिक अवस्था बतलानी है, एवं (२) मिथ्यात्व दोष कृश हुआ हो तब प्रकट होने वाले प्रारम्भिक गुणों की अवस्था सूचित करनी हैं। यहां पहली अपेक्षा सभी एकेन्द्रियों से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव तक एवं भवाभिनन्दी याने मात्र पुद्‌गलरसिक संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव गृहित होते है। दूसरी अपेक्षा में वीतराग सर्वज्ञ श्री तीर्थंकर भगवान के वचन की श्रद्धा न पाए हुए मोक्षाभिलाषी व संसारोद्विग्न मार्गानुसारी जीव तथा अहिंसा-सत्यादि पाँच यम एवं शौच-संतोष-ईश्वर-प्रणिधान-तप-स्वाध्याय रूप पांच नियमवाले जीव गृहित होते हैं।

(२) सास्वादन गुणस्थानक - यह पहले की अपेक्षा इतना विकास संपन्न हैं कि इसमें मिथ्यात्व उदय में नहीं है। फिर भी यह गुणस्थानक पहले गुणस्थानक से चढ़कर प्राप्त नहीं होता, किन्तु चौथे गुणस्थानक से गिरते हुए को प्राप्त होता है। यह इस प्रकार जीव जब सम्यक्त्व अवस्था में शिथिल होता है व इसमें अनंतानुबंधि कषाय उदय में आते हैं तब ये कषाय घातक होने से सम्यक्त्व गुण नष्ट होता है और अब तक मिथ्यात्व उदय में नहीं आया, अतः जीव गिरकर दूसरे सास्वादन गुणस्थानक में अल्पकाल अवस्थित रहता है। वमन किए हुए सम्यक्त्व के कुछ अंश का यहाँ आस्वादन करने से यह सास्वादन गुणस्थानक कहलाता है। अधिक में अधिक यहाँ जीव ६ आवलिका ही ठहरता है(१, ६७, ७७, २१६ आवलिका = ४८ मिनिट), क्योंकि अनंतानुबंधी कषाय का उदय मिथ्यात्व को तुरंत उदय में खींच लाता है जिससे जीव पहले (प्रथम) गुणस्थानक में चला जाता हैं।

(३) मिश्र गुणस्थानक - जब पहला गुणस्थानकवाला जीव मिथ्यात्वमोहनीय कर्म, व अनंतानुबंधी कषाय दोनों का उदय रोककर मिश्रमोहनीय कर्म का वेदन करता है, या चोथे गुणस्थानकवाला जीव सम्यक्त्व खो कर मिश्रमोहनीय कर्म का वेदन करे तब यह तीसरा मिश्र गुणस्थानक प्राप्त करता है। मिश्र अर्थात्, जिस प्रकार नालिकेर द्वीपवासी को नारियल का ही आहार होने से अन्न पर न कोई रुचि, न अरुचि, इस प्रकार जीव को तत्त्व पर रुचि-अरुचि कुछ नहीं एवं मिथ्यातत्त्व पर भी रुचि नहीं किन्तु बीच की अवस्था... यह मिश्रण.... मिश्र गुणस्थानक कहा जाता हैं।

(४) अविरति-सम्यग्दृष्टि-गुणस्थानक - जीव उपर्युक्त मिथ्यात्व - अनंतानुबंधी मिश्रमोह का उदय रोककर सम्यक्त्व गुण प्राप्त करता है परन्तु अहिंसादि व्रत नहीं तब इस गुणस्थानक को प्राप्त होता हैं। सम्यक्त्व तीन रीति से प्राप्त हो सकता है।(१) मिथ्यात्व कर्म का बिलकुल उपशम किया जाए अर्थात् विशिष्ट शुभ अध्यवसाय के बल पर अन्तर्मुहूर्त के काल के उन मिथ्यात्व मोहनीय कर्मों को आगे-पीछे उदयवश करके इतना काल मिथ्यात्व से सर्वथा उदय रहित किया जाये, तब उपशमसम्यक्त्व प्राप्त होता है।(२) मिथ्यात्व कर्म पुद्‌गलों का शुभाध्यवसाय वश संशोधित कर अशुद्ध व अर्धशुद्ध पुद्‌गलों का विपाक उदय स्थगित किया जाए और शुद्ध का वेदन किया तब क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। (३) समस्त शुद्ध-अर्धशुद्ध मिथ्यात्व कर्मपुद्‌गलों का, अनंतानुबंधी कषायों के नाशपूर्वक, नाश किया जाये तब क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। इन तीनों सम्यक्त्व में श्रद्धा तो एक मात्र जिनवचन जिनोक्त तत्त्वों पर ही होती है। जिनोक्त तत्त्व में जीव-अजीवादि नौ तत्त्व, सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्ग तथा अरिहंतदेव-निर्ग्रन्थ मुनि गुरु-सर्वज्ञोक्त धर्म समाविष्ट है। यहाँ हिंसादि पापों के त्याग की प्रतिज्ञा याने विरति नहीं है इसलिए यह अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक हैं।

184

न्यूटन के सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमां घूमता है और पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। तो फिर सूर्य किस प्रकार आकाश में स्थिर रह सकता है ? न्यूटन ने कल्पना की है कि पूरा सौरमंडल ही ब्रह्मांड के किसी केन्द्र की प्रदक्षिणा कर रहा है। यदि सूर्य को भी गति में न बताया जाय तो न्यूटन का सिद्धान्त ही गलत सिद्ध हो जाता है । इसलिए ऐसा बताना पड़ा है कि सूर्य किसी की प्रदक्षिणा कर रहा है। अब प्रश्न यही उपस्थित होता है कि सूर्य किसके चारों ओर प्रदक्षिणा कर रहा है ? अब यदि कोई विशाल सूर्य हो तो वह भी स्थिर नहीं रह सकता है। उसे भी किसी और बड़े सूर्य की प्रदक्षिणा करता हुआ बताना पड़े । इसका कोई अंत नहीं आने वाला है। इसलिए अन्त में न्यूटन एक विचित्र विधान देता है कि विश्व का कोई अन्त नहीं है, वह अन्तहीन है । इसलिए न्यूटन की मीमांसा अपने स्वयं के भार से ही गलत सिद्ध हो जाती है।

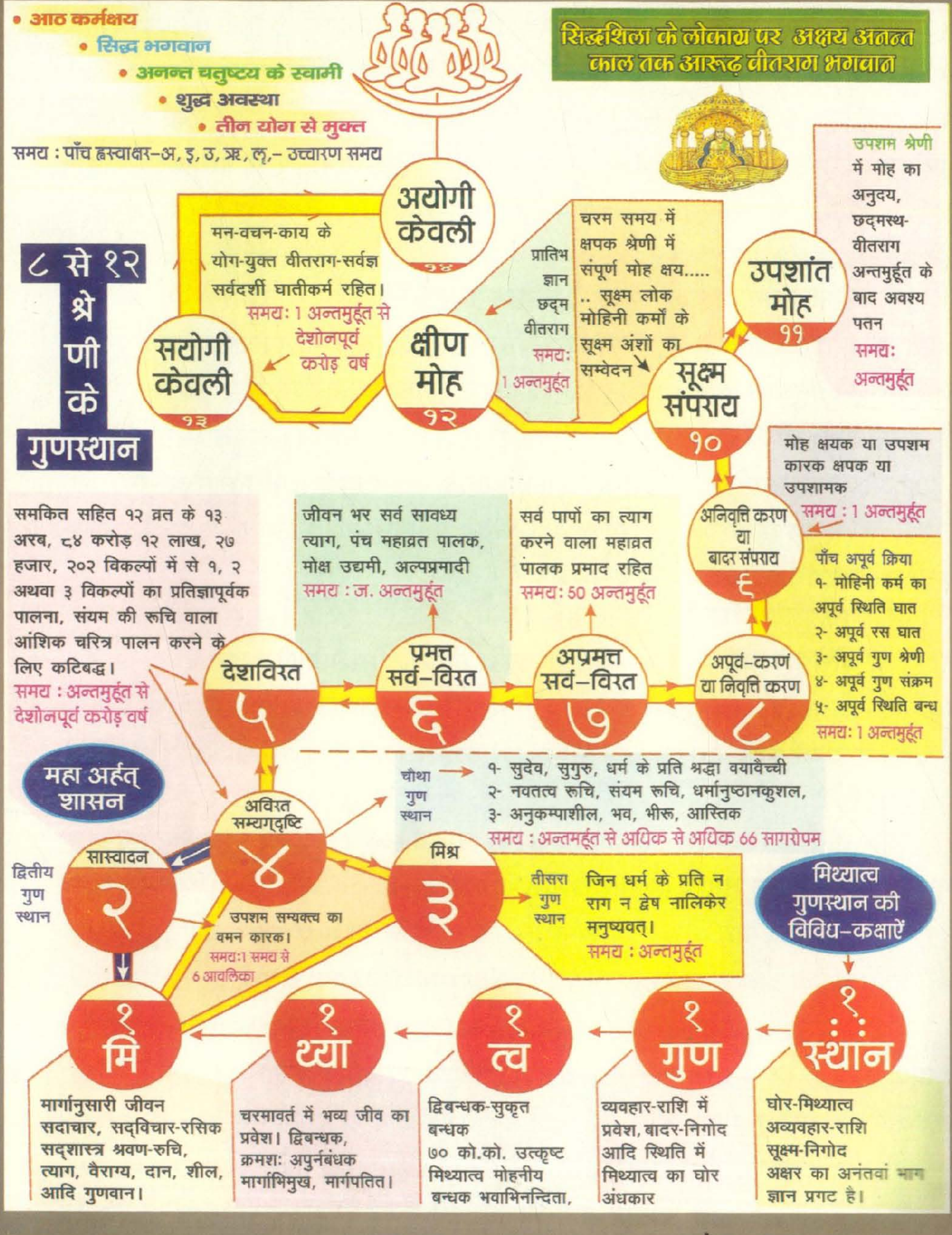
• आठ कर्मक्षय
• सिद्ध भगवान
• अनन्त चतुष्टय के स्वामी
• शुद्ध अवस्था
• तीन योग से मुक्त
समय : पाँच ह्रस्वाक्षर–अ, इ, उ, ऋ, ऌ,– उच्चारण समय
सिद्धशिला के लोकाग्र पर अक्षय अनन्त काल तक आरूढ़ वीतराग भगवान
अयोगी केवली
१४
मन-वचन-काय के योग-युक्त वीतराग-सर्वज्ञ सर्वदर्शी घातीकर्म रहित।
समय: 1 अन्तमुर्हूत से देशोनपूर्व करोड़ वर्ष
८ से १२ श्रेणी के गुणस्थान
सयोगी केवली
१३
क्षीण मोह
१२
प्रातिभ ज्ञान छद्म वीतराग
समय: 1 अन्तमुर्हूत
चरम समय में क्षपक श्रेणी में संपूर्ण मोह क्षय..... .. सूक्ष्म लोक मोहिनी कर्मों के सूक्ष्म अंशों का सम्वेदन
उपशांत मोह
११
उपशम श्रेणी में मोह का अनुदय, छद्मस्थ-वीतराग अन्तमुर्हूत के बाद अवश्य पतन
समय: अन्तमुर्हूत
सूक्ष्म संपराय
१०
मोह क्षयक या उपशम कारक क्षपक या उपशामक
समय : 1 अन्तमुर्हूत
अनिवृत्ति करण या बादर संपराय
९
पाँच अपूर्व क्रिया
१- मोहिनी कर्म का अपूर्व स्थिति घात
२- अपूर्व रस घात
३- अपूर्व गुण श्रेणी
४- अपूर्व गुण संक्रम
५- अपूर्व स्थिति बन्ध
समय: 1 अन्तमुर्हूत
समकित सहित १२ व्रत के १३ अरब, ८४ करोड़ १२ लाख, २७ हजार, २०२ विकल्पों में से १, २ अथवा ३ विकल्पों का प्रतिज्ञापूर्वक पालना, संयम की रूचि वाला आंशिक चरित्र पालन करने के लिए कटिबद्ध।
समय : अन्तमुर्हूत से देशोनपूर्व करोड़ वर्ष
जीवन भर सर्व सावध्य त्याग, पंच महाव्रत पालक, मोक्ष उद्यमी, अल्पप्रमादी
समय : ज. अन्तमुर्हूत
सर्व पापों का त्याग करने वाला महाव्रत पालक प्रमाद रहित
समय: 50 अन्तमुर्हूत
देशविरत
५
प्रमत्त सर्व–विरत
६
अप्रमत्त सर्व–विरत
७
अपूर्व–करणं या निवृत्ति करण
८
महा अर्हत् शासन
अविरत सम्यग्दृष्टि
४
चौथा गुण स्थान
१- सुदेव, सुगुरु, धर्म के प्रति श्रद्धा वयावैच्ची
२- नवतत्व रूचि, संयम रूचि, धर्मानुष्ठानकुशल,
३- अनुकम्पाशील, भव, भीरू, आस्तिक
समय : अन्तमर्हूत से अधिक से अधिक 66 सागरोपम
द्वितीय गुण स्थान
सास्वादन
२
उपशम सम्यक्त्व का वमन कारक।
समय:1 समय से 6 आवलिका
मिश्र
३
तीसरा गुण स्थान
जिन धर्म के प्रति न राग न द्वेष नालिकेर मनुष्यवत्।
समय : अन्तमुर्हूत
मिथ्यात्व गुणस्थान की विविध–कक्षाएें
१ मि
१ थ्या
१ त्व
१ गुण
१ स्थान
मार्गानुसारी जीवन सदाचार, सद्विचार-रसिक सद्शास्त्र श्रवण-रुचि, त्याग, वैराग्य, दान, शील, आदि गुणवान।
चरमावर्त में भव्य जीव का प्रवेश। द्विबन्धक, क्रमशः अपुर्नबंधक मार्गाभिमुख, मार्गपतित।
द्विबन्धक-सुकृत बन्धक ७० को.को. उत्कृष्ट मिथ्यात्व मोहनीय बन्धक भवाभिनन्दिता,
व्यवहार-राशि में प्रवेश, बादर-निगोद आदि स्थिति में मिथ्यात्व का घोर अंधकार
घोर-मिथ्यात्व अव्यवहार-राशि सूक्ष्म-निगोद अक्षर का अनंतवां भाग ज्ञान प्रगट है।

(५) देशविरति गुणस्थानक - सम्यक्त्व प्राप्त होने पर जैसे श्रद्धा हुई कि हिंसा-झुठादि पाप अकरणीय है, त्याज्य है, इसी प्रकार अनंतानुबंधी कषायों के बाद अप्रत्याख्यानीय कषायों के निरोधवश हिंसादि पापों के आंशिक त्याग की प्रतिज्ञा की जाए तब वह आंशिक विरति याने देशविरति श्रावक का गुणस्थानक प्राप्त हुआ कहा जाता है।

(६) प्रमत्त (सर्वविरति) गुणस्थानक - सम्यक्त्व के साथ वैराग्य भरपूर हो और वीर्योल्लास बढ़ाते बढ़ाते तीसरे प्रत्याख्यानावरणीय कषायों के निरोध वश हिंसादि पापों का सर्वथा सूक्ष्म रीति से त्याग प्रतिज्ञा पूर्वक किया जाए तब सर्वविरति-साधुपना प्राप्त हुआ कहा जाता है। यहां अभी भी प्रमाद वशता है। अतः प्रमत्त अवस्था होने से प्रमत्त गुणस्थानक कहते हैं।

(७) अप्रमत्त गुणस्थानक - छठ्वें गुणस्थानक की अवस्था में से प्रमाद का त्याग करने पर यह प्राप्त होता है। फिर भी विस्मृति, भ्रम, संशय, राग, द्वेषादि प्रमाद ऐसे हैं, कि इनको अभी दूर किया तो फिर भी पुनः खड़े हो जाते हैं, और सातवें गुणस्थानक में जीव को अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा ठहरने देते नहीं तथा छठ्वें गुणस्थानक में घसीट ले जाते हैं। परंतु साधक आत्मा का प्रमाद के साथ सतत संग्राम चालु होने से फिर से ऊपर वह सातवें में चढ़ता है, पुनः वहाँ से गिरता है, फिर से चढ़ता है... इस प्रकार चलता रहता हैं।

(८) अपूर्वकरण गुणस्थानक - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद व कषायों के तीन चतुष्क रोकने से ७वें गुणस्थानक तक उन्नति हुई। अब चोथे संज्वलन कषायों का रस मन्द किया जाए और पांच "अपूर्व" करने में आवे तब ८वाँ गुणस्थानक प्राप्त होता है। यहाँ खास तौर पर आगे मोहनीय कर्म के उपशम या क्षय करनेवाली क्रमशः उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी के प्रापक ध्यान में लीन बना जाता है, और उत्कृष्ट शुभ अध्यवसाय के बल पर (१) अपूर्व स्थितिघात (२) अपूर्व रसघात (कर्मों की कालस्थिति एवं रस में अभूतपूर्व ह्रास) (३) अपूर्व गुणश्रेणी (असंख्यगुण-असंख्यगुण वृद्धि से उन स्थितिघातवाले कर्मों की रचना) (४) अपूर्व गुणसंक्रम (कर्मों का संक्रमण असंख्यगुण के हिसाब से) (५) अपूर्व स्थितिबंध (नये कर्मो में अभूतपूर्व स्थिति का निर्माण) ये पांच अपूर्व किये जाते हैं।

(९) अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक - आठवें गुणस्थानक के अन्त में सूक्ष्म भी हास्यमोहनीयादि कर्मों को सर्वथा उपशान्त या क्षीण किया जाता हैं और विशुद्ध अध्यवसाय में प्रगति होती है तब यह गुण प्राप्त होता हैं। यहाँ एक साथ प्रवेश करनेवाले अनेकों के आन्तरिक भाव समस्त गुणस्थानक काल में एक ही रूप से वर्धमान भाववाले होते हैं किन्तु कोई न्यूनाधिकता-तरतमता नहीं होती है, इसलिए यह अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक कहलाता है। "बादर" इस दृष्टि से है कि अभी यहाँ सूक्ष्म कषाय उदय में हैं।

(१०) सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान - उन स्थुल कषायों को उपशान्त या क्षीण करके अब संपराय अर्थात् सूक्ष्म कषाय, उनमें भी मात्र लोभ (राग) सूक्ष्म कोटि का शेष रहे तभी यह गुण प्राप्त होता हैं।

185

भरतक्षेत्र में मानवों की वस्ती कितनी ?

एसा कहा जाता है कि २८ पुरुष + ३२ स्त्री = ६० जन का १ परिवार (कुटुंब) होता है। ऐसे १०,००० कुटुंब = १ गाँव* होता है और ऐसे १२,००० गाँव = १ देश होता है। अर्थात् १ गाँव में ६०x१०,००० = ६,००,००० स्त्री-पुरुष होते है । तो १ देश में ७,२०,००,००,००० (७ अबज, २० क्रोड़) स्त्री-पुरुष होते है । ऐसे ३२ हजार देश इस भरतक्षेत्र में है । तो ७,२०,००,००,००० x ३२,००० = २,३०,४००,००,००,००,००० (२ लाख, ३० हजार, ४०० अबज) मानवों की वस्ती होती है।

(जंबूद्वीप मासिक)

*गामत्ति - दसकुलसाहस्त्रीको ग्रामः (ज्ञाताधर्मकथा)

मिथ्या दृष्टि
1
मिथ्या दृष्टि
अनादि अज्ञानांधकार
1
2-3
4
4
4
नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो
आयरियाणं.....
मिश्र
अविरति, सम्यक्दृष्टि, गुणस्थानक
5
देश विरति गुणस्थान
अयोगी केवली
गुणस्थान
14
6
13
7 अप्रमत्त से
उपशम श्रेणी
8, 9, 10 से
11वें में एवं
7 अप्रमत्त से
क्षपक श्रेणी 8,
9, 10 से 12वें
में एवं वहाँ से

(११) उपशान्तमोह गुणस्थानक - उपशमश्रेणी में बढ़ते-बढ़ते उपरोक्त सूक्ष्म लोभ को खंडशः सर्वथा उपशान्त कर दे तभी यह गुणस्थानक प्राप्त होता हैं। मोहनीय कर्म उपशान्त किए गए इससे उसका तत्काल उदय सर्वथा स्थगित हुआ, लेकिन वे सत्ता में तो विद्यमान ही है इसलिए अन्तर्मुहूर्त काल में ही वह उदय प्राप्त हो तो जीव को निम्न गुणस्थानकों में घसीट कर ले जाता है। फलतः यहाँ मोह सर्वथा उपशांत होने से जो वीतराग दशा एवं यथाख्यात चारित्र प्राप्त हुए थे वे लुप्त हो जाते हैं।

(१२) क्षीणमोह गुणस्थानक - जिन्होनें मोहनीय कर्म का उपशम करते करते आगे बढने का किया हो वे तो दशमें के अन्त में सर्वमोहोपशम कर ११ वे गुण में उपशान्त मोह वीतराग होते हैं, परंतु जिन्होंने पहले से ही मोहनीय कर्म की क्षपणा (क्षय) करने का काम किया, वे तो १०वे के अन्त में सर्वमोह नाश करके सीधे १२ वे गुणस्थानक में आरूढ हो क्षीणमोह वीतराग बनते हैं। अब भी यहाँ ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय एवं अंतराय रूप घाती कर्म का उदय चालु है अतः वे सर्वज्ञ नहीं बने हैं।

(१३) सयोगिकेवली गुणस्थानक - १२ के अंत में समस्त घाती कर्मों का नाश करने पर यह गुण प्राप्त होता है। यहाँ केवलज्ञान-केवलदर्शन प्रगट हो जाने से वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन जाते हैं। इसमें वे लोक-अलोक के तीनों काल के समस्त भावों को प्रत्यक्ष देख रहे हैं। फिर भी यहाँ उपदेशदान-विहारगमन-आहारग्रहणादि प्रवृत्ति याने वचनयोग और काययोग चालु है। इसलिए वे सयोगी कहे जाते हैं। ११-१२-१३ वें गुणस्थानकों में आश्रवों में से मात्र योग आश्रव शेष रहा है इसलिए मात्र शातावेदनीय का बंध हो रहा है, तदनंतर जब मोक्ष जाने की तैयारी हो तब १३ वें के अन्त में शुक्लध्यान के तीसरे चोथे प्रकार के द्वारा स्थूल स्थूल समस्त मन-वचन-काययोगों का सर्वथा निरोध कर देते हैं।

(१४) अयोगीकेवली गुणस्थानक - १३ वें गुणस्थानक के अंत में जब सर्वथा योगनिरोध हो जाता है तब अयोगीकेवली गुणस्थानक जीव को प्राप्त होता है। यहाँ पहले जो योगवश आत्मप्रदेश कंपनशील थे वे योग अब निरोधवश स्थिर शैलेश-पर्वतराज मेरु की तरह निष्कम्प हो जाते हैं, इसे शैलेषीकरण कहते हैं। यहाँ मात्र पांच ह्रस्वाक्षर "अ-इ-उ-ऋ-लृ" के उच्चारण काल जितना काल ठहरते हैं। इस गुणस्थानक में समस्त (अर्थात् बचे हुए ४ वेदनीय-नाम-गोत्र तथा आयुष्य रूप) अघाती कर्मों का नाश कर अन्त में सर्व कर्म से रहित शुद्ध अनंत ज्ञानसुखादिमय हो आत्मा मोक्ष में चली जाती हैं। सभी कर्मों का क्षय होते ही मात्र एक ही समय में १४ राजलोक के ऊपर सिद्धशिला पर जाकर सादि अनंत काल के लिए (अर्थात् शाश्वत काल के लिए) वहाँ स्थित हो जाती है।[१]

(१) द्वितीय "कर्मस्तव" नामा कर्मग्रंथ, गाथा-२

186

"Truly speaking, Jainism is an independent and original religion, for it is neither Hinduism nor Vedic religion, but of course it is an aspect of Indian life, culture, and philosophy."

- Shri JawaharlalNehru
Prime Minister, India

"The Jain Sadhu leads a life which is praised by all. He practices the vratas and rites strictly and shows to the world the way one has to go in order to realize the atma (soul). Even the life of a Jain householder is so faultless that India should be proud of him."

- Dr. Satischandra Vidhya Bhushan

प्रथमसमय दंड की रचना

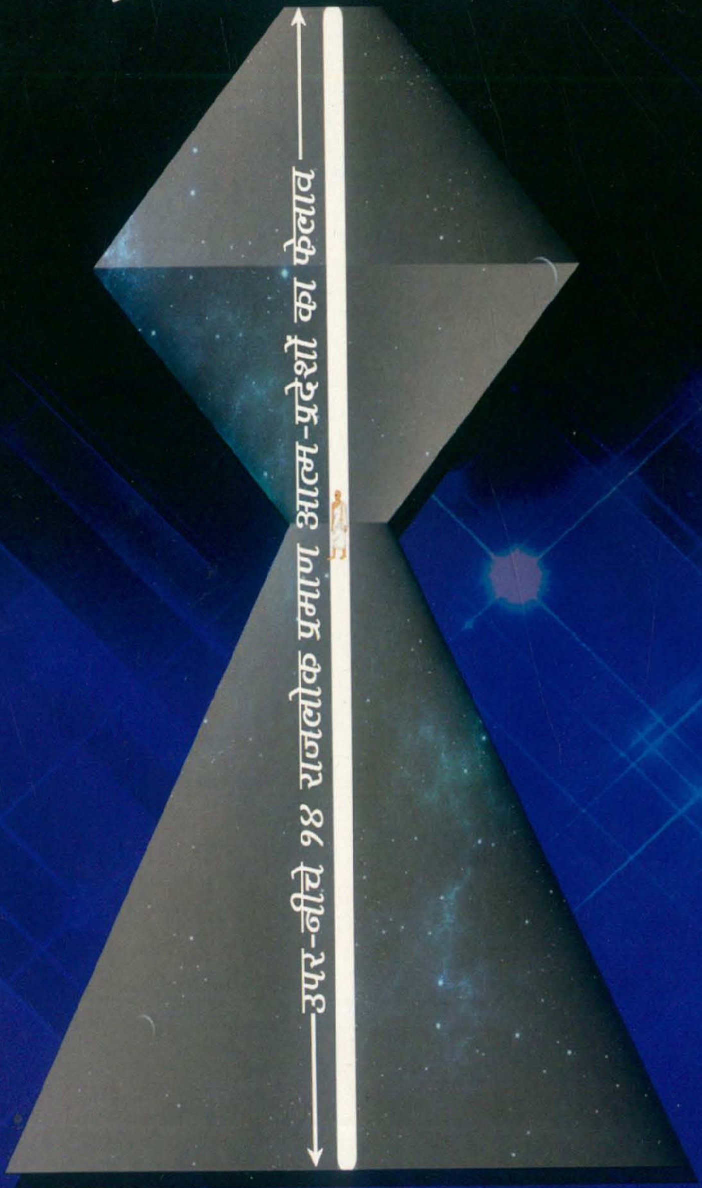

द्वितीय समय कपाट की रचना

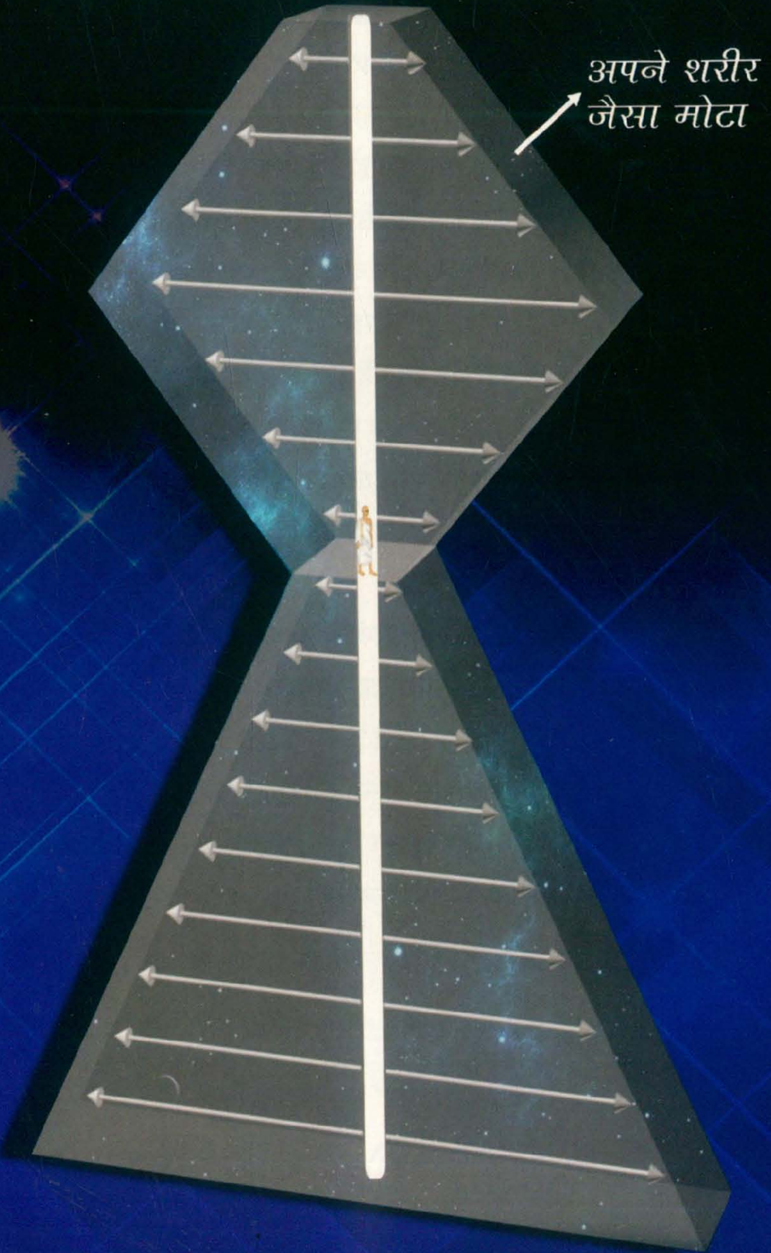

केवली समुद्घात..... (पार्ट - १)

जैनागमों में जीव के समुद्घात के ७ प्रकार बताए गये हैं... (१) वेदना समुद्घात (२) कषाय समुद्घात (३) मरण समुद्घात (४) वैक्रिय समुद्घात (५) आहारक समुद्घात (६) तैजस समुद्घात और (७) केवली समुद्घात।[१]

इनमें १ से ६ समुद्घात छाद्मस्थिक जानें अर्थात् छद्मस्थों के द्वारा किया गया समुद्घात और ७वाँ केवलज्ञानी भगवंत के द्वारा किया गया केवली समुद्घात...। इन १ से ६ छाद्मस्थिक समुद्घात का अंतर्मुहूर्त प्रमाणवाला समय होता है जबकि ७वाँ केवली समुद्घात मात्र ८ समय के प्रमाणवाला होता है... जिसकी विशेष हकिकत नीचे दी गई है... चलो मेरे मित्रो ! उसे भी जरा ध्यान से पढ़ें.....

जिन्हें त्रिकालज्ञान (केवलज्ञान) प्राप्त हुआ है वे ही इस केवली समुद्घात को कर सकते हैं। यहाँ केवलज्ञानीने आठ कर्मों में से ४ घाती कर्मों को दूर किए है जरूर... लेकिन वेदनीय, नाम, गोत्र और आयुष्य ये चार अघाती कर्मों का उदय रहता है। इनमें आयुष्य कर्म की स्थिति के अलावा शेष तीन कर्मों की स्थिति अगर अधिक रहती हो तो ऐसा बनेगा कि आयुष्य तो पूर्ण हो जायेगा। लेकिन कर्म का भोग बाकी रह जायेगा। अगर कर्म को भूगतना रह भी गया तो केवली भगवंत अशरीरी बनकर मोक्ष में जा नहीं सकते और फिर केवलज्ञानी को तो दूसरा जन्म धारण करना पड़ता ही नहीं है, अगर होता तो वे अपने जन्मांतर में कर्म का भोग जरूर कर सकते। लेकिन अब भवभ्रमण का तो अंत ही हो जाता है। इन सब कारणों से चारों की स्थिति इस प्रकार एक समान ही हो जानी चाहिए कि आयुष्य की पूर्णाहुति के साथ-साथ शेष तीन कर्म भी सर्वथा निर्जरी हो सके अथवा क्षय हो सके और ऐसी स्थिति का सर्जन समुद्घात जैसे आत्म प्रयत्नो से ही संभवित हो सकेगा। यह क्रिया ८ समय की होती है[1]। केवली भगवान् तीन दीर्घ कर्मों की विषम स्थिति को सम करने के लिए आत्मप्रदेशों को अपने शरीर से बाहर निकालकर पहले समय में ऊर्ध्व दिशा और अधो दिशा के अन्त तक अर्थात् १४ राजलोक[2] प्रमाण लम्बा और अपने शरीर प्रमाण जितना चौड़ा आत्मप्रदेशों को दंडाकार में रचते हैं।

द्वितीय (दूसरे) समय में पूर्व से पश्चिम लोकान्त तक वे अपने आत्मप्रदेशों को विस्तृत करते हैं। जिससे आत्मप्रदेशों का आकार दरवाजा जैसा बन जाता है। तीसरे समय में कपाट के प्रत्येक स्थान में से वे अपने आत्मप्रदेशों को उत्तर-दक्षिण लोक के छोर तक बड़ा कर देते हैं जिसके कारण ये आत्मप्रदेश १४ राजलोक के बहुतम प्रदेशों में व्याप्त हो जाता हैं।

---

1 - आंख्र को बंद करके खोल दें इतने में असंख्य समय लग जाते हैं।

2 - "एक ही समय" अर्थात् सेकण्ड़ का असंख्यातवां भाग इतने ही काल में सैंकडों ऐसे अरबों मील गति कर सकते हैं। चैतन्य रूप की यह विलक्षण (अद्भुत) और विराट ताकात कहाँ ? और उसके आगे वामन अर्थात् छोटी (सीमाबद्ध) लगती आज के स्पेशशटल (उपग्रह) अथवा रॉकेट की ताकात कहाँ ?

(१) समवायांग सूत्र-७

187

"The right of welcoming the delegates of the universal peace organization belongs to the Jains only. Because Ahimsa alone contributes to the establishment of universal peace. Tirthan-karas, the propounders of Jainism, preached to the world the Ahimsa doctrine. Therefore, who else except the followers of Bhagavan Parsvanath and Mahavira can preach universal peace?"

- Dr. Radha Vinodpal

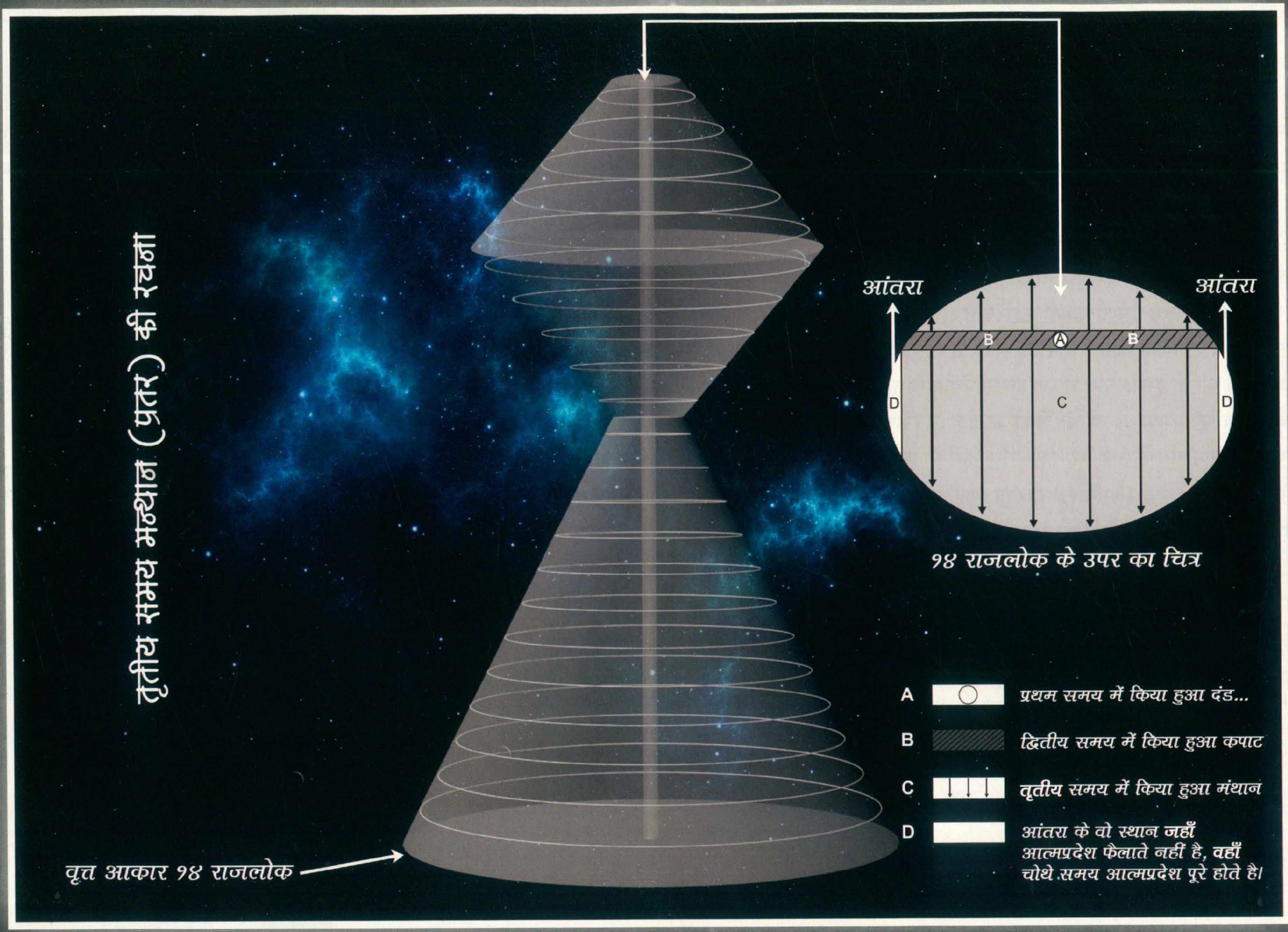
तृतीय समय मन्थान (प्रतर) की रचना
आंतरा
आंतरा
B
A
B
D
C
D
१४ राजलोक के उपर का चित्र
A
प्रथम समय में किया हुआ दंड...
B
द्वितीय समय में किया हुआ कपाट
C
तृतीय समय में किया हुआ मंथान
D
आंतरा के वो स्थान जहाँ आत्मप्रदेश फैलाते नहीं है, वहाँ चोथे समय आत्मप्रदेश पूरे होते है।
वृत्त आकार १४ राजलोक

इस प्रकार आत्मप्रदेश व्याप्त हो जाने के बाद चोथे समय में जो आंतरे एवं निष्कुट रह गये है अर्थात् अभी भी आत्मप्रदेश रहित लोकाकाश रहा है उस रिक्त जगह की पूर्ति स्वात्मप्रदेशों से करते हैं। इतना करने से केवलज्ञानी भगवंत के असंख्य आत्मप्रदेश लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर चार ही समय में व्याप्त हो जाने से उनकी आत्मा लोकव्यापी बन जाती हैं। क्योंकि एक आत्मा के तथा लोक के प्रदेश समान ही है।

तदनन्तर पाँच से आठ तक के समयों में आत्मप्रदेशों का लोकव्यापी जो विस्तार हुआ हैं उसे पुनः समेट लेते हैं अर्थात् पांचवें समय में रिक्त जगह में व्याप्त आत्मप्रदेशों को पुनः वापस खींच लेते हैं, छट्ठे समय में मथानी (उत्तर-दक्षिण) को संवृत करके कपाटस्थ होता हैं। सातवें समय में पूर्व-पश्चिम में रचित कपाट के प्रदेशों को तथा आठवें समय में ऊर्ध्वाधो (ऊपर-नीचे) रचित दंडाकार प्रदेशों को संहर (सिमट) कर अपनी आत्मा को पुनः पूर्ण रूप से मूल देह जैसा बना देते हैं।

यहाँ इस क्रिया की सहायता से उदीरणाकरण करना असंभवित होने से "अपवर्तना" नामक करण द्वारा पूर्वोक्त तीन कर्मो की दीर्घस्थिति को सम करके अपने योग्य स्थितिवाले बनाते हैं। जिस प्रकार कोई गीला (भीगा) कपड़ा यों ही पड़ा रहता है तो उसके पानी को सूकने में कई घण्टे बीत जाते हैं, लेकिन यदि उस गीले (भीगे) कपड़े को ठीक तरह से चौड़ा करके रखें तो उसमें से पानी जल्दी ही सूक जायेगा। ठीक इस प्रकार ही केवली समुद्घात में भी आत्मप्रदेशों को सारे लोक में विस्तृत कर देने से दीर्घकर्मों का जल्दी से क्षय हो जाता हैं।[१]

अचित्तमहास्कन्ध रूप अजीव समुद्घात...

प्रिय मित्रो ! अब हम आपको अजीव समुद्घात कि परिभाषा एवं प्रक्रिया बताने जा रहे हैं जो कि कुछ इस प्रकार से है... अनंत परमाणुओं से बना हुआ अनंत प्रदेशी कोई स्कंध तथाप्रकार के विस्त्रसा (क्षीणता-अशक्तता) फलस्वरूप (अथवा स्वभाविक रूप से) केवली समुद्घात में दण्डाकार तथा आलमारी आकार में जिस प्रकार से बताया गया है उस प्रकार से ही चार समय में संपूर्ण लोकाकाश में व्याप्त होकर फिर से चार समय में उन सभी अवस्थाओं को समेटकर मूल अवस्थावान् अथवा अंगुल के असंख्यात भाग रूप बन जाता है, उसे "अजीव समुद्घात" कहा जाता हैं। संपूर्ण लोकाकाश में व्याप्त (विस्तृत) होने की योग्यतावाले अथवा व्याप्त बने हुए पुद्गलस्कंध अनंत हैं, जिन सबको अचित्त महास्कन्ध के नाम से पहचाना जाता हैं। यहाँ यह प्रयत्न जीवद्रव्य का नहीं लेकिन अजीवद्रव्य का हैं।

(१) (A) प्रशमरति-२७३/२७४/२७५/२७६ (B) समवायांग सूत्र-८ (C) प्रज्ञापना सूत्र (D) जीवसमास वृत्ति पृ. १८८-१८९

188

सर्वज्ञ की चमत्कृति

आज के वैज्ञानिक कहते है की एक परमाणु और दुसरे परमाणु के संयोग (जोइंट) के पोले भाग में दुसरे लाख परमाणु समा सकते है।

जिनशासन घन वस्तु में भी आकाश प्रदेश मानता हैं वह बात विज्ञान के द्वारा भी सिद्ध हो रही हैं।

(1)श्री अरिहंत पद
(2)सिद्ध पद
(3) प्रवचन पद
(4)आचार्य पद
(5) स्थविर पद
(6) उपाध्याय पद
(7) साधु पद
(8) ज्ञान पद
(9) दर्शन पद
(10) विनय पद
(11) चारित्र पद
(12) ब्रह्मचर्य पद
(13) श्री क्रिया पद
(14) तप पद
(15) दान (गौतम) पद
(16) श्री जिनपद
(17) श्री स्संयमपद
(18) श्री अभिनवज्ञानपद
(19) श्रुतपद
(20) तीर्थपद
पूर्व जन्म में तीर्थंकर माने सर्वोत्तम कोटिका ईश्वरीयपद प्राप्ति में

वीस स्थानक

तीर्थंकर नामकर्म बंध कारण वीस स्थानक पद.....

८ कर्मो में आया हुआ नामकर्म की कुल १०३ प्रकृतियाँ हैं, उसमें भी तीर्थंकर नामकर्म बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। अरिहंत, सिद्ध, आचार्यादि २० पदों की विधिपूर्वक आराधना, अत्यंत आदर बहुमान और ''सवि जीव करुँ शासनरसी'' की उत्तम भावना के साथ तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है, अतः एव उसके बंध हेतुओं को अलग से बताया जा रहा है। (१) अरिहंतपद = घातिकर्मों का नाश करनेवाले और इन्द्रादि द्वारा वन्दनीय, अनंत दर्शन-ज्ञान संपन्न, ३४ अतिशय और ३५ वाणी के गुणों से युक्त अरिहंत भगवंत के गुणों की स्तुति और विनयादि भक्ति करने से... ।(२) सिद्धपद = समस्त कर्मों को नष्ट कर लोकाग्र पर बिराजमान सिद्ध भगवान की भक्ति एवं उनके गुणों का चिंतन करने से...।(३) प्रवचनपद = द्वादशांगी रूप श्रुत की भक्ति करने से...।(४) आचार्यपद = ३६ गुणों के धारक आचार्य महाराज की भक्ति उनके गुणानुवाद एवं आहार, वस्त्रादि द्वारा उत्कृष्ट भक्ति करने से...।(५) स्थविरपद = जाति (वय) स्थविर (६० वर्ष की उम्र से अधिक), श्रुत स्थविर (स्थानांग और समवायांग सूत्र के धारक) तथा पर्याय स्थविर (२० वर्ष की दीक्षा पर्यायवाले) की भक्ति, स्तुति, वंदनादि करने से... (६) उपाध्यायपद = बहुश्रुत (सूत्र, अर्थ और तदुभय युक्त) गुरु भगवंत की भक्ति करने से...।(७) साधुपद = पंचमहाव्रतधारी, २२ परिषह को सहनेवाले, साधु के २७ गुण धारक मुनिराज की सेवा-भक्ति-गौचरी-वेयावच्चादि करने से... (८) ज्ञानपद = निरंतर सतत तत्त्वाभ्यास करने से... (९) दर्शनपद = सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा द्वारा प्ररूपित तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप को मानने से देव-गुरु-धर्म पर सच्ची श्रद्धा रखने से एवं सम्यक्त्व का निरतिचार पालन करने से ।(१०) विनयपद = सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्र और उनके साधनों के प्रति समुचित आदर भाव रखने से...।(११) चारित्रपद = शुद्ध भाव से दोनों समय षडावश्यक रूप सामायिक-प्रतिक्रमणादि करने से...।(१२) ब्रह्मचर्यपद = मूल और उत्तरगुणों का निर्दोष रीति से शुद्धतापूर्वक पालन करने से..... । (१३) क्रियापद = रागविरक्ति, भोगविरक्ति, मोहविरक्ति, अहंविरक्ति, लोभविरक्ति, अनासक्त भाव का निरंतर अभ्यास करने से...।(१४) तपपद = यथाशक्ति बाह्य और अभ्यंतर तप भावपूर्वक करते रहने से...। (१५) दान (गौतम) पद = सुपात्र को यथोचित दान देने से...। (१६) वेयावच्च पद = आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान, नवदीक्षित, स्वधर्मी, कुल, गण, संघादि इन १० की भावपूर्वक भक्ति-वेयावच्च करने से...।(१७) संयमपद = स्वयं समाधिभाव में संयमयुक्त जीवन जीने से अथवा गुरुजनों का मन सेवादि द्वारा प्रसन्न रखने से...।(१८) अभिनव ज्ञानपद = निरंतर नवीन (नया-नया) ज्ञान का अभ्यास करने से...। (१९) श्रुतपद = श्रुतज्ञान की भक्ति एवं बहुमान करने से... (२०) तीर्थपद = संसारसागर से जो तारता है, वह तीर्थ हैं, ऐसे तीर्थ की आराधना करने से जीव तीर्थंकर नामकर्म का बंध करता है।

इन २० कारणों से या कोई १-२ कारणों से जीव अरिहंत-सिद्धादि की उत्कृष्ट भावों के साथ सेवा-शुश्रूषा-भक्ति-बहुमानादि करने से तीर्थंकर नामकर्म का बंध करता है, उक्त रीति से तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन करनेवाला महापुण्यवंत जीव बीच में देव या नारक का एक भव करके तीसरे भव में तीर्थंकर पद रूप अरिहंत पद को प्राप्त करता है।

189

It the earth were rotating. how can birds come back to their nests ? Why do arrow shot to the sky do not disappear ? Why should an arrow shot to the east not go to the west ? The earth has a very slow velocity, and therefore it does not happen So, Then how can the earth complete one full rotation within 24 hours ? Siddhanta Shiromani vritta Go.

"Maddhyadhikar" verse - 4-43

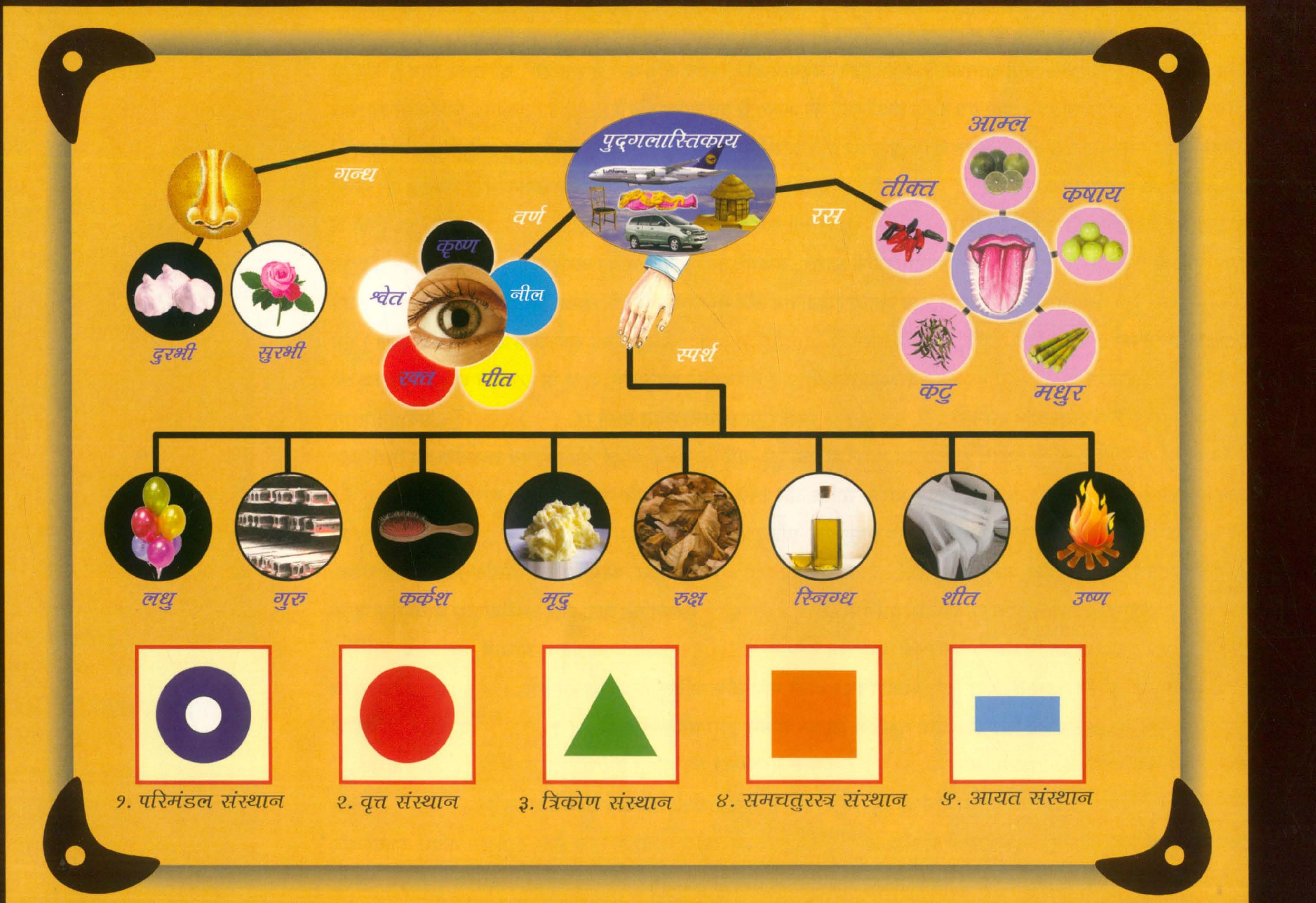
पुद्गलास्तिकाय
गन्ध
दुरभी
सुरभी
वर्ण
कृष्ण
श्वेत
नील
रक्त
पीत
रस
आम्ल
तीक्त
कषाय
कटु
मधुर
स्पर्श
लघु
गुरु
कर्कश
मृदु
रुक्ष
स्निग्ध
शीत
उष्ण
१. परिमंडल संस्थान
२. वृत्त संस्थान
३. त्रिकोण संस्थान
४. समचतुरस्त्र संस्थान
५. आयत संस्थान

पुद्गल (अजीव) के ५३० भेद.....

क्रम	पुद्गल नाम	श्वेत	पीत	रक्त	नील	कृष्ण	सुरभी	दुरभी	तिक्त	कटु	कषाय	अम्ल	मधुर	शीत	उष्ण	स्निग्ध	रुक्ष	लघु	गुरु	मृदु	कर्कश	परिमंडल	वृत्त	त्रिकोण	चतुष्कोण	आयत	कुल
१	श्वेत	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२०
२	पीत	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२०
३	रक्त	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२०
४	नील	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२०
५	कृष्ण	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२०
६	सुरभी	१	१	१	१	१	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२३
७	दुरभी	१	१	१	१	१	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२३
८	तिक्त	१	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२०
९	कटु	१	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२०
१०	कषाय	१	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२०
११	आम्ल	१	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२०
१२	मधुर	१	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२०
१३	शीत	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२३
१४	उष्ण	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२३
१५	स्निग्ध	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२३
१६	रुक्ष	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२३
१७	लघु	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	१	१	१	१	१	१	१	२३
१८	गुरु	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	१	१	१	१	१	१	१	२३
१९	मृदु	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	१	१	१	१	१	२३
२०	कर्कश	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	१	१	१	१	१	२३
२१	परिमंडल	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	२०
२२	वृत्त	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	२०
२३	त्रिकोण	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	२०
२४	चतुष्कोण	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	२०
२५	आयत	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	२०
२६	कुल	२०	२०	२०	२०	२०	२३	२३	२०	२०	२०	२०	२०	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२०	२०	२०	२०	२०	५३०

पांच वर्ण को २० से गुणते २० X ५ = १०० भेद होते हैं। सुरभी और दुरभी गंध के २३ + २३ जोड़ते ४६ भेद होते हैं। पांच रसों को भी वर्ण के जैसे २० से गुणते २० X ५ = १०० भेद होते हैं। आठ स्पर्श को २३ से गुणते २३ X ८ = १८४ भेद होते हैं। तथा पांच संस्थान को २० से गुणते २० X ५ = १०० भेद होते हैं। इस तरह पुद्गल वर्णादि के कारण से १०० + ४६ + १०० + १८४ + १०० = ५३० भेद पुद्गल (अजीव) के होते हैं।

190

अजीव का पाँचवा भेद पुद्गल (मेटर) है। विश्व के दृश्यमान संपूर्ण पदार्थ इसी के अन्तर्गत आते है। पुद्गल वर्ण, गंध, रस, स्पर्श युक्त होता है। पुद्गल का सूक्ष्मतम अविभागी अंश परमाणु कहा गया है। जैन दर्शन सोना-चांदी-शीशा-पारा-मिट्टी-लोहा-कोयला-पत्थर भाप-गैसादि सर्व पदार्थों को एक ही प्रकार के परमाणुओं से निर्मित मानता है। पदार्थों की भिन्नता का कारण केवल परमाणुओं की स्निग्धता और रूक्षतादि गुणों के अन्तर में निहित मानता है। उसके अनुसार परमाणु परमाणु के बीच कोई अन्तर नहीं है। कोई भी परमाणु कालान्तर में किसी भी परमाणु रूप में परिणमन कर सकता है। आधुनिक नहीं करता था तथा ९२ प्रकार के मौलिक परमाणु मानता था। परन्तु अणु की रचना के आविष्कारने सिद्ध कर दिया है कि सब पदार्थों की रचना एक ही प्रकार के परमाणुओं से हुई है और इसका अंतर केवल अन्तर्हित घनाणु (प्रोटोन) और ऋणाणु (इलेक्ट्रोन) की संख्या से है। यही नहीं, प्रयोगशाला में वैज्ञानिकों के एक तत्त्व को दुसरे तत्त्व में परिवर्तित कर उक्त सिद्धांत को व्यवहारिक सत्य प्रमाणित किया है। वैज्ञानिक बैजामिनने पारे को सोने में बदल दिया तथा अनेक प्रयोगशालाओं में प्लेटिनम को सोने मे बदलने के प्रयोग सफल हो चुके है।

ज्ञानावरणीय

दर्शनावरणीय

वेदनीय

मोहनीय

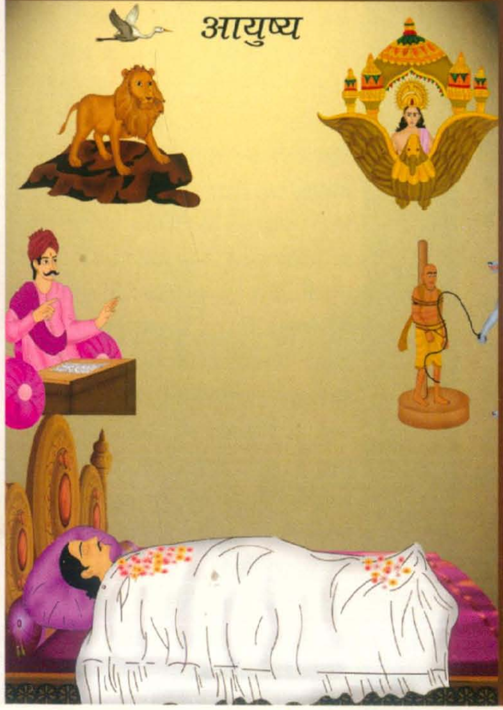
आयुष्य

नाम

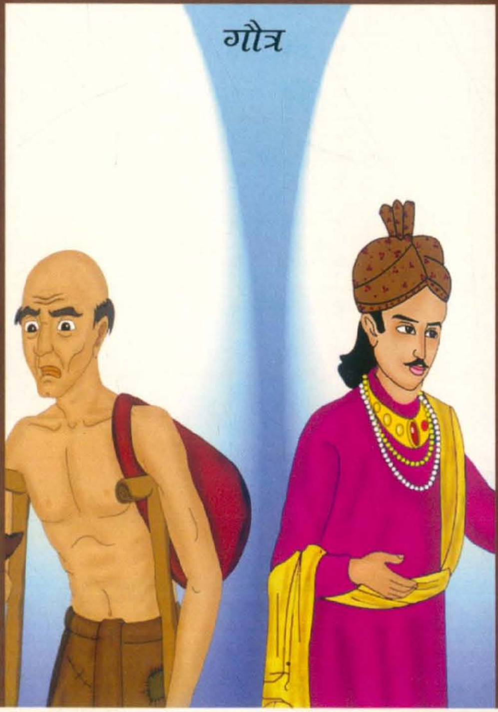
गौत्र

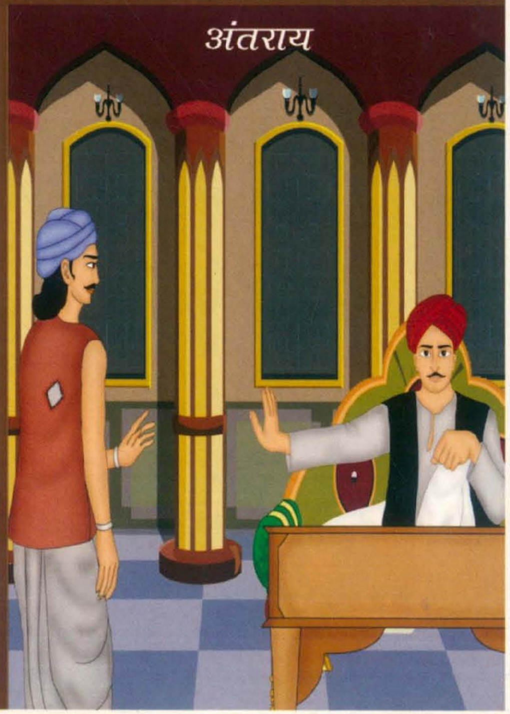
अंतराय

आठ कर्मों का स्वभाव..... (पार्ट - १)

आत्मा के साथ लगे हुए कर्मों में मुख्यतया आठ (८) प्रकार के स्वभाव पैदा होते हैं, इसी कारण से कर्म की मुख्य आठ (८) प्रकृतियाँ कहलाती हैं।

(१) ज्ञानावरणीय कर्म (घाति कर्म) : इस कर्म का स्वभाव आँख पर लगी पट्टी के समान हैं, जिस प्रकार आँख पर मोटे कपड़े की पट्टी बंधी हुई हो तो बिलकुल दिखाई नहीं देता है, परन्तु उसी पट्टी में छेद हो जाए अथवा पतली कपड़े की पट्टी हो तो जैसे कुछ कुछ दिखाई पड़ता हैं, उसी प्रकार यह कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को ढांकता हैं अर्थात् आवरण लाता हैं। जिस प्रकार सूर्य के ऊपर बादल आ जाने से सूर्य का प्रकाश छिप जाता है, परन्तु नष्ट नहीं होता और बादल हटते ही सूर्य का तेज पुनः प्रगट हो जाता है ठीक उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से आत्मा के ज्ञानगुण पर आवरण आ सकता है परंतु नष्ट करने की ताकात तो उसमे नहीं हैं। इस कर्म के उदय से अज्ञान-मूढता और मूर्खतादि प्राप्त होता है और क्षयोपशम से मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान तथा संपूर्ण क्षय से पाँचवां केवलज्ञान प्राप्त होता हैं।

(२) दर्शनावरणीय कर्म (घाति कर्म) : इस कर्म का स्वभाव द्वारपाल के समान है। कोई व्यक्ति राजा से मिलना चाहता हो परन्तु द्वारपाल यदि उसे रोक ले तो वह राजा से मिल नहीं पाता है, उसी प्रकार इस कर्म के उदय से जीव, पदार्थ में रहे सामान्य धर्म को जान नहीं पाता हैं...। इस कर्म के उदय से बेहरा-अंधा-मुंगा-इन्द्रियों की हानि-निद्रादि-५ आता है, और इस कर्म के क्षयोपशम से चक्षुदर्शन-अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन की प्राप्ति होती है और संपूर्ण क्षय से केवलदर्शन की प्राप्ति होती हैं।

(३) वेदनीय कर्म (अघाति कर्म) : इस कर्म का स्वभाव मधु से लिप्त तलवार की भाँति है। मधुलिप्त तलवार को चाटने से मधुर रस के स्वाद का अनुभव होता है, परंतु तलवार से जो जीभ कट जाए तो पीड़ा का पार नहीं रहता, उसी प्रकार जिस कर्म के उदय से जीव को बाह्य सुख-दुःख का अनुभव होता है, वह वेदनीय कर्म हैं। यह कर्म आत्मा के अव्याबाध रूप सुख के गुण को ढांकता है। तथा इस कर्म के उदय से जीव सुख-दुःख का और शाता-अशाता का अनुभव करता है, और क्षय से आत्मा में अनंत अव्याबाध सुख की प्राप्ति करता हैं।

(४) मोहनीय कर्म (घाति कर्म) : इस कर्म का स्वभाव मदिरा के समान है, जिस प्रकार मदिरापान से व्यक्ति अपने हित-अहित, कर्तव्य-अकर्तव्यादि को जानने में असमर्थ हो जाता है, उसी प्रकार इस कर्म के उदय से जीव सत्यासत्य, हिताहित को समझने में असमर्थ बन जाता हैं। यह मोहनीय कर्म आत्मा के क्षायिक सम्यक्त्व और वीतरागता गुण को ढांकता हैं। इस कर्म के उदय से जीव राग-द्वेष, कषाय, विरति, हास्यादि-६, ९-नो कषाय आदि करता हैं। मुख्यतया इस मोहनीय कर्म के २ भेद हैं - (१) दर्शन मोहनीय और (२) चारित्र मोहनीय। इस कर्म के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व और वीतरागता गुण प्रगट होता हैं।

(५) आयुष्य कर्म (अघाति कर्म) : इस कर्म का स्वभाव बेड़ी के समान है। जिस प्रकार चोरी आदि अपराध के अनुसार न्यायाधीश कानून के अनुसार अलग-अलग सजा करता है और उस सजा के अनुसार कोई कैदी एक वर्ष के लिए तो कोई कैदी ६ मास के लिए कैद में रहता है, उसी प्रकार इस कर्म के उदय से जीव को मनुष्य-देव-तिर्यंच-नारकादि के देह में अमुक काल के लिए कैदी की तरह रहना पड़ता है। यह कर्म आत्मा के अक्षयस्थिति गुण को रोकता है। इस कर्म के उदय से मनुष्यादि ४ गति में जन्म-मरण प्राप्त होता हैं और क्षय से ४ गति से मुक्त होता है।

191

"Mr. George Bernard Shaw, in the course of his talks with Shri Devidas Gandhi, son of Mahatma Gandhi, expressed the view that jaina teachings were much appealing to him and that he wished to be reborn in a Jain family. Due to the influence of Jainism, he was always taking pure food from meat and liquor."

"If there is a rebirth then I wish to be reborn in a Jain family."

- George Bernard Shaw

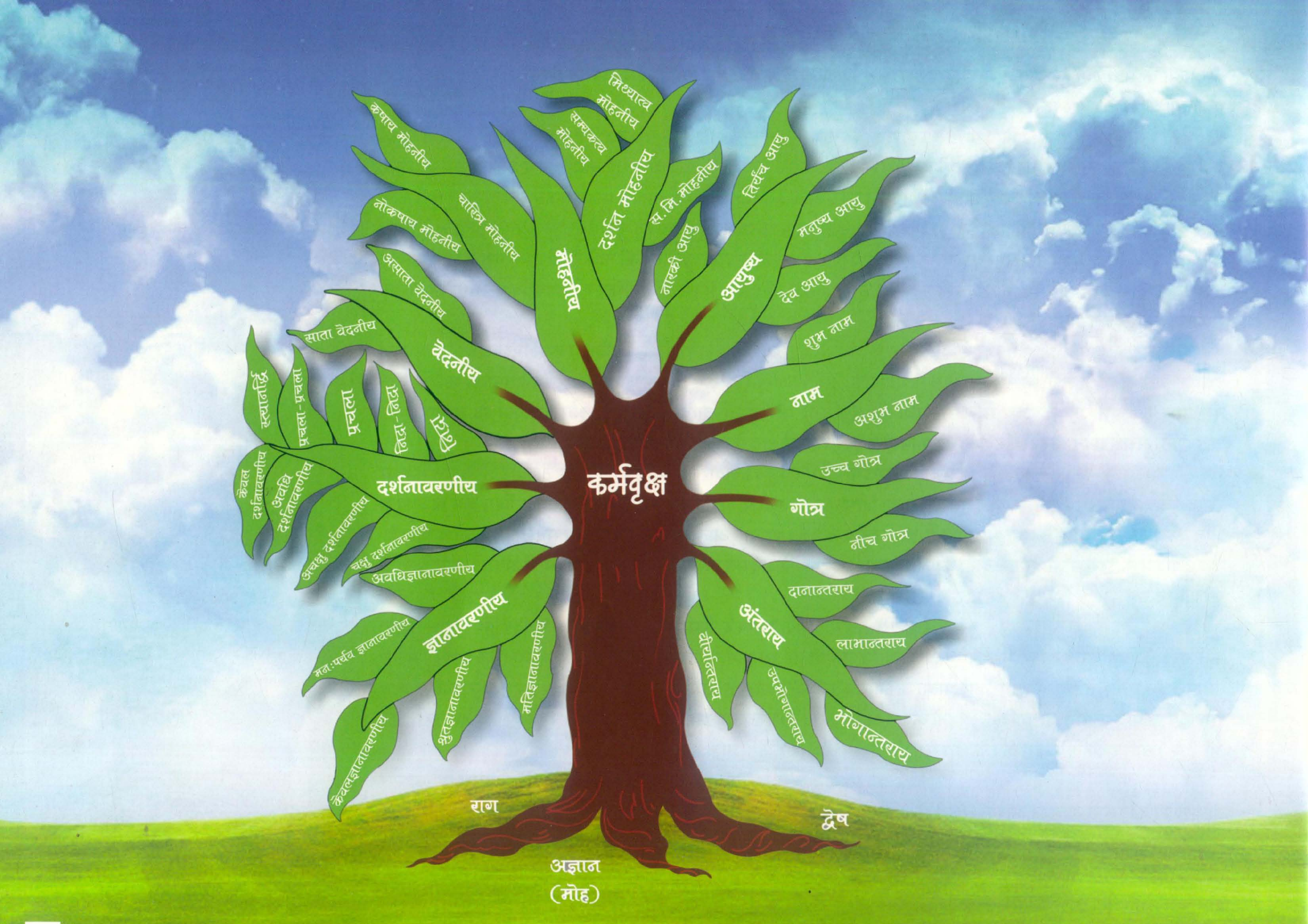
कर्मवृक्ष
मोहनीय
दर्शन मोहनीय
मिथ्यात्व मोहनीय
सम्यक्त्व मोहनीय
स.मि. मोहनीय
चारित्र मोहनीय
कषाय मोहनीय
नोकषाय मोहनीय
आयुष्य
तिर्यंच आयु
मनुष्य आयु
देव आयु
नारकी आयु
नाम
शुभ नाम
अशुभ नाम
गोत्र
उच्च गोत्र
नीच गोत्र
अंतराय
दानान्तराय
लाभान्तराय
भोगान्तराय
उपभोगान्तराय
वीर्यान्तराय
ज्ञानावरणीय
मतिज्ञानावरणीय
श्रुतज्ञानावरणीय
अवधिज्ञानावरणीय
मन:पर्यय ज्ञानावरणीय
केवलज्ञानावरणीय
दर्शनावरणीय
चक्षु दर्शनावरणीय
अचक्षु दर्शनावरणीय
अवधि दर्शनावरणीय
केवल दर्शनावरणीय
निद्रा
निद्रा-निद्रा
प्रचला
प्रचला-प्रचला
स्त्यानगृद्धि
वेदनीय
साता वेदनीय
असाता वेदनीय
राग
द्वेष
अज्ञान
(मोह)

आठ कर्मों का स्वभाव.....(पार्ट - २)

(६) नाम कर्म (अघाति कर्म) : इस कर्म का स्वभाव चित्रकार की तरह है, जिस प्रकार चित्रकार अपने पास रहे विविध रंगों व ब्रश से विविध चित्रादि तैयार करता है, उसी प्रकार यह नामकर्म संसारी जीवों को विविध रूप, रंग, आकार, शरीर, संघयण, संस्थानादि प्रदान करता है। यह नामकर्म आत्मा के अमूर्त (अरूपी) गुण को ढांकता है। इस कर्म के उदय से गति-जाति-शरीर-अंगोपांग-यश-अपयशादि की प्राप्ति होती हैं और इस कर्म के क्षय से अरूपीपणा प्रगट होता हैं।

(७) गोत्र कर्म (अघाति कर्म) : इस कर्म का स्वभाव कुंभकार की तरह हैं। जैसे कुंभकार मिट्टी के विविध प्रकार के घड़े बनाता है तो उनमें से कुछ घड़े मांगलिक कार्य में काम लगते हैं तो कुछ घड़ों में शराबादि भी भरी जाती हैं, उसी प्रकार यह कर्म आत्मा को ऊँचा-नीचा स्थान प्रदान कराता हैं। यह कर्म आत्मा में रहे हुए अगुरुलघु गुण को ढांकता है तथा इस कर्म के उदय से जीव को ऊँच-नीच, उत्तम-अधमादि कुल की प्राप्ति होती है और इस कर्म के क्षय से अगुरुलघु गुण की प्राप्ति होती हैं।

(८) अंतराय कर्म (घाति कर्म) : इस कर्म का स्वभाव खजांची जैसा हैं। जिस प्रकार राजा उदार हो परंतु खजांची प्रतिकूल हो तो राजा द्वारा इनाम की घोषणा हो जाने पर भी व्यक्ति ईनाम प्राप्त नहीं कर पाता हैं। ठीक उसी तरह अंतराय कर्म भी धनादि की प्राप्ति में अंतराय = विघ्न पैदा करता है। यह अंतराय कर्म आत्मा के अनंत वीर्यादि गुण को रोकता है। इस कर्म से जीव को कृपणता, अलाभ, दरिद्रता, भोगोपभोग, पराधिनता और दुर्बलतादि की प्राप्ति होती है तथा इस कर्म के क्षय से आत्मा में अनंत वीर्यादि गुण की प्राप्ति होती है।[१]

- इन आठ कर्मों में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय यह ४ घाति कर्म हैं।
- आत्मा के ज्ञानादि गुणों का घात करने से इन्हें ''घाति कर्म'' कहा जाता हैं।
- वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र कर्म को ''अघाति कर्म'' कहा जाता है, जो आत्मा के गुणों का घात नही करते हैं।
- घाति कर्म का जिस भव में क्षय हो जाता हैं, उसी भव में अघाति कर्मों का भी क्षय हो जाता हैं। उन्हें क्षय करने के लिए पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता...।
- इन आठों कर्मों में मुख्य (राजा जैसा) मोहनीय कर्म ही कहलाता हैं।
- चार घाति कर्मों का संपूर्ण क्षय होने से सुविशुद्ध-केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति होती है, जिससे संपूर्ण लोकालोक के समस्त भावों-पर्यायों को जीव-देख व जाण सकता हैं।
- आठों कर्मों का संपूर्ण क्षय होने से अव्याबाध अनंत एसे मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है, इसलिए ही तत्त्वार्थ सूत्र में कहा गया है कि - ''कृत्सनकर्मक्षयान्मोक्षः''।
- इन आठों कर्मों का विशेष स्वरूप १ से लेकर ६ कर्मग्रंथ, कर्मप्रकृति (कम्मपयडी), पंचसंग्रह भाग-१/२, उदय स्वामीत्व, उदीरणा स्वामीत्व, सत्ता स्वामीत्व, उपशमनाकरण, उपशमश्रेणी, क्षपकश्रेणी (खवगसेढी), देशोपशमना आदि.. अनेकानेक ग्रंथों में देखने को मिलता है।

(१) (A) सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धार-२ से १९ (B) प्रथम कर्मग्रंथ

192

"Lofty ideas and high ascetic practices are found in Jainism. It is impossible to know the beginning of Jainism."

- Major-General Forlong

"It has accordingly appeared to me that a study of Indian philosophy is incomplete without a study of Jaina's contributions to it."

Dr. Harisatya Bhattacharya

कालचक्र

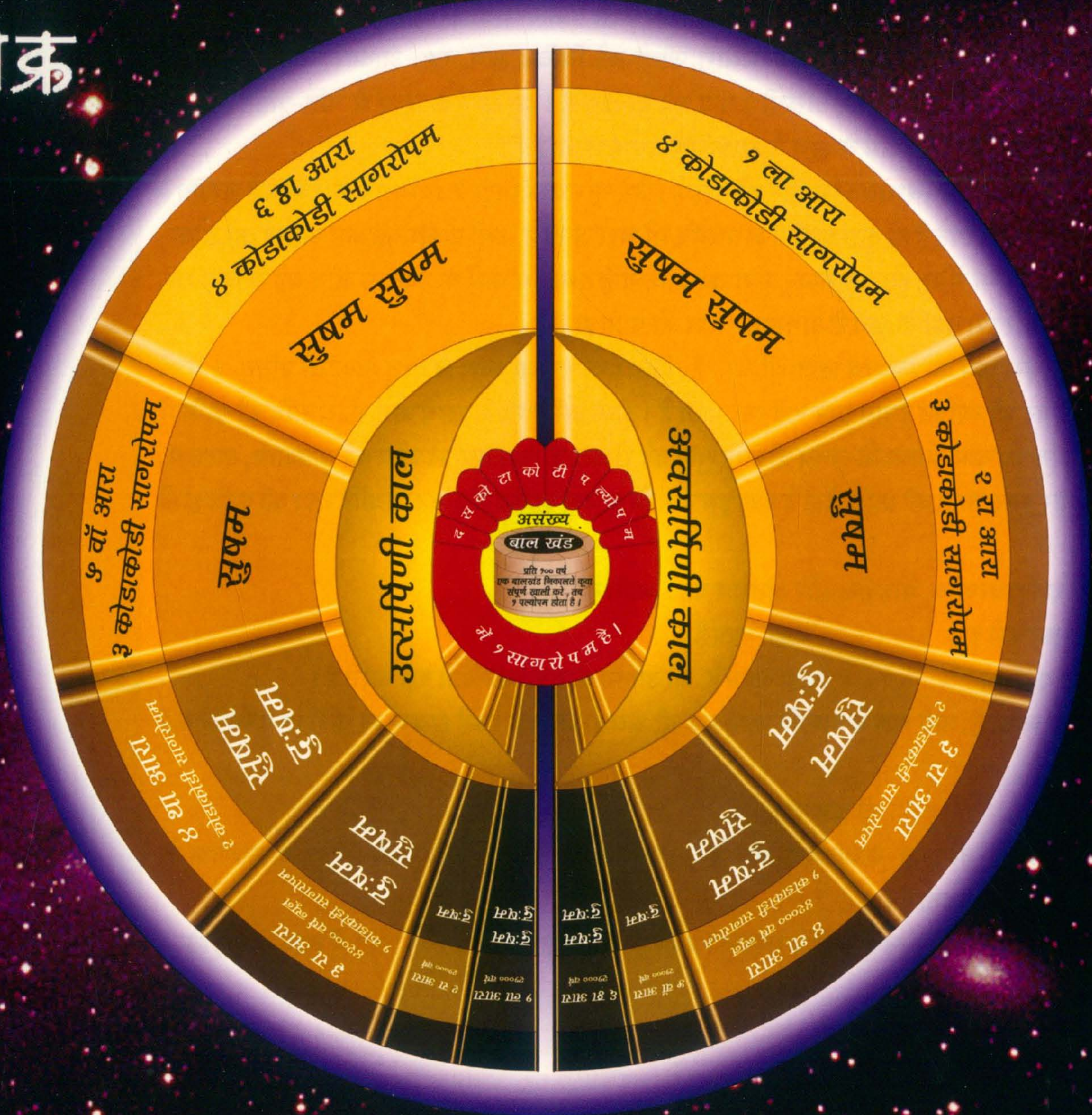

६ ठा आरा
४ कोडाकोडी सागरोपम
सुषम सुषम
१ ला आरा
४ कोडाकोडी सागरोपम
सुषम सुषम
५ वाँ आरा
३ कोडाकोडी सागरोपम
सुषम
२ रा आरा
३ कोडाकोडी सागरोपम
सुषम
उत्सर्पिणी काल
अवसर्पिणी काल
दस कोटा कोटी पल्योपम
असंख्य
बाल खंड
प्रति १०० वर्ष
एक बालखंड निकालते कुआ
संपूर्ण खाली करे, तब
१ पल्योपम होता है।
में १ सागरोपम है।

अवसर्पिणी काल के ६ आराओं का स्वरूप..... (पार्ट - १)

जिस तरह घड़ी के बारह अंकों में से ६ पूर्व दिशा में और ६ पश्चिम दिशा में विभाजित होने पर घड़ी के दो भाग स्पष्ट दिखते हैं। उसी तरह कालचक्र को भी पूर्वार्ध के ६ और पश्चिमार्ध के ६ विभागों में विभाजित करने पर उसके प्रत्येक विभाग को ''आरा'' (कालखण्ड) कहा जाता है। कालचक्र के प्रमुख दो विभाग होते हैं... (१) अवसर्पिणीकाल (२) उत्सर्पिणीकाल। प्रत्येक के ६-६ भाग होते हैं।

''अवसर्पिणीकाल'' = जिस कालखण्ड में प्रत्येक समय पर शुभ पुद्गलों की हानि एवं अशुभ पुद्गलों की वृद्धि हो रही हो उस काल को ''अवसर्पिणीकाल'' कहते हैं। इन छः आरों के नाम निम्नानुसार हैं... (१) सुषम-सुषम (२) सुषम (३) सुषम-दुषम (४) दुषम-सुषम (५) दुषम (६) दुषम-दुषम[१]।

(१) सुषम-सुषम = चार कोडाकोडी सागरोपम के आरे में मनुष्यों का देहमान ३ कोस, आयुष्य-३ पल्योपम, और उसके शरीर में २५६ पसलियाँ होती हैं। मनुष्य को वज्रऋषभनाराच संघयण एवं समचतुरस्त्र संस्थान होता हैं। स्त्री-पुरुष युगलिक रूप में उत्पन्न होते हैं। उनकी इच्छाएँ-आकांक्षाएँ १० प्रकार के कल्पवृक्ष पूर्ण करते हैं। उन्हें ३-३ दिन के अंतर से आहार की इच्छा होती हैं। कल्पवृक्ष के फल इतने रसप्रचुर, स्वादिष्ट और शक्तिवर्धक होते हैं कि तुवर के दाने मात्र जितना आहार ग्रहण करने के मात्र से ही संतोष होता हैं। स्वयं के आयुष्य के ६ मास शेष रहे हों तब युगलिनी एक युगल को (पुत्र-पुत्री के रूप में) जन्म देती है और ४९ दिन तक उनका पालन-पोषण करती है। तत्पश्चात् नवजात युगल स्वावलंबी होकर स्वतंत्र घूमता है। उनके माता-पिता की मृत्यु आयुष्य पूर्ण होने के समय एक छींक और एक जंभाई आने से होती है। वे अल्प विषयी और अल्प कषायी होने के कारण देवगति ही प्राप्त करते हैं। इस आरे में सुख ही सुख होता हैं।

(२) सुषम = कालमान तीन कोडाकोडी सागरोपम। देह, बुद्धि, बल, आयुष्य, कांती, पृथ्वी आदि के रस में एवं सारभूत पदार्थों के गुणों में उत्तरोत्तर हानि...। देहमान २ कोस, आयुष्य-२ पल्योपम, और १२८ पसलियों से युक्त शरीर। आहार की इच्छा दो दिन के बाद। आहार की मात्रा बोर जितनी। संतान पालन ६४ दिन। दूसरी सभी बातें प्रथम आरे के जैसे ही समान होती हैं। तथा इस आरे में भी लोग सुखी होते हैं।

(३) सुषम-दुषम = कालमान दो कोडाकोडी सागरोपम। जिसमें सुख अधिक और दुःख अल्प होता हैं। देहमान १ कोस, आयु १ पल्योपम तथा ६४ पसलियाँ। आहार की इच्छा १ दिन के बाद। आहार आँमला के जितना। पुत्र-पुत्री पालन ७९ दिन। दूसरी बातें प्रथम आरे के समान। विशेष - में इस आरे के जब ८४ लाख पूर्व, ३ वर्ष ८ $^{1}/_{2}$ महिने शेष रहते हैं तब प्रथम तीर्थंकर देव का जन्म होता हैं। उत्तरोत्तर हानीवाले काल के प्रभाव से कल्पवृक्षों की महिमा धीरे धीरे नष्ट होती जाती है। जनसमुदाय के खाने के लिए धान्य की उत्पत्ति होती है। बादर (स्थूल) अग्नि प्रगट होती है। युगलिकों की प्रार्थना पर प्रथम तीर्थंकर साधु होने से पूर्व राजा बनकर शिल्पादि कलाओं का प्रगटीकरण करते हैं। फलस्वरूप जनसमुदाय नीति नियमादि का पालन करते हुए सात्त्विक जीवन व्यतित करते हैं। प्रथम तीर्थंकर के निर्वाण के बाद ३ वर्ष और ८ $^{1}/_{2}$ महिने के अनन्तर चौथे आरे का प्रारंभ होता है। तीसरे आरे में ही युगलिकों की उत्पत्ति क्रमशः क्षीण हो जाती है। प्रथम चक्रवर्ती भी इसी आरे में जन्म धारण करता है। तीर्थंकर नामकर्म के उदय से तीर्थस्थापना होने के बाद मोक्षगमन का प्रारम्भ भी हो जाता है।

(१) (A) अभिधानचिंतामणिनाममाला-२/४३ से ४९ (B) तित्थोगाली पयन्ना-१८ (C) ज्योतिषकरंडक-९५ (D) सप्ततिशतकस्थानप्रकरणम्-८४ (E) लघुक्षेत्रसमास-३१ (F) प्रवचनसारोद्धार-१,०३४ (G) पदार्थस्थापनासंग्रह-३६/३७/३८ (H) ठाणांगसूत्र-६/४९२

"There is nothing wonderful in my saying that Jainism was in existence long before the Vedas were composed."

- Dr. S. Radhakrishnan, Vice-President, India

कालचक्र

अवसर्पिणी
उत्सर्पिणी
प्रथम आरा
द्वितीय आरा
तृतीय आरा
चतुर्थ आरा
पंचम आरा
षष्टम आरा
कालचक्र

अवसर्पिणी काल के ६ आराओं का स्वरूप.....(पार्ट - २)

(४) दुषम-सुषम = कालमान ४२,००० वर्ष न्यून १ कोडाकोडी सागरोपम। मनुष्य की आयु-पूर्व क्रोड़ वर्ष...। शरीरमान ५०० धनुष्य। आहारादि अनियत। युगलिकों की उत्पत्ति न होना। इस आरे में शेष २३ तीर्थंकर ११ चक्रवर्ती और ९ बलदेव, ९ वासुदेव तथा ९ प्रतिवासुदेव होते हैं। इस आरे में जन्मे हुए भव्य आत्माओं का मोक्ष पांचवें आरे में भी हो सकता हैं।

(५) दुषम = अंतिम तीर्थपति के मोक्षगमन के पश्चात् इसका आरंभ होता है। इसका कालमान २१,००० वर्ष का हैं। प्रारंभ में देहमान ७ हाथ। आयु १३० वर्ष। पसलियाँ १६। आहारादि अनियत। इस आरे के अन्त तक जिनशासन २१,००० वर्ष तक चलेगा। उत्सूत्र प्ररुपणा अधिक होगी। परस्पर मैत्रीभाव में कमी आयेगी। उन्नति-अवनति का क्रम सतत चलता रहेगा। पाखंड़ीयों की पूजा में अभिवृद्धि होगी। संयमीजन अनेक कष्ट सहन करके भी प्रभु के शासन को अविचल-अटल रखेंगे। आराधक आत्माएँ आराधना कर स्वहित एवं परहित साधते रहेगें। कषायों की उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। काम-आसक्ति में वृद्धि। मद-अभिमान वश संघर्ष में वृद्धि। शहर ग्राम में परिवर्तित होगें और ग्राम श्मशान में। कुलीन स्त्रियाँ आचारहीन होंगी। सुकुलोत्पन्न प्रायः दास-दासी बनेगे और हीन कुल वाले धर्मरसिक एवं साधक बनेगें। राजा यम जैसे क्रूर बनेंगे। विनय-मर्यादा का ह्रास होगा। गुणवानों की निंदा। क्षुद्र जंतुओं की अधिक उत्पत्ति। अकाल विशेष पड़ेंगे। लोभी-लालचियों में निरंतर वृद्धि। मत-मतांतरों की विशेष उत्पत्ति। मिथ्या-मतों में वृद्धि। देवताओं का प्रत्यक्ष न होना। विद्याओं के प्रभाव में हानि। दूध-दही-घी-धात्वादि उत्तम पदार्थों के सत्त्व में कमी। मनुष्य के आयुष्य प्रमाण में कमी। सुशील-सरल स्वभाववालों की कमी। कपटी-कुशील कदाग्रहीयों में वृद्धि। इस प्रकार यह काल अधिक दुःखमय और विषमताओं से भरा भरा रहेगा। विशेष-वर्तमान में यहीं आरा चल रहा हैं।

(६) दुषम-दुषम = कालमान २१,००० वर्ष। इस कालमान में मानवदेह १ हाथ। पसलिया-८। आयु-२० वर्ष। आहारादि की इच्छा अमर्यादित एवं अनियमित। दिन में सख्त ताप, रात में भयंकर शीत। महल और मकान सब नष्ट हो जाने से मानवजाति वैताढ्य पर्वत के उत्तर और दक्षिण में गंगा-सिंधु के आमने सामने तट पर जो ३६ + ३६ = ७२ बिल है उसमें वास करेगी। बीलवासी मानव, मछलियाँ और जलचरों को पकड़कर रेती में दबायेंगे। दिन के प्रचंड़ ताप में भुन जाने पर रात में उसका भक्षण करेंगे। परस्पर क्लेश करनेवाले दीन-हीन, दुर्बल, दुर्गंधी, रोगीष्ठ, अपवित्र, नग्न, आचारहिन और माता-पत्नि-बहन में भी विवेकहीन। ६ वर्ष की बालिका गर्भ धारण कर बालकों को जन्म देगी। सूअर के सदृश अधिकाधिक बच्चे पैदा कर महाक्लेश का अनुभव करेगी। धर्म-पुण्य रहित प्रजा होगी। अतिशय दुःख के कारण अशुभ कर्म उपार्जन कर नरक-तिर्यंचादि गति प्राप्त करेगे। इस आरे में दुःख ही दुःख हैं।

जिसे छट्ठे आरे में जन्म धारण न करना हो, उसे जीवनभर रात्रिभोजन, मांसाहार और ७ व्यसनों का त्याग करना अति आवश्यक हैं। अन्यथा रात्रिभोजन, मांसाहार एवं ७ व्यसनों के कुसंस्कारवाले छट्ठे आरे में जन्म धारण करने के फलस्वरूप अनेकविध कष्ट, दुःख और यातनाओं के भागी बनेंगे और इस तरह कषाय परंपरा से दुःखों की परंपरा का सर्जन होता रहेगा...।

194

The earth is naturally steady, just as the sun is hot, the moon is cool, water is wet, stone is hard, wind is fleeting. Things have strange powers... By nature the earth is motionless.

कालचक्र

बारह आरा
कालचक्र
20 कोडा कोडी
सागरोपम
पहला आरा
4 कोड़ाकोड़ी सागरोपम
सुषम - सुषम
छठवाँ आरा
दूसरा आरा
3 कोड़ाकोड़ी सागरोपम
सुषम
पाँचवाँ आरा
तीसरा आरा
2 कोड़ाकोड़ी सागरोपम
सुषम - दुःषम
चौथा आरा
दुःषम - सुषम
दुःषम
21000 वर्ष
दुःषम-दुःषम
21000 वर्ष
संतति पालन
49 दिन
कल्प वृक्ष
युगलिक
पसलियाँ 256
पसलियाँ 128
पसलियाँ 64
पसलियाँ 32
पसलियाँ 16
पसलियाँ 8
असि
मसि
कृषि
प्रथम तीर्थंकर
23 तीर्थंकर
यन्त्र प्रयोग
वैज्ञानिक शक्ति
सुखद परिवर्तन
मछलियाँ पकड़ते
बौने और बेडौल मनुष्य
शरीर 3 कोस
आयुष्य 3 पल्यो.
आहार 3 दिन
से तूवर
प्रमाण
शरीर 3 कोस
आयुष्य 3
पल्योपम आहार
3 दिन से
तूवर
प्रमाण
श. 7 हाथ
आ. 133
वर्ष अन्त में
सर्वप्रलय
श. 1 हाथ
आयु. 20
वर्ष बिलवासी
नरकगामी
श. 1 हाथ
आयु. 20
वर्ष बिलवासी
मत्स भोजन

उत्सर्पिणी काल के ६ आराओं का स्वरूप.....

जिस काल में उत्तरोत्तर शुभ पुद्‌गलों की वृद्धि एवं अशुभ पुद्‌गलों की हानी हो रही हो वह काल ''उत्सर्पिणी काल'' कहलाता है। इस कालखण्ड में देह, बुद्धि, बल, आयुष्य, कांति, पृथ्वी आदि की रस प्रचुरता में सारभूत उत्तम पदार्थों के गुणों में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती हैं।

(१) दुषम-दुषम = २१,००० वर्ष की काल मर्यादावाला यह लगभग अवसर्पिणी के छट्ठे आरे के सदृश ही होता हैं । उसकी विशेषता इतनी ही है कि अवसर्पिणी काल की अवधि में देह, आयुष्य एवं आहारादि में उत्तरोत्तर ह्रास होता है, जब कि यहाँ पर उसमें क्रमशः निरंतर वृद्धि होती जाती हैं।

(२) दुषम = २१,००० वर्ष । इस अवधि में भरतक्षेत्र में पांच प्रकार की वृष्टियाँ होती हैं । फलस्वरूप धरती की उष्णता नष्ट हो, दुर्गंध दूर होती है और धरती में स्निग्धता का प्रादुर्भाव होता हैं । २४ प्रकार के धान्य की उत्पत्ति । वनस्पति में रस-प्रचुरता भरपुर प्रकट होती है । समय के साथ बिलवासीयों में भी परिवर्तन के लक्षण दृढ होते हैं । वे फलादिक आहार ग्रहण करने लगते हैं । आहार स्वादिष्ट लगने से मांसाहार का त्याग होता है । बुद्धि में दयाभाव का आविर्भाव । अवसर्पिणी के पंचम आरे जैसे रीति-रिवाजों का पुनः प्रादुर्भाव होता हैं।

(३) दुषम-सुषम = ४२,००० वर्ष न्यून १ कोडाकोडी सागरोपम का कालमान... । अवसर्पिणी के चोथे आरे के समान यह भी होता है । प्रारंभ के ३ वर्ष ८ $^{1}/_{2}$ महिने व्यतित होने के उपरांत प्रथम तीर्थंकर का जन्म... । उत्तरोत्तर २३ तीर्थंकर का जन्म, ११ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव इसी काल में होते हैं । वर्णादि शुभ पर्यायों की दिन-ब-दिन वृद्धि होती रहेती हैं।

(४) सुषम-दुषम = २ कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण ।(अवसर्पिणी के तीसरे आरे जैसे भाव इसमें भी होते हैं ।) ८४ लाख पूर्व ३ वर्ष ८ $^{1}/_{2}$ महीने होने पर २४ वे तीर्थंकर का मोक्षगमन होता है । बाद में १२वे चक्रवर्ती का आयुष्य पूर्ण होता है । तत्पश्चात् क्रोड़ पूर्व काल व्यतित हो जाने पर कल्पवृक्ष की उत्पत्ति हो जाती है । कल्पवृक्ष के प्रभाव से मनुष्यों एवं वनचरों की इच्छाएँ पूर्ण होने लगती हैं। बादर अग्नि एवं धर्म का विच्छेद होता हैं । इस प्रकार यह अकर्मभूमि जैसा क्षेत्र बन जाता है।

(५) सुषम = ३ कोडाकोडी सागरोपम का कालमान । अवसर्पिणी के दूसरे आरे के समान सब बातें समान जाननी... ।

(६) सुषम-सुषम = ४ कोडाकोडी सागरोपम का कालमान । अवसर्पिणी के प्रथम आरे के समान ही यह कालखंड भी हैं । इस प्रकार अवसर्पिणी काल के १० कोडाकोडी सागरोपम वर्ष और उत्सर्पिणी काल के १० कोडाकोडी सागरोपम वर्ष को मिलाकर कुल २० कोडाकोडी सागरोपम वर्ष का एक कालचक्र होता हैं । ठीक उसी तरह अवसर्पिणी के ९ कोडाकोडी सागरोपम और उत्सर्पिणी के ९ कोडाकोडी सागरोपम के कुल १८ कोडाकोडी सागरोपम काल तक ५ भरत क्षेत्र, ५ ऐरावत क्षेत्र धर्म से रहित बन जाता हैं । महाविदेह में सदाकाल धर्म का अस्तित्व रहता ही हैं।

इस तरह १० कोडाकोडी सागरोपम का १ अवसर्पिणी एवं १० कोडाकोडी सागरोपम का १ उत्सर्पिणी काल का १ कालचक्र पूर्ण होता है । ऐसे अनंत कालचक्रों का एक पुद्‌गलपरावर्त काल होता हैं।

195

A question to those who believe that the earth is round why does the coast not appear round from the mid sea steamer ? If we can see ascend and descend of a hillock before our eyes. Then why we can not see such a hug slope of the earth in the same manner? Because, the earth is flat.

६ प्रकार के बाह्य तप.....
अनशन
ऊणोदरी
वृत्तिसंक्षेप
रसत्याग
कायक्लेश
संलीनता

(१) अनशन तप : "अन्" अर्थात् नहीं, "अशन" अर्थात् आहार। यानी सिद्धांत विधि से आहार का त्याग करना यह "अनशन" तप कहलाता हैं।★ परन्तु व्रत प्रत्याख्यान की अपेक्षा रहित भूखे रहने मात्र से अनशन तप नहीं होता, वह तो मात्र लांघन कहलाता है।

(२) उणोदरिका तप : "उन" यानी कम (न्युन), "औदरिका" यानी उदरपूर्ति करना, यह "उणोदरी" तप कहलाता है। उपकरण की न्यूनता करनी अथवा क्षुधा से कम आहार करना (भूख से कम खाना) यह द्रव्यौणोदरिका है तथा रागादि को अल्प करना यह भाव-उणोदरिका हैं। इस तप में पुरुष का आहार ३२ कवल तथा स्त्री का २८ कवल प्रमाण गिनकर यथायोग्य पुरुष की उणोदरिका ९-१२-१६-२४ और ३१ कवल खाने से पांच प्रकार की है। तथा स्त्री की उणोदरिका ४-८-१२-२०-२७ कवल खाने के द्वारा पाँच प्रकार की हैं।

(३) वृत्ति संक्षेप तप : द्रव्यादि चार भेदों से मनोवृत्ति का संक्षेप-अर्थात् द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से भिक्षादि का अभिग्रह करना वह वृत्ति संक्षेप तप है।

(४) रसत्याग तप : रस यानि दूध, दही, घी, तेल, गुड और तली हुई वस्तु, ये छः लघुविगई (परन्तु भक्ष्य) तथा मदिरा, मांस, मक्खन और मधु (शहद-**Honey**) ये चार महाविगई (सर्वथा अभक्ष्य) यहाँ महाविगई का सर्वथा त्याग और लघुविगई का द्रव्यादि ४ भेदों से यथायोग्य त्याग करना, यह "रसत्याग" नामक तप है।

(५) कायक्लेश तप : वीरासनादि आसनों से बैठने की विधि से बैठना, कायोत्सर्ग करना तथा केश का लोच एवं विहारादि वे सब "कायक्लेश" नामक तप हैं।

(६) संलीनता तप : संलीनता अर्थात् संकोचन करना, संवरण करना। (१) अशुभ मार्ग में प्रवर्तन करती हुई इन्द्रियों का संवरण करना (रोकना) यानी पीछे हटाना, यह "इन्द्रिय संलीनता" है। (२) कषायों को रोकना यह "कषाय संलीनता" हैं। (३) अशुभ योग से निवृत्त होना वह "योग संलीनता" हैं एवं (४) स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक के संसर्गवाले स्थान का त्याग करके अच्छे (अर्थात्- जहाँ पर निर्विघ्न संयम पालन करने में सुविधा प्राप्त हो, ऐसे) स्थान में रहना - यह विविक्तचर्या संलीनता कहलाती है, इस तरह ४ प्रकार से यह "संलीनता" तप है।

इस प्रकार से यह ६ प्रकार से बाह्य तप हैं। जिस तप को मिथ्यादृष्टि भी करते हैं, लोग भी जिस तपश्चर्या को देखकर तपस्वी कहते हैं और यह बाह्य दिखावेवाला है तथा शरीर को तपाता है, इसलिए यह छह प्रकार का तप "बाह्य तप" कहलाता हैं।[1]

पुद्गल के पर्याय बदलते रहते है परंतु मूल पुद्गल का नाश नहीं होता है। और तो और उसकी शक्ति में रूपांतर होता रहता हैं। यह जिनशासन की बात को विज्ञानने ओक्सिजन और हाइड्रोजन द्वारा पानी बनाकर सिद्ध किया है।

★ अनशन के दो भेद हैं। (१) यावज्जीव और (२) इत्वरिक। यहाँ १. पादपोपगमन और २. भक्त प्रत्याख्यान ये दो अनशन मरण पर्यंत संलेखना पूर्वक किये जाते हैं, उनके भी निहारिम-अनिहारिम ऐसे २-२ भेद हैं। ३. अनशन अंगीकार करने के बाद शरीर को नियतस्थान से बाहर निकालना यह निहारिम और ४. उसी स्थान में रहना यह अनिहारिम हैं। ये चारों भेद यावज्जीव अनशन के हैं और (२) इत्वरिक अनशन-सर्व से एवं देश से दो प्रकार का है, यहाँ (१) चारों प्रकार के आहार के त्यागवाला चउविहार उपवास, बेला, तेलादि "सर्व" से कहलाता है और नवकारसहियं (नवकारशी), पोरसी, एकासना आदि 'देश' से कहलाता है।

1. (१) (A) ठाणांग सूत्र-६/५११ (B) हितोपदेशमाला-१८८ (C) नवतत्त्व प्रकरण-३४ (D) पंचवत्थुगं-८४५ (E) रत्नसंचय-३४० (F) नवतत्त्वभाष्य-९१ (G) विचारसार-२८७ (H) पंचाशकानि-८९८ (I) संबोध प्रकरण-१२६५ (J) आराधना पताका-२/१३६ (K) प्रवचन सारोद्धार-२७० (L) चरणकरणमूलउत्तरगुण-१२ (M) चंदावेज्झयं पयन्ना-८९ (N) आराधना पताका-१/१९८-५८९ (O) अणगारधर्मामृत-६/७ (P) मूलाचार-३४६ (Q) चारित्रसार-१३३/३

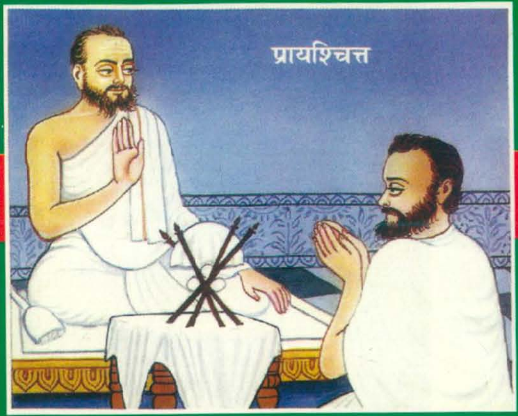

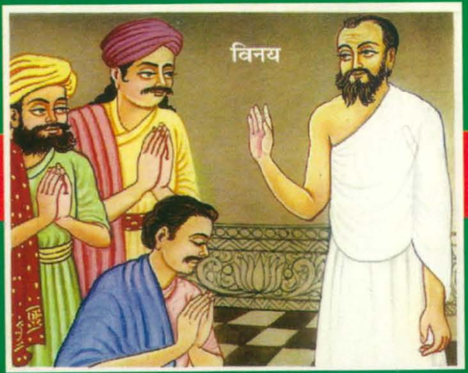

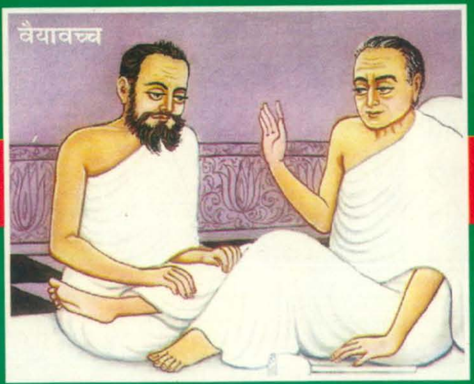

६ प्रकार के अभ्यंतर तप..

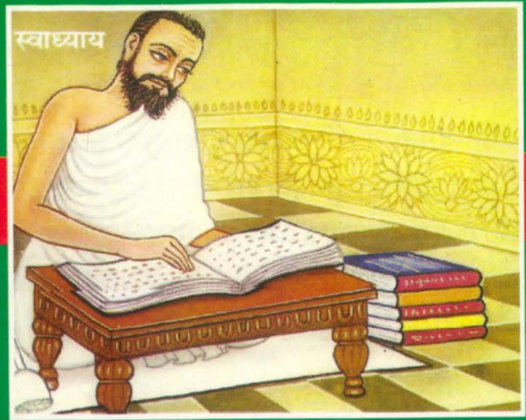

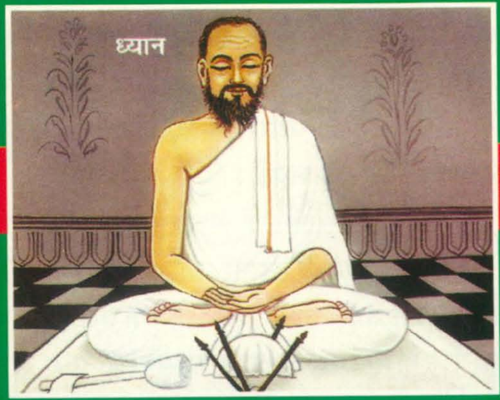

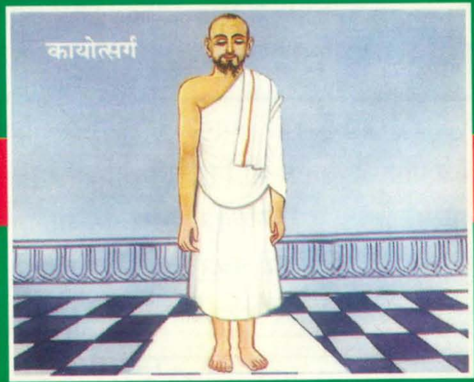

६ प्रकार के अभ्यंतर तप.....

अब छह प्रकार के अभ्यंतर तप कहते हैं। जो तप लोग बाह्यदृष्टि से नही जान सकते, जिस तप में लोग तप करनेवाले को तपस्वी नहीं कहते, जिससे बाह्य शरीर तपता नहीं, परन्तु अभ्यंतर आत्मा और मन तपे और विशेषतः जो तप अंतरंग प्रवृत्तिवाला होता है ऐसे प्रायश्चित्तादि को "अभ्यंतर" तप कहते हैं।[१] जिसका स्वरूप इस प्रकार हैं...

(१) प्रायश्चित्त तप : किए हुए अपराध की शुद्धि करना प्रायश्चित्त कहलाता हैं। इस तप के १० भेद इस प्रकार हैं (१) आलोचना (२) प्रतिक्रमण (३) मिश्र (४) विवेक (५) कायोत्सर्ग (६) तप (७) छेद (८) मूल (९) अनवस्थाप्य एवं (१०) पाराञ्चित प्रायश्चित्त...।

(२) विनय तप : गुणवान की भक्ति-बहुमान करना अथवा आशातना न करना, यह विनय कहलाता हैं। जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, मन, वचन, काया एवं उपचार से सात (७) प्रकार का है। (अथवा मनादि योग रहित ४ प्रकार का भी है।)

(३) वैयावच्च तप : आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, स्थवीर, ग्लान, शैक्षक, साधर्मिक, कुल, गण एवं संघ, इनका (दश का) यथायोग्य आहार, पात्र, उपधि, वस्त्र, वसति, औषध, पात्र, आज्ञापालन इत्यादि से भक्ति बहुमान करना... यह १० प्रकार का "वैयावच्च तप" कहलाता हैं।

(४) स्वाध्याय तप : (१) पढ़ना और पढ़ाना यह "वाचना" कहलाती है। (२) शंका का समाधान करना, "पृच्छना" कहलाती है। (३) पढ़े हुए की पुनरावृत्ति करना "परावर्तना" कहलाती हैं। (४) धारणा किए हुए अर्थ के स्वरूप का मननादि करना - "अनुप्रेक्षा" कहलाती है। तथा (५) धर्मोपदेश देना वह "धर्मकथा" कहलाती हैं... इस प्रकार से स्वाध्याय पांच प्रकार का है।

(५) ध्यान तप : ऐसे तो ध्यान के ४ प्रकार है... परन्तु यहाँ पर मात्र शुभध्यान रूप धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान का ही समावेश किया गया हैं। ध्यान अर्थात् योग की एकाग्रता अथवा योगनिरोध, इस तरह २ अर्थ हैं। यहाँ धर्मध्यान और शुक्लध्यान के भी ४-४ भेद हैं, जो इस प्रकार के हैं... धर्मध्यान के (१) आज्ञाविचय (२) अपायविचय (३) विपाकविचय (४) संस्थानविचय... तथा शुक्लध्यान के (१) पृथकत्व वितर्क सविचार (२) अपृथकत्व (एकत्व) वितर्क अविचार (३) सूक्ष्मक्रिया अनिवृत्ति और (४) व्युछिन्नक्रिया अप्रतिपाती...।

(६) कायोत्सर्ग तप : काय यानी काया आदि के व्यापार का उत्सर्ग यानी त्याग यह कायोत्सर्ग तप है। अथवा सामान्य शब्द से उत्सर्ग कहलाता है। इस उत्सर्ग के द्रव्योत्सर्ग और भावोत्सर्ग ये दो भेद हैं। ★ द्रव्योत्सर्ग ४ प्रकार का है तथा भावोत्सर्ग ३ प्रकार का हैं... जो कुछ इस प्रकार से जाने... (१) द्रव्योत्सर्ग : (A) गण, गच्छ का त्याग करके जिनकल्पादि कल्प (विशिष्ट आराधना) अंगीकार करना यह "गणोत्सर्ग" हैं। (B) (पादपोपगमनादि भेद वाला) अनशन व्रत लेकर काया का त्याग करना "कायोत्सर्ग" हैं। (C) कल्पविशेष की सामाचारी के प्रमाणानुसार उपधि (वस्त्र विशेष) आदि का त्याग करना यह "उपधि उत्सर्ग" हैं और (D) अधिक अथवा अशुद्ध आहार का त्याग करना यह "अशुद्ध भक्तपान उत्सर्ग" है।

भावोत्सर्ग के ३ प्रकार हैं। (A) कषाय का त्याग यह "कषायोत्सर्ग" हैं। (B) भव के कारण रूप मिथ्यात्वादि बंध हेतु का त्याग करना वह "भवोत्सर्ग" हैं और (C) ज्ञानावरणीयादि कर्म का त्याग करना वह "कर्मोत्सर्ग" है। इस प्रकार ६ रूप से अभ्यंतर हैं...।

(१) (A) पंचवत्थुगं-८४६ (B) विचारसार-२८८ (C) पंचाशकानि-८९९ (D) रत्नसंचय-३४१ (E) प्रवचन सारोद्धार-२७१ (F) संबोध प्रकरण-१,२६६ (G) चरणकरणमूलउत्तरगुण-१३ (H) हितोपदेशमाला-१८९ (I) नवतत्त्व प्रकरण-३५ (J) नवतत्त्व भाष्य-९२

197

"Jainism has contributed to the world the sublime doctrine of Ahimsa. No other religion has emphasized the importance of Ahimsa and carried its practice to the extent that Jainism has done. Jainism deserves to become the universal religion because of its Ahimsa doctrine."

- Justice Ranglekar, Bombay-High Court

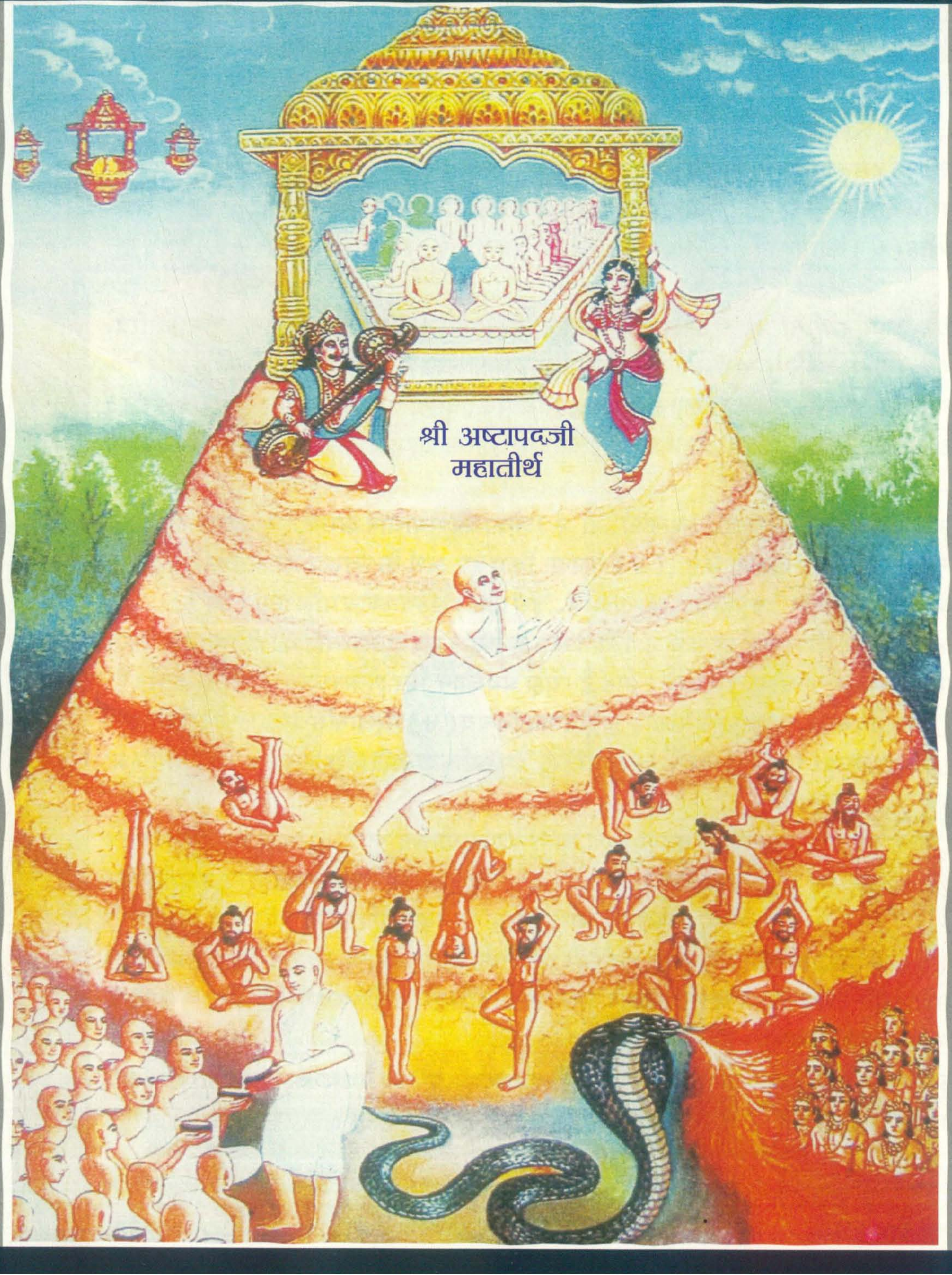
श्री अष्टापदजी
महातीर्थ

श्री अष्टापदजी महातीर्थ..... (पार्ट - १)

जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव प्रभु का निर्वाण **श्री अष्टापदजी महातीर्थ** में हुआ था।[१] भरतक्षेत्र की राजधानी श्री अयोध्या नगरी से उत्तर में १२ योजन की दूरी पर श्री अष्टापदजी[२] महातीर्थ स्थित है। माघ मास में कृष्णपक्ष की तेरस को प्रभु ऋषभदेव भगवानने अष्टापदगिरि पर मोक्ष प्राप्त किया था[३]। वह पावनभूमि जहाँ भगवान ऋषभदेव के नश्वर देह का अग्निसंस्कार किया गया था वहाँ चक्रवर्ती भरत महाराजाने तीन गाउ ऊँचाई का रत्नमय पाषाण से सिंहनिषद्या नामक एक भव्य प्रासाद बनवाया। इसके चारों ओर प्रभु के समवसरण की तरह स्फटिक रत्न के चार द्वार भी उन्होंने बनवाए। इस चैत्य में भगवान श्री ऋषभदेव की मूर्ति के अतिरिक्त अपने ९९ भाईयों की दिव्य मूर्तियों को भी उन्होंने स्थापित किया था। इसके अलावा भी स्वयं की भी प्रभु की सेवा करती हुई एक प्रतिमा भी उन्होंने अष्टापद पर्वत पर स्थापित की थी।

इस पावन-पवित्र स्थान पर किसी प्रकार की अशांति निर्मित न हो, इसके लिए भरत चक्रवर्ती ने दंडरत्न द्वारा प्रहार कर अष्टापदगिरि को किसी स्तंभ जैसा चिकना बना दिया, जिससे उस पर कोई भी व्यक्ति चढ़ नहीं सकता था। इसके पश्चात् चक्रवर्ती भरतने इस पर्वत पर १-१ योजन की दूरी पर मेखला जैसी आठ (८) सीढ़ियाँ बनवाईं। इन सीढ़ियों पर वे लोग ही चढ़ सकते थे, जिनके पास लब्धि हो, इनके सीवा उन पर कोई भी चढ़ नहीं सकता था। उसके पश्चात् यह गिरि अष्टापद के नाम से जाना जाने लगा। इसके अतिरिक्त इसे हराद्रि, कैलाश व स्फटिकादि के नाम से भी जाना जाता हैं।

जैनधर्म के दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान के बंधु जिनका नाम सगर था, वे भी चक्रवर्ती हो गए। सगर चक्रवर्ती के ६०,००० पुत्र थे, जिनमें सबसे बड़े का नाम जह्नुकुमार था। एक बार परिभ्रमण करते हुए सगर चक्रवर्ती के ६०,००० पुत्र अष्टापदगिरि के नजदीक पहुँच गए। जब उन्होंने जाना कि यह-इस पवित्र गिरि पर भगवान श्री ऋषभदेव का निर्वाण हुआ हैं, तब वे अत्यंत हर्षित हुए और विद्या का उपयोग कर इस पर्वत पर चढ़ गए। उन्होने सिंह निषद्या चैत्य में प्रवेश किया और श्रद्धापूर्वक जिनबिंबों की भक्ति की।

सगर चक्रवर्ती के ६०,००० पुत्रोंने विचार किया कि - ''इस चैत्य के संरक्षण के लिए हमें कुछ करना चाहिए।'' यह सोचकर उन्होंने चक्रवर्ती के दंडरत्न का उपयोग किया और श्री अष्टापदजीगिरि के चारों ओर १,००० योजन गहरी खाई खोद दी। इस खाई के खोदने से वे पाताल में स्थित नागकुमारों के भवनों तक पहुँच गये। दंडरत्न के प्रहारों के कारण नागकुमारों के भवनों में धूल भरने लगी, इसलिए नागकुमारों का इन्द्र धरणेन्द्र क्रोधित हो गया, और शिकायत की मुद्रा में आ गया। इन इन्द्र (राजा) के क्रोध को शांत करने के लिए जह्नुकुमार ने कहा- ''अर्हंत् की भक्ति से बिना विचार किए जो कृत्य किया है, उसके लिए हमें क्षमा करें और भविष्य में इस प्रकार का कोई भी कार्य नहीं करेंगे...।

(क्रमशः)

(१) आवश्यक चूर्णि-२२१ (२) शिवपुराण-५९ में अष्टापद के स्थान पर कैलाशपर्वत का उल्लेख हैं। (३) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति-४८/९१ (A) कल्पसूत्र-१९९/५९ एवं (B) त्रि.श.पु. चरित्र-१/६... परंतु (A) तिलोयपण्णत्ति (B) ईशानसंहिता (C) महापुराण-३७/३ के अनुसार माघ कृष्णा चतुर्दशी हैं। (D) विचारसार-४३९ (E) रत्नसंचय-४५ (F) सर्वतीर्थमहर्षिकुलकम्-१ (G) तित्थोगाली पयन्ना-५६२ (H) एकविंशतिस्थानप्रकरणम्-६१

198

श्री अष्टापदजी महातीर्थ.....

"We learn from Shastras and commentaries that Jainism is existing from beginningless time. This fact is indisputable and free from difference of opinion. There is historical evidence on this point."

-Lokmanya Balgangadhar Tilak

अष्टापदजी
महातीर्थ
श्री अष्टापदजी महातीर्थ

श्री अष्टापदजी महातीर्थ..... (पार्ट - २)

नागराज के जाने के पश्चात् जह्नुने अपने भाईयों को कहा कि- हमने अष्टापद के चारो ओर खाई का निर्माण तो कर लिया लेकिन पाताल जितनी इस गहरी खाई की जल के बगेर कोई की शोभा ही नहीं है साथ ही यह खाई भूमी-मिट्टी से भी वापस भर सकती है, इसलिए इस खाई को अत्यधिक जल से भर देना चाहिए। इस कार्य को करने के लिए ऊँची लहरोंवाली महानदी गंगा को ही वहाँ लाना पड़ेगा। इस तरह का विचार कर जह्नुकुमार ने दंडरत्न के द्वारा गंगा के तट को तोड़ दिया। इसके पश्चात् उन्होने दंड़ के द्वारा पृथ्वी में नहर बनाई, इसलिए गंगा नदी का पानी तेज गति से उसमें प्रवेश कर दिया और दंडरत्न के पीछे अनुसरण करता हुआ अष्टापदगिरि के आसपास की खाई में भर गया। इस प्रकार अष्टापद के चारों ओर एक हजार योजन की गहराई की बनी खाई गंगा के जल से भर गई।

श्री अष्टापदगिरी के चारों ओर बनी खाई जब भर गई, उसके पश्चात् गंगा का पानी नागकुमारों के भवनों में घुस गया, इसलिए वे चिंटियों की तरह मंदिरों में दुबक गए। यह जानकर अत्यंत क्रोधित नागराज जमीन पर आए और उन्होंने अपनी अंगार भरी नजरों से सगर के ६०,००० पुत्रों को जलाकर भस्म कर दिया, फिर पुनः पाताललोक में चले गये। सगरचक्री के पुत्र अष्टापद के नजीक गंगानदी को अवश्य ले आए और उन्होंने उससे खाई को भी भर दिया, लेकिन उसके पश्चात् गंगानदी का पानी आसपास को गांवों में विनाश की स्थिति निर्माण करने लगा, इसलिए अष्टापद के नजदीक रहनेवाले लोग सगरचक्री के पास आए और शिकायत करने लगे कि- ''विनाश की स्थिति को आप रोके'' तब यह सुन चक्रीने अपने पौत्र भगीरथ को आज्ञा दी कि ''अष्टापद के चारों ओर बनी खाई को भरकर वह गंगा नदी एक उन्मत्त स्त्री की तरह इस समय गांवों में मंडरा रही है इसलिए उसे दंड़ के द्वारा प्रेरित कर पूर्व के सागर में मिल जाने दो।'' यह सुनकर दंडरत्न व चक्री की सेना लेकर भगीरथ फिर से अष्टापद के नजदीक आया। जैसे कोई चिमटी से माला पकडता है वैसे दंडरत्न से उसने गंगानदी को पकड़ लिया। इसके पश्चात् गंगानदी को कुरुदेश के मध्यभाग में से हस्तिनापुर के दक्षिणभाग में से, कौशलदेश के पश्चिम भाग में से, प्रयाग के उत्तर में से, काशी के दक्षिण में से, विंध्याचल के दक्षिण में से, व अंग तथा मगध प्रदेश के उत्तर में से होकर भगीरथने उसका पूर्व के समुद्र में प्रवेश करा दिया। गंगानदी को भगीरथ खींचकर लाए, इसलिए उसका नाम भागीरथी भी पड़ गया। पूर्व के महासागर में गंगानदी जहाँ मिली, वह गंगासागर तीर्थ बन गया।

इस वर्णन से मालूम होता है कि जैनधर्म के द्वितीय तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान के समय में महानदी गंगा के मूल प्रवाह के मार्ग में परिवर्तन किया गया था। पहले गंगा के मूल मार्ग के प्रवाह में एक विशाल नहर को खोदकर उसके पानी को अष्टापदगिरि तक लाया गया था। इसके पश्चात् अष्टापदगिरि से नदी के इस प्रवाह में मोड़ देकर उसे अनेक प्रदेशों से गुजारकर फिर पूर्व समुद्र की और बहा दिया गया। वर्तमान में गंगानदी गंगोत्री से भी पहले गोमुख में से प्रगट होती हुई दिखाई पड़ती है। लेकिन वास्तविकता वह है कि यह गोमुख से भी और उत्तर में गंगोत्री नामक एक हिमनदी हैं, जिसमें से यह जलधारा निकलती है। हकीकत में यही मूल नदी है। यह हिमनदी जिस दिशा से आ रही हो, उस दिशा में यदि और आगे बढ़ा जाए तो संभावना है कि वर्तमान में जो बर्फ से आच्छादित प्रदेश है, उसमें यह अष्टापदजी तीर्थ हों...। जैनशास्त्रों के अनुसार अष्टापदजी तीर्थ भरत चक्री की अयोध्या नगरी से १२ योजन दूर स्थित है। कविराज श्री दीपविजयजी महाराज श्री अष्टापदजी पूजा के पहले चरण की अग्यारहवी गाथा में अपनी गुजराती चतुष्पदी में इस तरह वर्णन किया है... ''आशरे एक लाख उपर रे, गाउ पंचासी हजार रे मनवसीया। सिद्धगिरि छे वेगलो रे, अष्टापद जयकार रे गुणरसिया...।'' इस गाथा के अनुसार श्री सिद्धाचलजी से अष्टापदजी १,८५,००० गाउ दूर है। यहाँ १ योजन की १६०० गाऊ के बराबर या ३६०० मील की दूरी के अनुसार गणना की गई हैं।

संपूर्ण जगत में अनेक प्रकार के पुद्गल के कितने रूपांतर होते है और उसके जो जो आकार पड़ते हैं उस आकारों में मात्र चुड़ी (बंगड़ी) और नलीया के सिवाय सर्व आकारों की मछलीया जैनशासन में मानी गई है, और ये ही बात आज के वैज्ञानिकों के द्वारा सैकड़ो प्रकार की मछलीयों के द्वारा सिद्ध की गई है।

जिन-जिन खलासीयोंने अंटार्कटिक सर्कल की प्रदक्षिणा करने का प्रयास किया, उनके कुछ कथनों को उपयोग पृथ्वी गोल है इस बात को सिद्ध करने के लिए किया जाता है, लेकिन यदि उन कथनों का बारिकी से निरीक्षण करे तो कुछ अलग ही वास्तविकता जानने को मिलती है।

देश भूकंप

देश भूकंप

देश भूकंप

सर्व भूकंप

mtJto Ctqfkvt

सर्व भूकंप

सर्व भूकंप

तो चलिए मेरे प्रिय मित्रों ! आज एक नजर शास्त्रों की दृष्टि से इस तरफ भी देख लेते हैं... **ठाणांग सूत्र-तीसरा अध्याय-चौथा उद्देशा-सूत्र नं. १९८**[१] में पृथ्वी पर भूकंप आने के मुख्य दो प्रकार बताए गए हैं। **(१) देश भूकंप** (अल्पांश में नाश...) **(२) सर्व भूकंप** (सर्वनाश-तबाहि रूप)। तथा यह देश भूकंप और सर्व भूकंप के भी अन्य ३-३ कारण बताए गये हैं अर्थात् यह ३ कारण उपस्थित हों तो देश भूकंप होता है और यह ३ कारण उपस्थित हों तो सर्व भूकंप होता हैं।

देश भूकंप के ३ कारणों में प्रथम कारण - इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे महान् (बड़े) पुद्गलों (पत्थरादि) का विस्त्रसा परिणाम से (स्वभाविक रीत से) जब उपर से पड़ते हैं तब वह बड़े पत्थरादि गिरते हुए पृथ्वी का देश (कुछ भाग) चलायमान होता हैं।

देश भूकंप के ३ कारणों में द्वितीय कारण - महोरग नाम का व्यंतर जाति का देव विशेष बड़ी ऋद्धि वाले महा ऐश्वर्यवाले ऐसे देव अहंकार से इस रत्नप्रभा पृथ्वी के भाग से नीचे से ऊपर जाने रूप अथवा नीचे आने रूप (जैसे चमरेन्द्र अभिमान से १ लाख योजन का रूप विकुरकर ऊपर सौधर्म देवलोक प्रति गमन किया) करता हुआ यह पृथ्वी का देश (कुछ भाग) चलायमान होता हैं।

देश भूकंप के ३ कारणों में तृतीय कारण - नागकुमार और सुपर्णकुमार का (सुपर्णकुमार - जो भवनपति की जातिवाला देव विशेष) जब परस्पर संग्राम करते है तब पृथ्वी का देश (कुछ भाग) चलायमान होता हैं।

सर्व भूकंप के ३ कारणों में प्रथम कारण - इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे सर्वप्रथम घनवायु (घनवात) क्षुभित होता है तब वह घनवात क्षुभित होते हुए उसके ऊपर रहे हुए घनोदधि को क्षुभित करता है और घनोदधि क्षुभित (कंपायमान) होते हुए सर्व पृथ्वी कंपित होती है तब पृथ्वी का संपूर्ण भाग भूकंप का अनुभव करता हैं।

सर्व भूकंप के ३ कारणों में द्वितीय कारण - कोई ऋद्धिमान-महा ऐश्वर्यशाली ऐसा देव कोई साधु (श्रमण) आदि को अपनी ऋद्धि (परिवारादि रूप), द्युति (शरीरादि की कांति), यश (पराक्रम से की गई ख्याति रूप), बल (शरीर का), वीर्य (जीव के द्वारा उत्पन्न की गई जीव की शक्ति विशेष...) और पुरुषार्थ (पराक्रम-अभिमान सहित व्यवसाय और निष्पन्न फलवाला जो अभिमान रूप...) आदि दिखाने के लिए संपूर्ण पृथ्वी को कंपायमान करते हैं... तब सर्व पृथ्वी पर भूकंप का अनुभव होता है।

सर्व भूकंप के ३ कारणों में तृतीय कारण - ज्योतिषनिकाय के ऊपर रहे हुए जो कल्पोपपन्न देवों (अर्थात् १ से १२ देवलोक तक के) और उनके साथ भवनपति अथवा व्यंतर जातिवाले देवों का (असुरों का) जब परस्पर भयंकर युद्धादि (संग्रामादि) करते हों तब वह पृथ्वी सर्व प्रकार से (संपूर्ण रीत से) कंपायमान होते हुए भूकंप का अनुभव करती है।

(१) ठाणांग सूत्र, अध्याय-३ उद्देशा-४ सूत्र-१९८

200

सापेक्षतावाद के सिद्धान्त (थ्योरी ऑफ रिलेटिवीटी) के संशोधन के द्वारा अल्बर्ट आइंस्टाइन ने अपने पूर्व के कई महान् माने जाने वाले वैज्ञानिकों की शोधों को अत्यन्त ही महत्वहीन बना दिया था। न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के नियम भी उनमें से ही थे। आइंस्टाइन ने स्पष्ट कर दिया था कि इस दुनिया में गुरुत्वाकर्षण बल का कोई वजूद नहीं है। बगैर इस गुरुत्वाकर्षण बल के प्रभाव के पृथ्वी किस प्रकार सूर्य के आसपास घूम सकती है इसे सापेक्षतावाद के सिद्धान्त द्वारा समझाने में आइंस्टाइन को पूर्ण सफलता मिली थी। हमें आइंस्टाइन के इस सिद्धान्त को भी अन्तिम सत्य मानने की आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार आइंस्टाइन ने न्यूटन को गलत सिद्ध किया, उसी प्रकार कल आइंस्टाइन को गलत सिद्ध करनेवाला यदि कोई दूसरा वैज्ञानिक उभरता है, तब हम किसे सही मानेंगे ?

।। सुविदितं जगत्स्वभावम् ।।

जगन्ति जगमान्याहुर्जगद् ज्ञेयं चराचरम् । जन्ममरणाय नियतं बन्धुर्दुःखाय धनमनिर्वृत्तये ।
तन्नास्ति यन्न विपदे । तथापि लोको निरालोक : ।।

अर्थः जिसमें पदार्थ प्रति समय नये नये पर्यायों में जाते रहने से जंगम हैं, उसे जगत् कहते हैं। यह चर तथा अचर रूप दो प्रकार का हैं । मुक्त जीव, आकाश, रत्नप्रभादि, मेरु, पृथ्वी, पर्वत, भवन, विमानादि अचर (स्थिर) है तथा अन्य संसारी जीव, तन, धनादि अस्थिर है... चर हैं।

ऐसे जगत् का स्वभाव कैसा ? जन्म के पीछे मृत्यु अवश्य हैं, संम्बध व सगे सर्व दुःखदायक होते हैं। धन अशांति करवाता हैं। जगत् की ऐसी कोई चीज नहीं है जो आपत्ती के लिए न हो । तब भी खेद इस बात का है कि लोगो को इस बात का भान नहीं है, ध्यान नहीं है । यदि उन्हें भान होता तो जन्म, सगे, संबंधी, धन से अर्थात् काया, कुटुंबी व कंचन से उन्हें वैराग्य हो जाता...। काया का जन्म हुआ अतः मृत्यु होती ही है और वह रंग-राग से भयंकर परलोक का सर्जन करती हैं। तो फिर उसकी इतनी अधिक माया और सार-संभाल क्यों ? मौत नहीं आती तब तक उसके पास से भारी तप, त्याग, साधना कर लेनी चाहिए। इसके बदले वह रंग, राग, भोग, आलस व आराम में खतम होकर एक दिन यकायक ही नष्ट हो जाए तो वह कितना दुःखद हैं।

लगता है कि सगे संबंधीयों से सुख मिलता है, पर सचमुच में तो उससे कष्ट, क्लेश तथा आपत्ति ही आती है। सगो के लिए कितने ही कष्टमय धंधे या व्यवहारादि करना पड़ता है। उनके गुस्से होने पर, बीमार पडने पर, या आपत्ति में आने पर अत्यंत दुःख होता है... तो ऐसे कुटुंबीयों पर मोह किस बात का करना ? और किस लिए ?...

वैसे ही धन अशांति उत्पन्न करता है। धन कमाने के लिए, कमाये हुऐ को संभालने के लिऐऔर मित-व्ययता से भोगने के लिऐ मन को कितनी ही चिंता करनी पड़ती हैं। धन के कारण ही मन को अशांति रहती हैं। ऐसे धन पर क्या अन्ध-राग करने लायक हैं ? यदि आपको जो इसका भान हो तो उससे विरक्त होकर उसका सदुपयोग और सर्व त्याग भी हो जाये...। दुनिया की सभी वस्तुएं माल, मेवा, हाट (दुकान), हवेली आदि सभी धन है और वह सब अशांति के लिए होता है।

इसलिए शास्त्रकार भगवंतों का संदेश है कि जो आप इस संसार का स्वरूप पहचान लो तो आपको हृदय में रहा हुआ वैराग्य का दिपक जगमगा उठेगा...।

द्वार - ६

प्राचीन चित्रावली

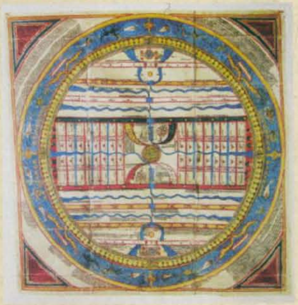

सैंकड़ों वर्ष प्राचीन हस्तलिखित-ताडपत्रीय ग्रंथों में दिये हुए १४ राजलोक एवं उसके अंतर्गत दुसरे पदार्थों संबंधी १०० से अधिक प्राचीन चित्रों का विशाल संग्रह...

श्री श्रुतदेवी भगवती, जे ब्राह्मी लीपी रूप ।
प्रणमे तेहने गोयमा, हुं वंदु सुखरूप ॥

पार्श्व जिणंद नमी करी,
सद्गुरु सीस नमाय ।
चउद लोक भावना कहुं,
सिमरी शारदा माय ॥

तीर्थंकर के उपदेश से, गणधर रचना सार ।
आगम धर्म बताईया, भेद ध्यान के चार... ॥

परम पंच परमेष्ठिमां, परमेश्वर भगवान ।
चार निक्षेपे ध्याइये, नमो नमो श्री जिनभाण ॥

घनघाति कर्म विहिनने,
चौत्रिश अतिशय युक्त छे ।
कैवल्यज्ञानादिक परमगुण,
युक्त श्री आर्हन्त्य छे ॥

ध्याता जास पसाय से,
केवलनाण उपाय ।
सिद्ध बुद्ध परमात्मा,
जन्म मरण मिट जाय ॥

श्री अरिहंतना पाययुगल, प्रणमी परमानंद ।
चौद राज विवरण कहुं, भाख्या वीर जिणंद ॥

३५-३५ वाणी के गुणों से युक्त श्री सर्वज्ञ अरिहंत प्रभु
देव - दानव - मानव एवं तिर्यंचों को देशना देते हुए.....

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद देवो द्वारा समवसरण की रचना....
एवं श्री तीर्थंकर परमात्मा के ३४ अतिशय आदि...

जिनशासन जग सार आनंदभर, जिनशासन जग सार
तीर्थंकर गणधर फरमाया, लोक स्वरूप उदार.... आनंदभर...।।

कर कमरे धरी नर खड़ा, होवे पांव पसार ।
द्रव्य पूर्ण सब लोक का, जानो यह आकार ।।

पुरुषाकृति सह
खण्डुकात्मक
१४ राजलोक

मध्ये एक रज्जु त्रस नाडी, चउदस रज्जु प्रमाणो ।
अनंत अलोकी गोटे विट्यो, मस्तके सिद्ध अहिठाणो...।।

कटि भागे बे कर रह्या, पहोला पाद प्रमाण ।
योजन संख्यातीतमां, लोक क्षेत्र परिमाण ॥
भविकजन... वीरवचन अवधार...

१४ राजलोक
रूप
विश्व व्यवस्था...

ऊर्ध्व अधो तिरछा कहा, लोक मृदंग समान ।
वैत्रासन अरु झल्लरी, क्रम आकार पिछान ॥

काल अनादि शाश्वत जेनो, ज्ञानि कहे अधिकार ।
सकल चराचर वस्तुने जे, निज तनमां धरनार....
चेतन लोक स्वरूप विचार...

स्वरूप आ लोकनुं देखो,
मनुष्यनी आकृति धरतुं ।
भरेलु षड्द्रव्योथी, सुंदर ए भावना भावो... ॥

हवे संठाण विचय सुणोजी, चोथो सार प्रकार । इहां जिनभाषित चिंतवेजी, लोकादिक आकार ।।

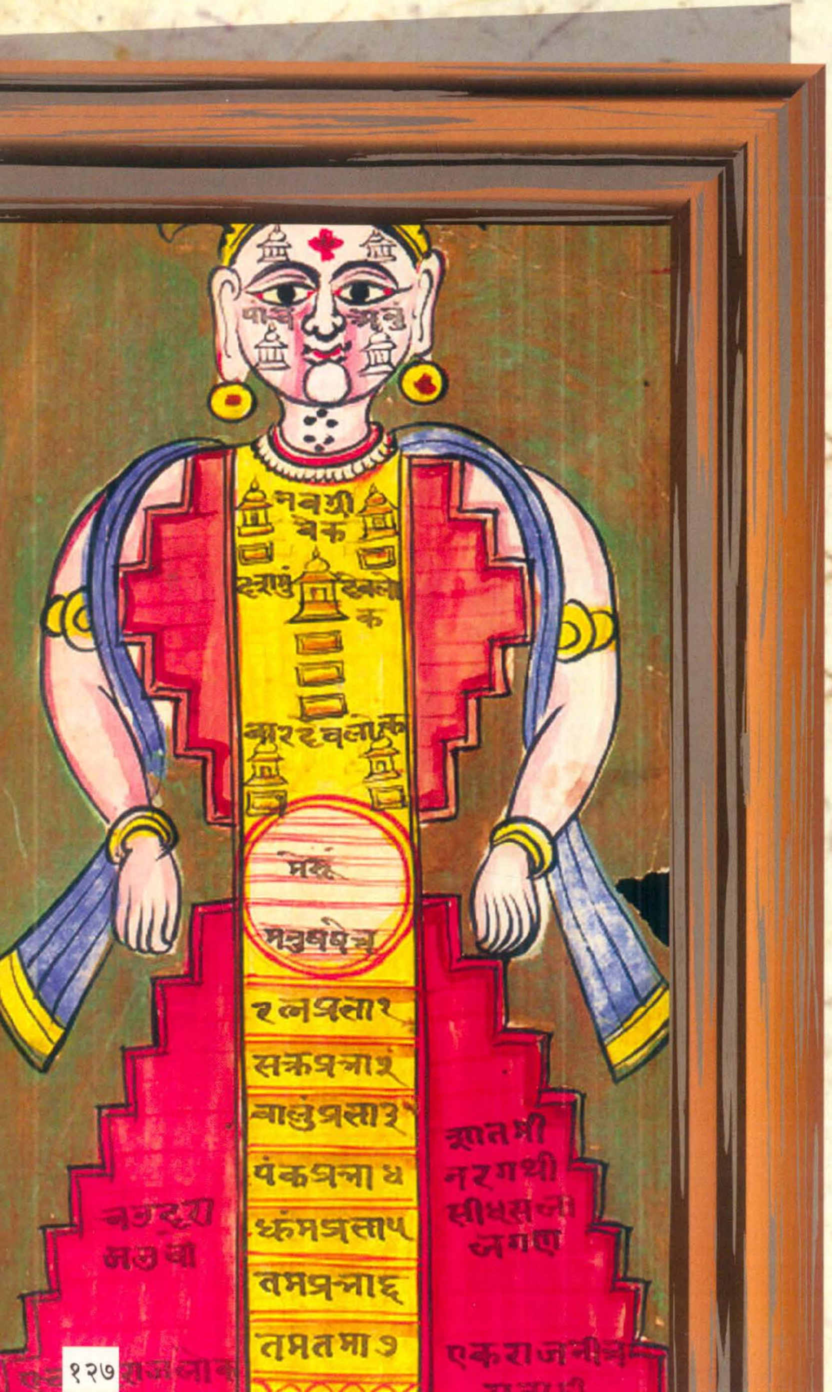

१४ राजलोक में जीव की विग्रहगति एवं वक्रगति स्वरूप दर्शक चित्र...

एक राज की पृथु कही, चउद राज आयाम ।
त्रस जीवों के वास से, त्रसनाडी तस नाम...।।

लोक प्रमुखना जे कह्याजी, संठाणादिक भाव ।
ते चिंतवता जीवनोजी, स्थिर थाय शुभ भाव...।।

१४ राजलोक
अर्थात्
जैन विश्व

अनादिथी छे ए सृष्टि, नथी कोई एहनो कर्ता ।
करम छे तेनो व्यवहर्ता, सुंदर ए भावना भावो... ।।

वैदिक धर्मानुसार विश्व दर्शन...

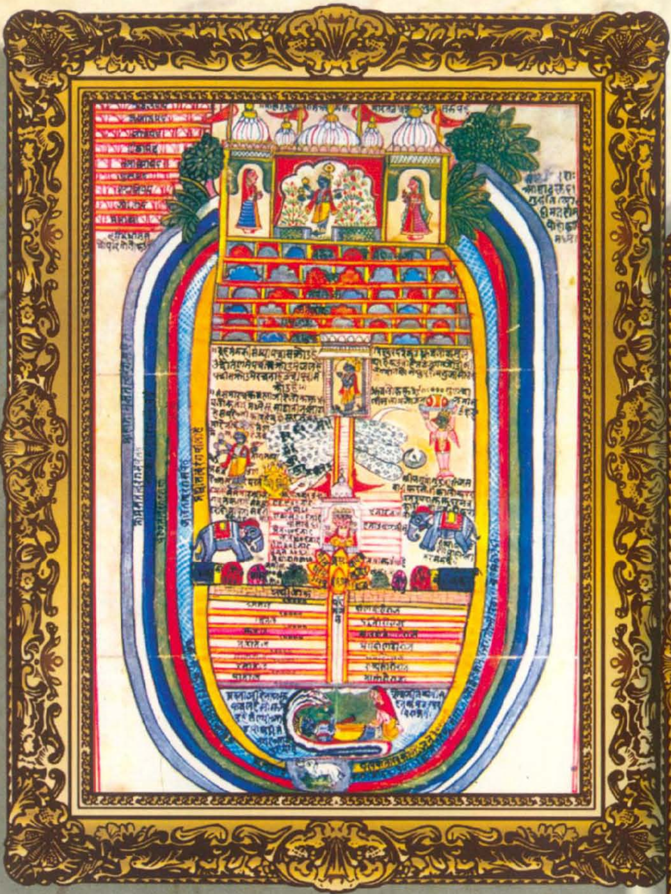

इतर दर्शनों की
मान्यतानुसार लोक (ब्रह्मांड)...

बौद्ध मतानुसार विश्व स्वरूप...

यह है मध्यलोक का मध्यबिंदु रूप केन्द्र स्थान अर्थात् जंबूद्वीप......

पहिलो जंबूद्वीप समे,
विच थाल आकार,
लांबो पहोळो एक लख,
जोजननो विस्तार ।
मोटो तेहने मध्य,
सुदर्शन नामे मेर,
तीणथी दिशा-विदिशानी,
गिनती चारे फेर ॥

जगती सहित जंबूद्वीप एवं लवणसमुद्र....

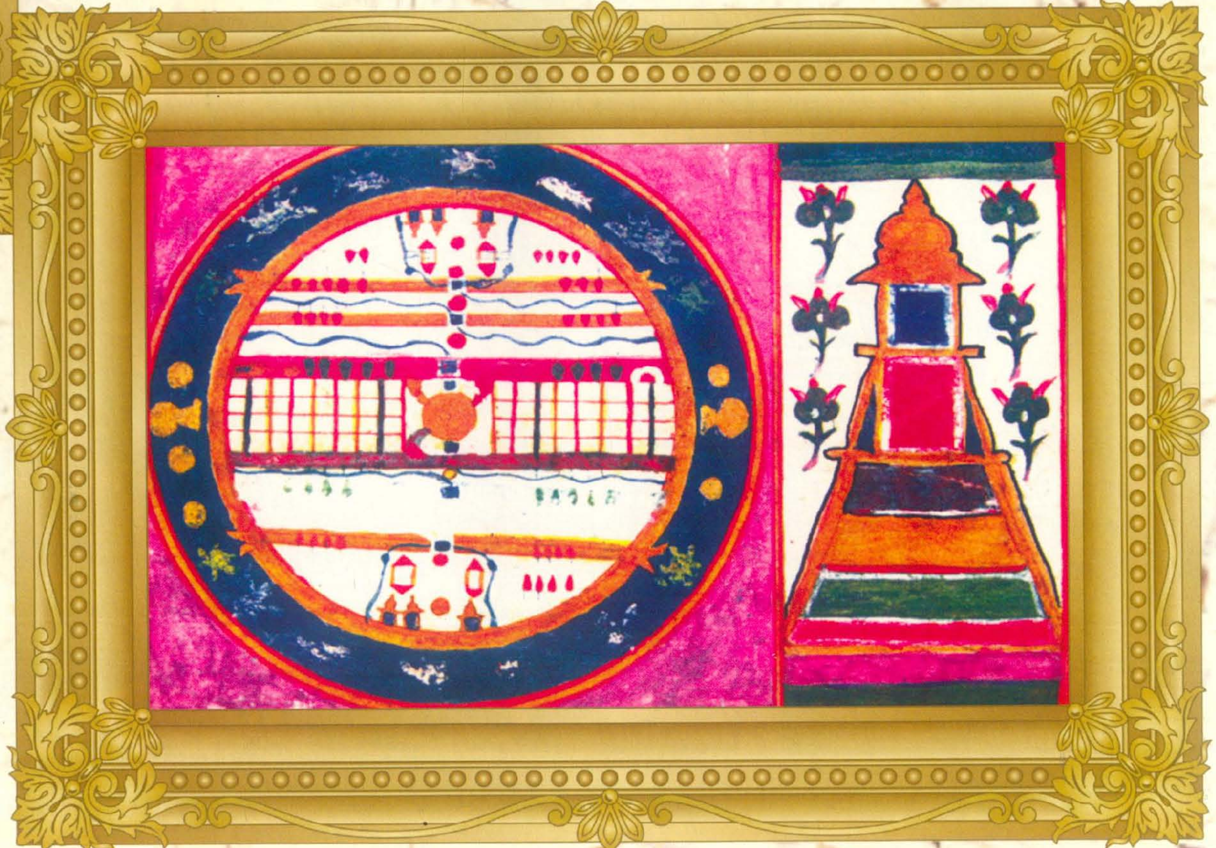

लवणसमुद्र सहित जंबूद्वीप
तथा
उसमे आया हुआ मेरुपर्वत....

जंबूद्वीप के अंतर्गत आये हुए भरतक्षेत्र का एक विहंगम दृश्य...

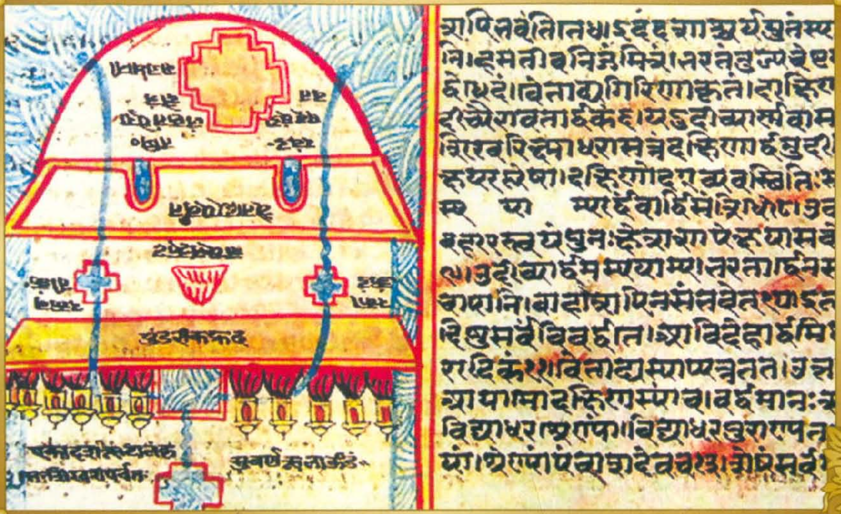

मेरु थकी दक्षिण दिशा यह भरत क्षेत्र,
पांचसे छब्बीस जोयण छ कला तेहनो क्षेत्र,
उत्तरखंडमां एहवो एरावत क्षेत्र कहाय,
इण बिहुं कर्मभूमी, छये आरा फिरता जाय,
आप वस्या महाविदेह क्षेत्रमां, हुं इण भरत मोझार,
आ मेलो केम होशे साहिबा, एहि सबल विचार,...
मारी विनतडी अवधार...

जंबूद्वीप का किल्ला अर्थात जगती....

चक्रवर्ती सम्राट श्री भरत के द्वारा ३ गाऊ की ऊँचाई वाला
सिंहनिषद्या नामक प्रासाद अर्थात्

अष्टापदजी महातीर्थ

श्री अष्टापदजी महातीर्थ

चत्तारि अट्ठ दस दोय, वंदिया जिनवरा चउवीसं ।
परमट्ठनिट्ठिअट्ठा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥

ऊँचा योजन लाख का, एक सहस भू मांहे ।
ऊपर एक हजार का, निचे दस अवगाहे ॥

(मेरुपर्वत पर अभिषिक्त होते हुए बाल रूप में रहे हुए श्री तीर्थंकर प्रभु ....)

मेरु पर्वत

भद्रशाल नंदन तथा, सुमनस पंडक नाम,
चारो वन में चैत्य है, कीजे तास प्रणाम ॥

मेरुपर्वत एवं भद्रशालवन युक्त, ३२ विजयों से शोभित

श्री महावविदेह क्षेत्र

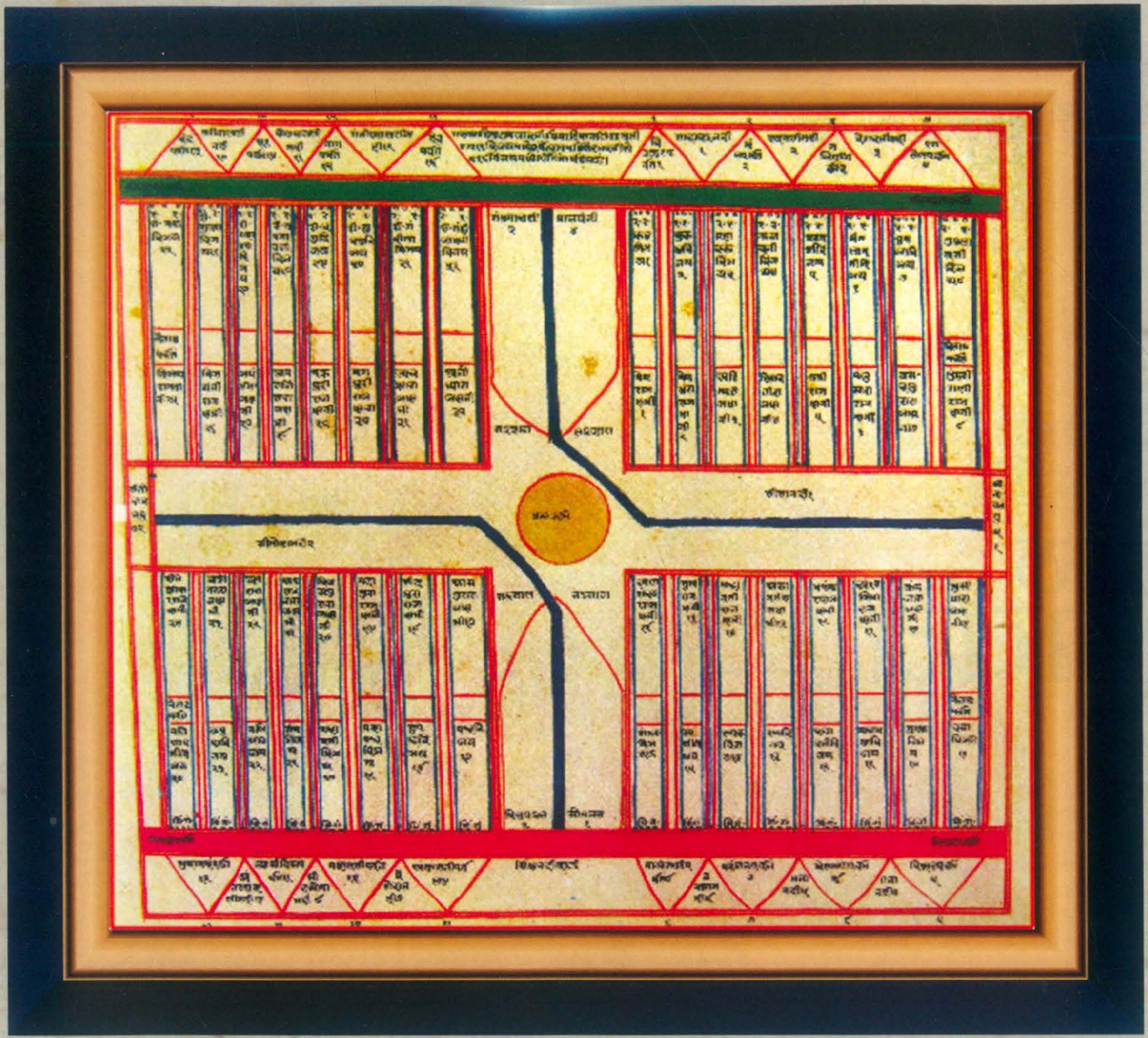

श्री सीमंधरादि वीस, वर्तमान विदेहे ईश ।
उपदेश करे जगदीश, भवि संसार मिटानेवाले ॥

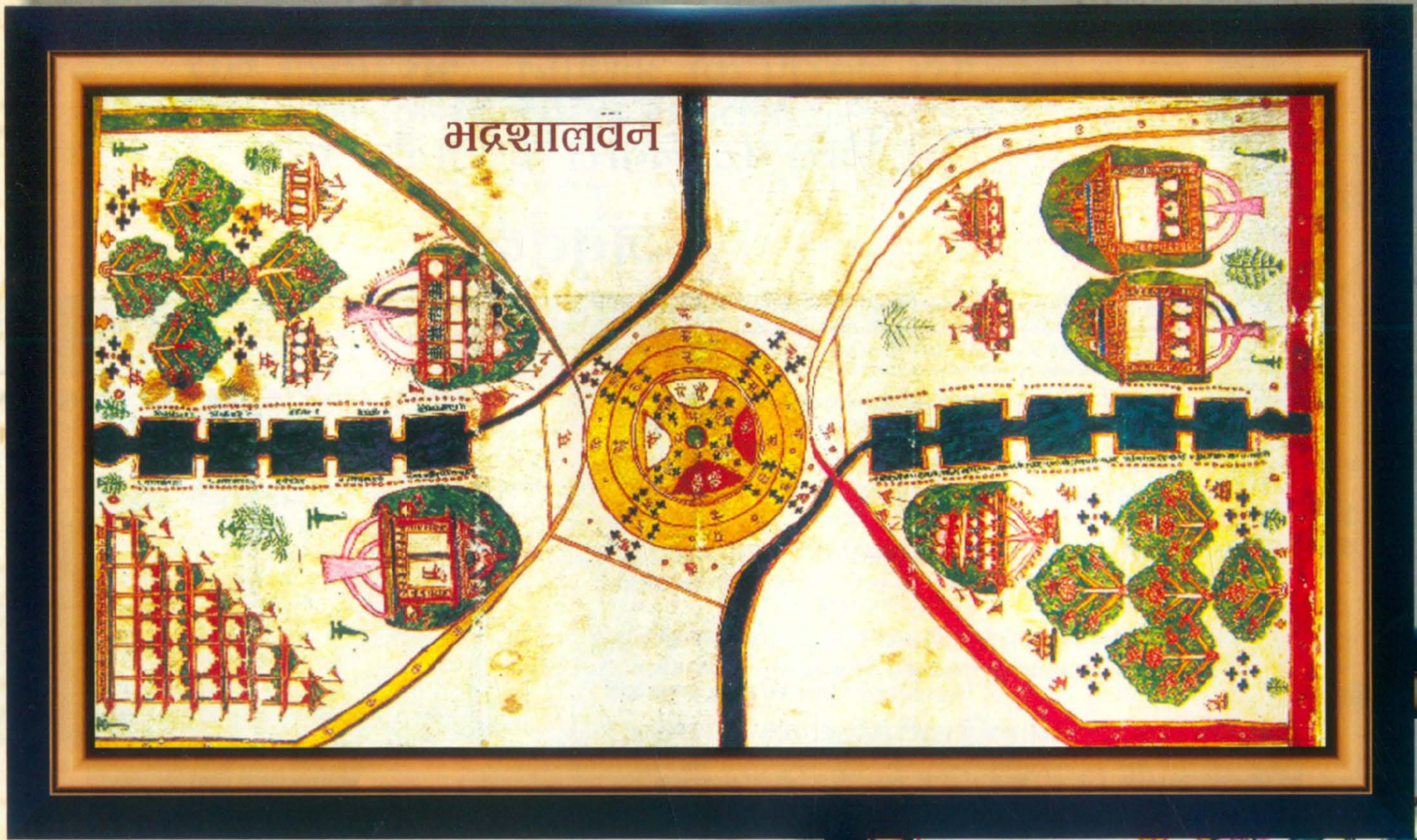

भद्रशालवन पूरव-पश्चिम,
बावीस सहस कहेवाय ।
बस्सें पच्चास दक्षिण-उत्तर,
आवु केणे उपाय ।।
मारी विनतडी अवधारो...

क्षेत्र छे वली आ युगलिया केरो,
उत्तरकुरु इण नाम ।
अग्यार सहस आंठसे बेंतालीस,
बे कला पहोलो सुण स्वाम ।।
मारी विनतडी अवधारो...

इस जंबूद्वीप का अधिपति "अनादृत देव"

जिस पर निवास करता है.....एसा

जंबूवृक्ष

जिसके कारण इस द्वीप का नाम जंबूद्वीप पड़ा

एसे उत्तरकुरु क्षेत्र में रहा हुआ....

जंबूवृक्ष

ऋषभ, चंद्रानन, वारिसेण एवं वर्धमानस्वामी रूप
शाश्वत जिनचैत्यों से मंडित....

जंबूवृक्ष

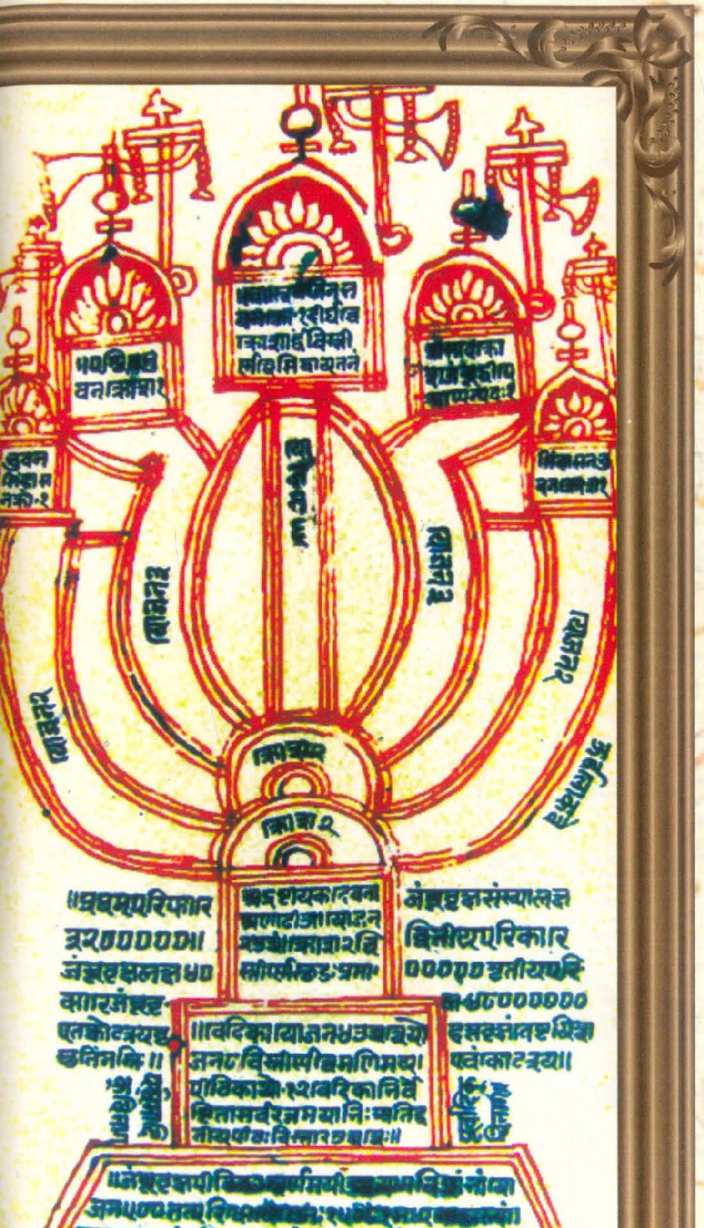

सुदर्शना, अमोघा,
सुप्रबुद्धा, यशोधरा,
भद्रा, विशाला,
सुजाता, सुमना,
विदेहजंबू, सौमनसा,
नियता, नित्यमंडिता,
इत्यादि जिसके
नाम है... एसा

जंबूवृक्ष

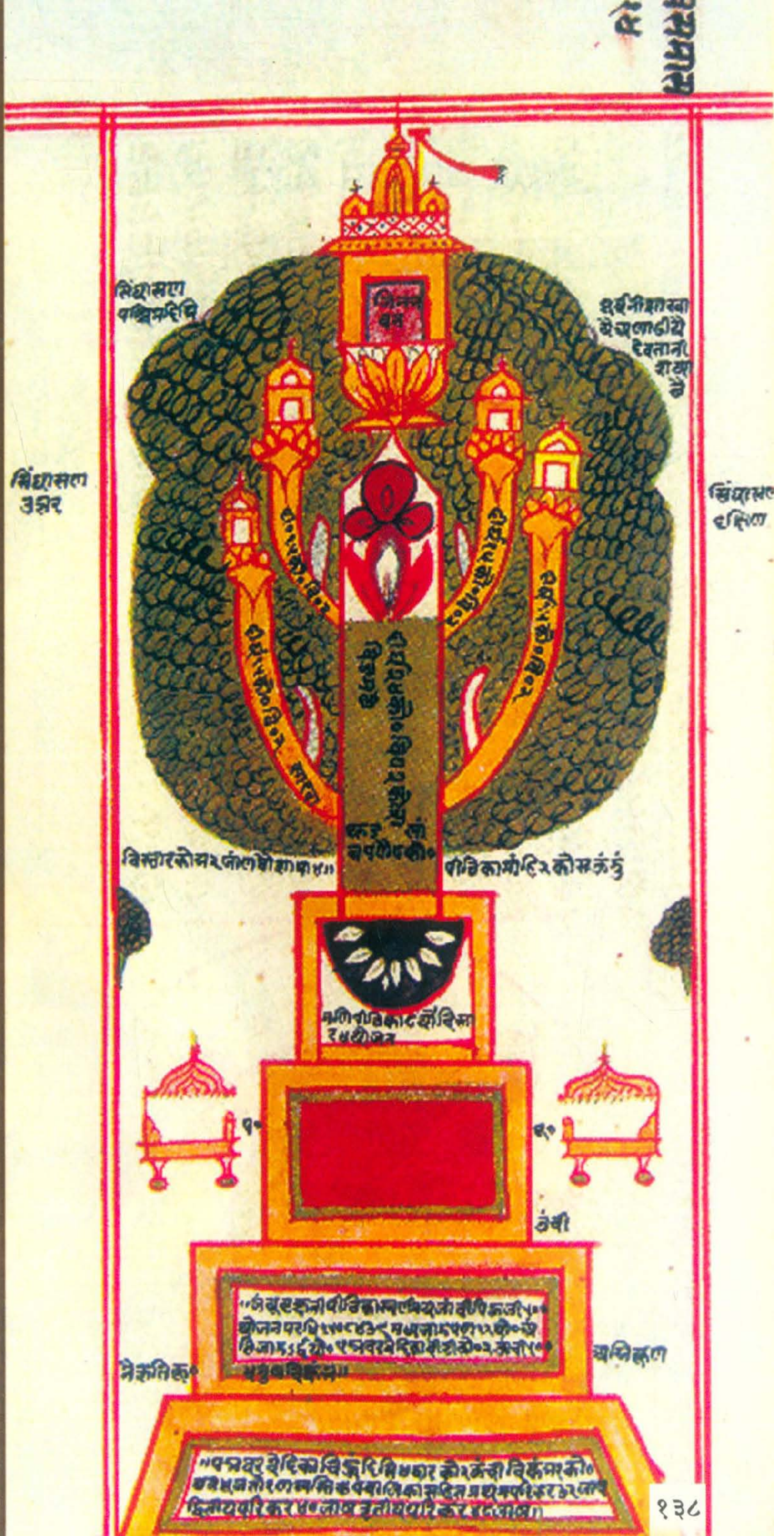

मध्ये जंबूद्वीप है,
जोजन लख विस्तार ।

लणोदधि दो लाख का,
वलयाकृति तस लार....।।

जंबूद्वीप एवं लवणसमुद्र

लवणसमुद्र का
ऊपरी दृश्य

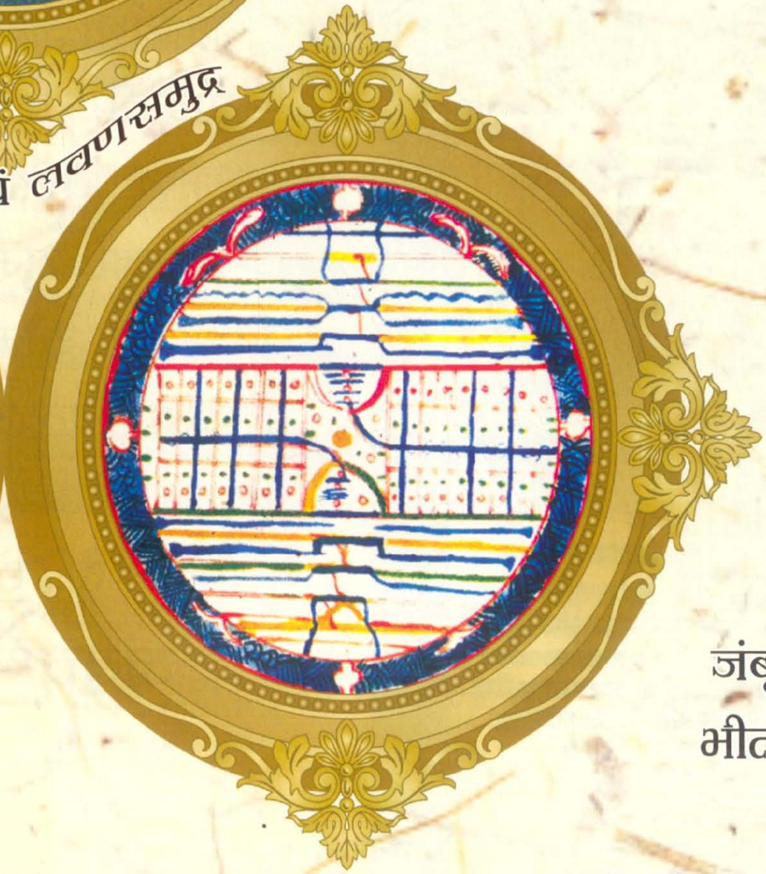

जंबूद्वीप का
भीतरी दृश्य

लवणसमुद्र में आये हुए
४ महापाताल कलश तथा
गौतम-सूर्य-चंद्रादि द्वीपों का अवस्थान....

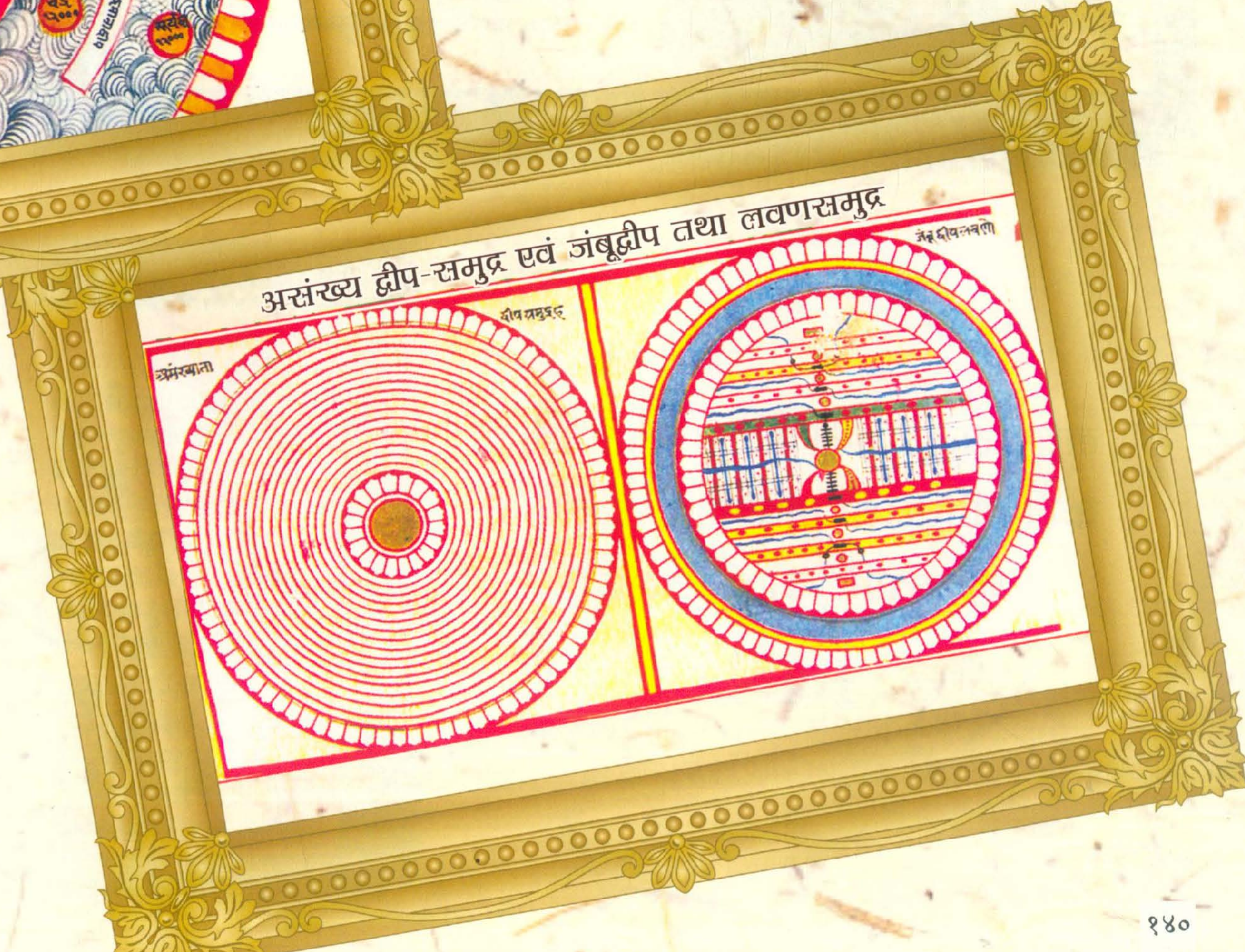

तिरछा द्वीप-समुद्र है,
संख्यातीत उदार ।
समय अढी सागर समा,
ज्ञानी कहे अधिकार ॥

जंबूद्वीप एवं लवणसमुद्र में
आए हुए संपूर्ण पदार्थों
का दृश्यमान

चित्र

लवणसमुद्र अंतर्गत ४ महापाताल
कलशादि तथा लवणादि समुद्रों में
मत्स्यादि का दृश्यमान

चित्र

लवणसमुद्र अंतर्गत
४ महापाताल कलश,
४ वेलंधर पर्वत,
४ सूर्य, ४ चंद्रादि द्वीप
का दृश्यमान

चित्र

लवणसमुद्र अंतर्गत
४ वेलंधर पर्वत,
४ अनुवेलंधर पर्वत
का दृश्यमान

चित्र

लवणसमुद्र में रहे हुए
४ महापाताल कलश
एवं ५६ अंतर्द्वीप

लवणसमुद्र में आए हुए
वेलंधर - अनुवेलंधर पर्वतों सहित
४ महापाताल कलश...

लवणसमुद्र में आए हुए
५६ अंतर्द्वीपों की व्यवस्था
का दृश्यमान
चित्र

लघुहिमवंत एवं
शिखरी पर्वतों में से
नीकलती हुई
५६ अंतर्द्वीप की दाढाए....

रवि शशि दो दो जंबूद्वीपे, लवणसमुद्रे चार ।
कहत है परमात्मा, लगीर न शंका धार ॥

शाश्वत जिनचैत्यों का स्वरूप एवं लवणसमुद्र अंतर्गत सूर्य -चंद्रादि द्वीप

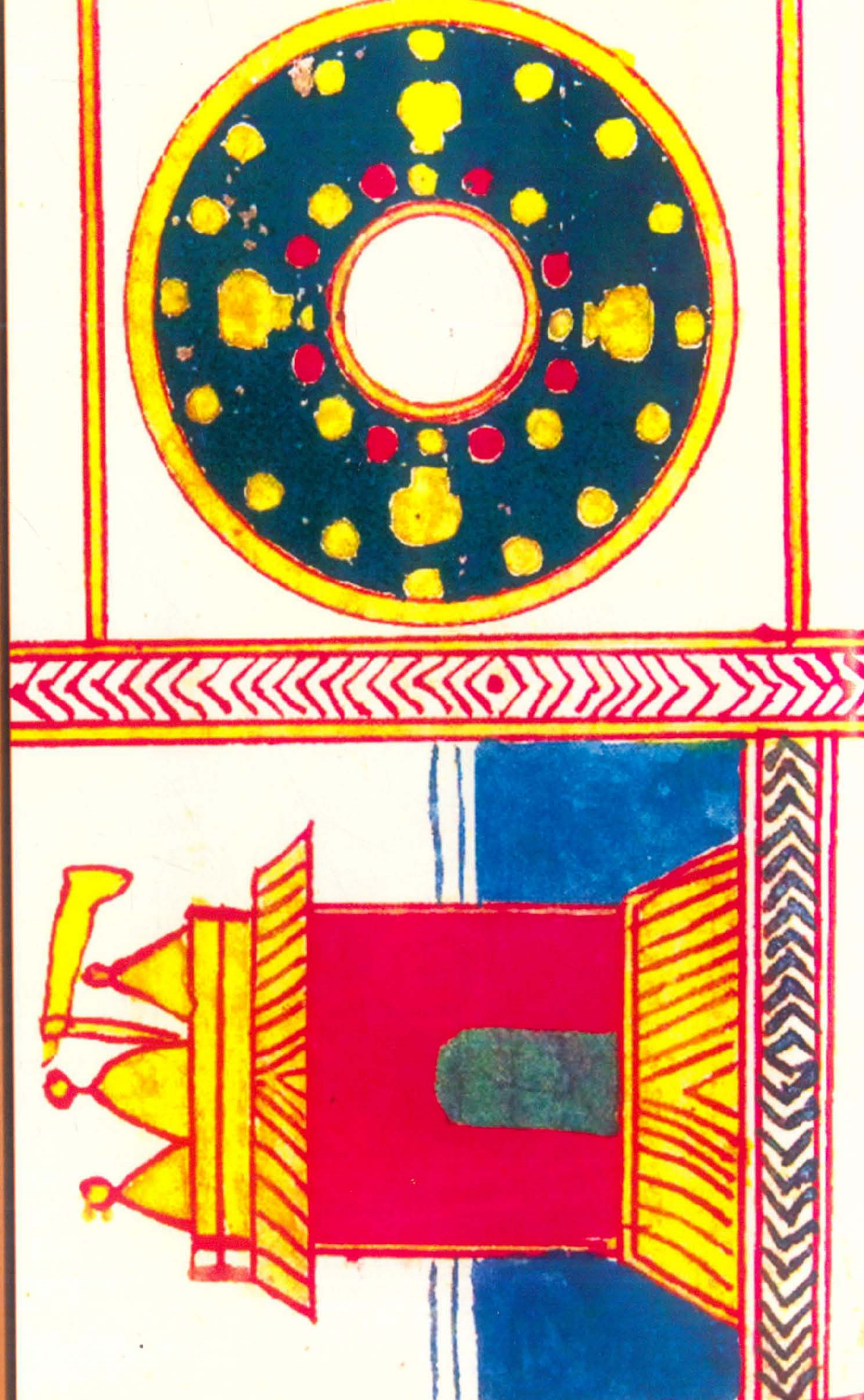

अढाई
द्वीप

पैंतालीस लख योजन,
माणुस क्षेत्र प्रमाण,
वलयाकारे अर्ध-
पुष्कर सीमा जाण,
दोय समुद्रे सोहे,
द्वीप अढाई सार,
तीण में पन्नर
कर्म भूमिनो,
हवे कहुं
अधिकार...।।

अढाई द्वीप

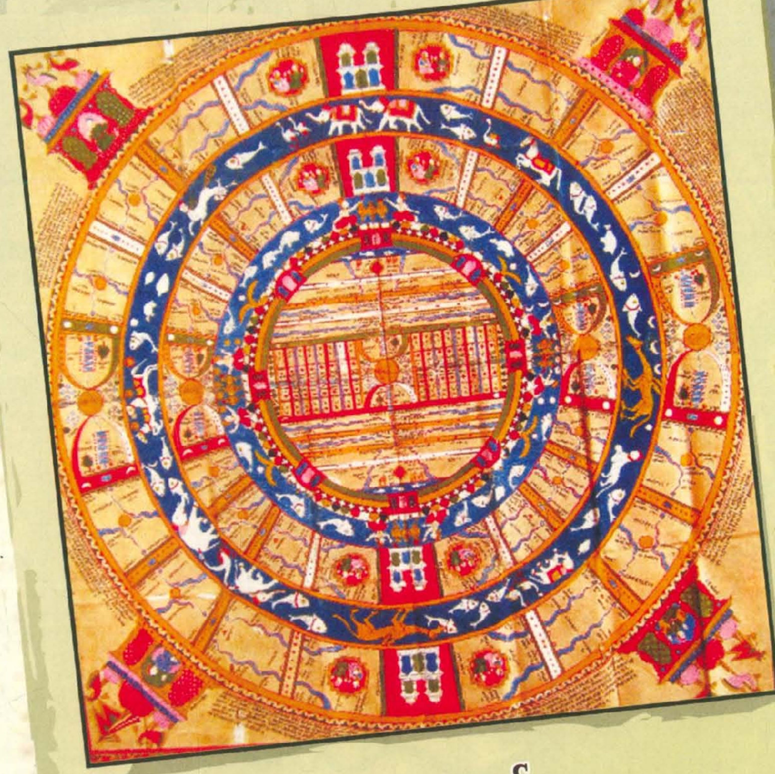

अढाई द्वीप

कालोदधि पेले पारे, वींट्यो चुडी जेम विचारे ।
सोले लख जोयण विस्तारे, द्वीप पुष्करवर अति सुखकारे ।।
सुखकारे पुष्करद्वीप त्रीजो, तेहने आगे वगे । द्वीप पड्यो पर्वत मानुष्योत्तर मनुष्यक्षेत्र तिहां लगे ।।

अढाई द्वीप

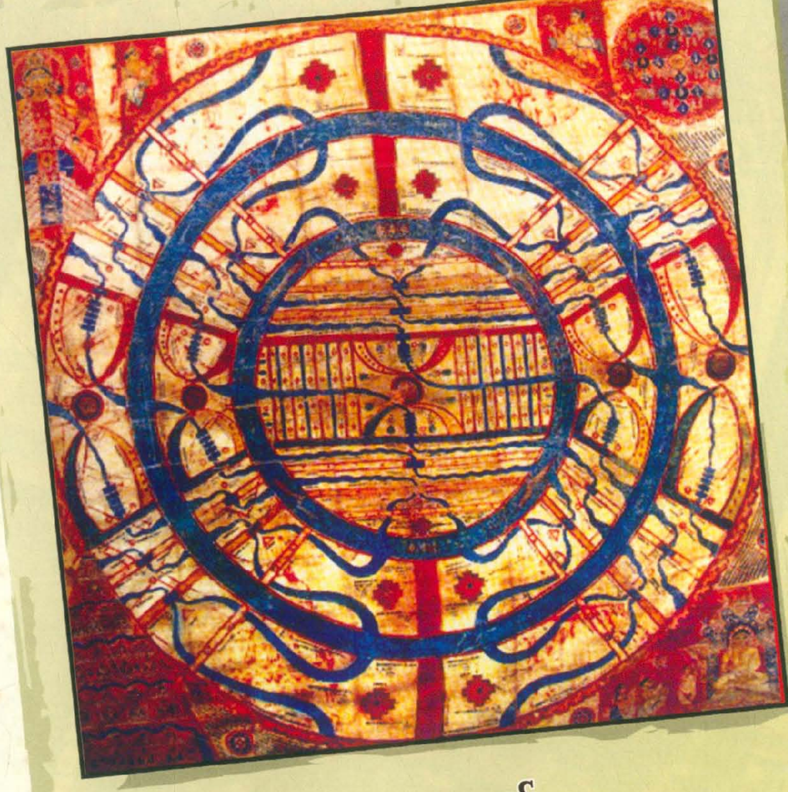

अढाई द्वीप

तिण आध करी अठलाख, जोयण अर्ध पुष्कर एम ए ।
तीहां कर्म भूमि छए कहीजे, धातकीखंड जेम ए ॥

अढाई द्वीप

अढाई द्वीप

अढाई द्वीप

अढाईद्वीप का अलौकिक दृश्य....

प्रमाण से अढाईद्वीप अर्थात् **45,00,000** योजन...

अढाई द्वीप

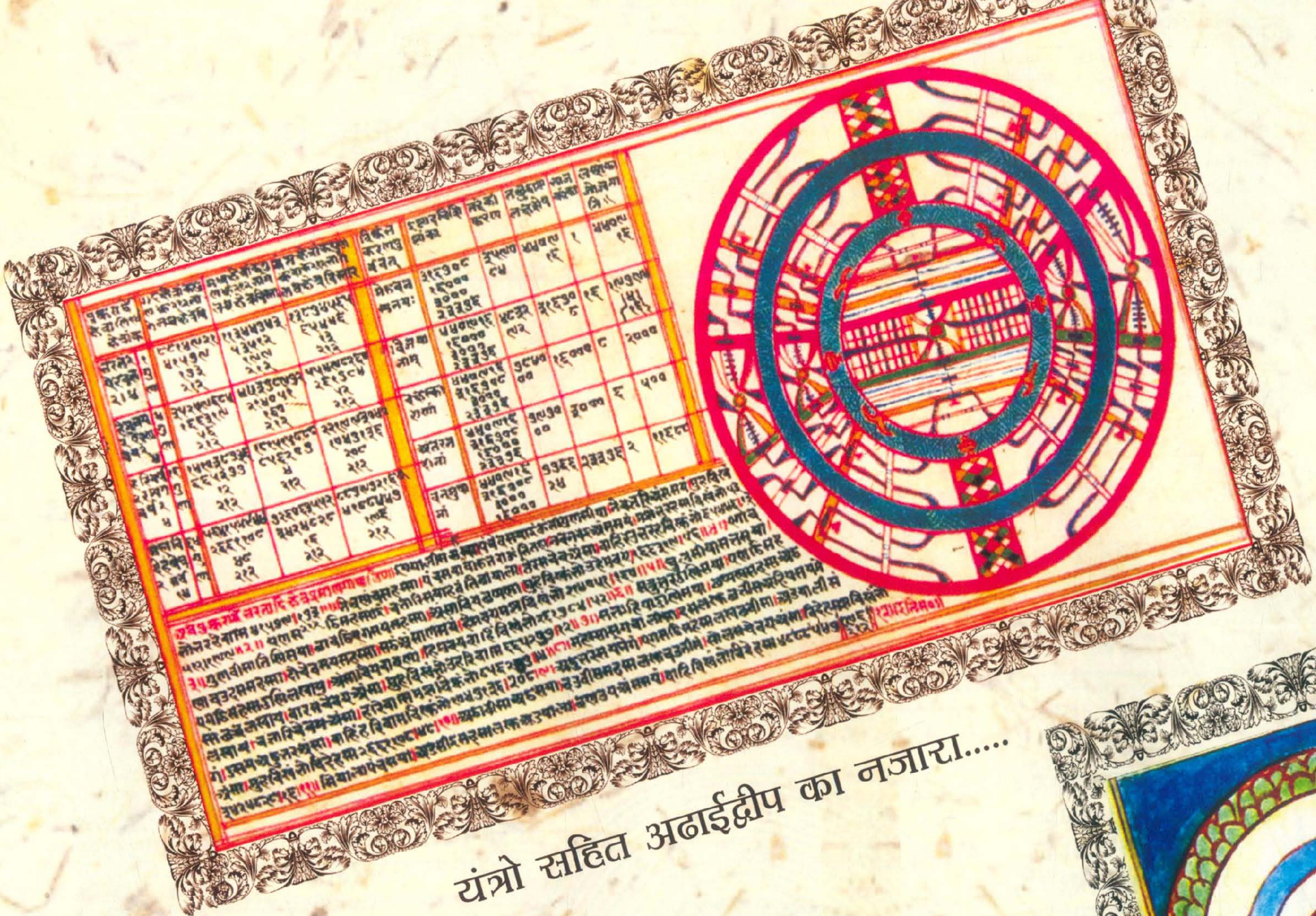

यंत्रो सहित अढाईद्वीप का नजारा.....

प्रमाण से अढाईद्वीप अर्थात् **45,00,000** योजन...

शशी रवि दो दो जंबूद्वीपे, लवण समुद्रे चार ।
धातकी बार कालोदधि कहिये, बेतालीस परिवार...।।

अढाईद्वीप में सूर्य - चंद्रादि की संख्या...

१५ मंडलो में रहा हुआ चंद्र का चरक्षेत्र

ग्रह अठ्ठासी नक्षत्र अडवीस,
कोडाकोडी तार ।
सहस छासठ नवसो पांचोत्तेर,
एक चंद्र परिवार ॥

पुष्कर अर्ध बहुत्तर सब मिल,
इकसो बत्तीस होय ।
चंद्र सूर्य ग्रह नक्षत्र तारा,
ज्योतिष पण विध जोय... ॥

पर्वत दधिमुख सोल है, अंजन पर्वत चार ।
द्वात्रिंशत रतिकर मिलि, बावन चैत्य विचार ।।

नंदीश्वर द्वीप

पूर्व अंजनगिरि शक्र उत्तर में,
ईशानेन्द्र करता ।
दक्षिण-पश्चिम चमर बलिंदर,
उत्सव चित्ते धरता... ।।
द्वीप नंदीश्वर आय सुरासुर,
महा महोत्सव करता... करता...

नंदीश्वर द्वीप में आये हुए चैत्यों का स्वरूप दर्शक दृश्य......

जंबूद्वीप से आठवां द्वीप
नंदीश्वर द्वीप

नंदीश्वर द्वीप

जिन कल्याणक तीन चौमासे, पर्युषणाचरता ।
करी अट्ठाई महोत्सव भावे, पुण्य रमा वरता... ॥
द्वीप नंदीश्वर आय सुरासुर, महा महोत्सव करता.. करता... ॥

द्वीप अरुणवर वेदीसु,
उदधि अरुणवर जाय ।
सहस्र बयाली योजने,
प्रगटे तम अपकाय ।।
अग्यारसो योजन गये तिरछा,
हो जाये विस्तार ।
ब्रह्मलोक जावे सही,
स्वर्ग आवरी चार ।।
प्रतर तीसरा ब्रह्म का,
नाम अरिष्ठ विमान ।
कृष्णराजे दो दो कही,
चार दिशा परमाण ।।
कृष्णराजि के अंतरे,
आठ विमान समाय ।
नवमा मध्ये जाणीये,
लोकांतिक समुदाय ।।
जिन दीक्षा के समय में,
आते ए नव देव ।
जय जय नंदा उच्चरी,
करते प्रभु की सेव... ।।

तमस्काय एवं अष्ट कृष्णराजी

अधोलोक की प्रथम भूमि रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक में ...

१३ प्रतरों में आये हुए अनुक्रम से.. भवनपति आवास व्यवस्था ॥

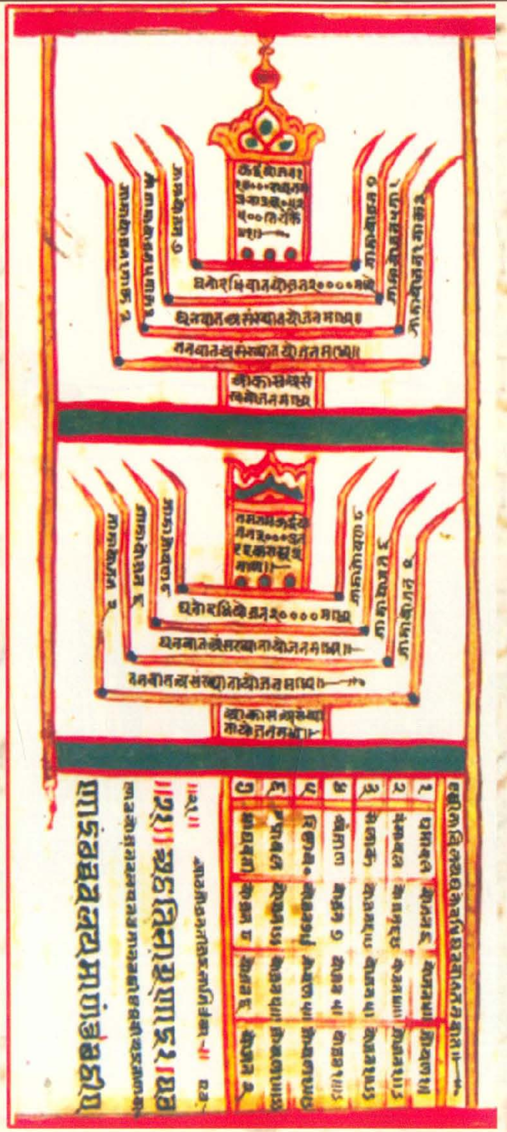

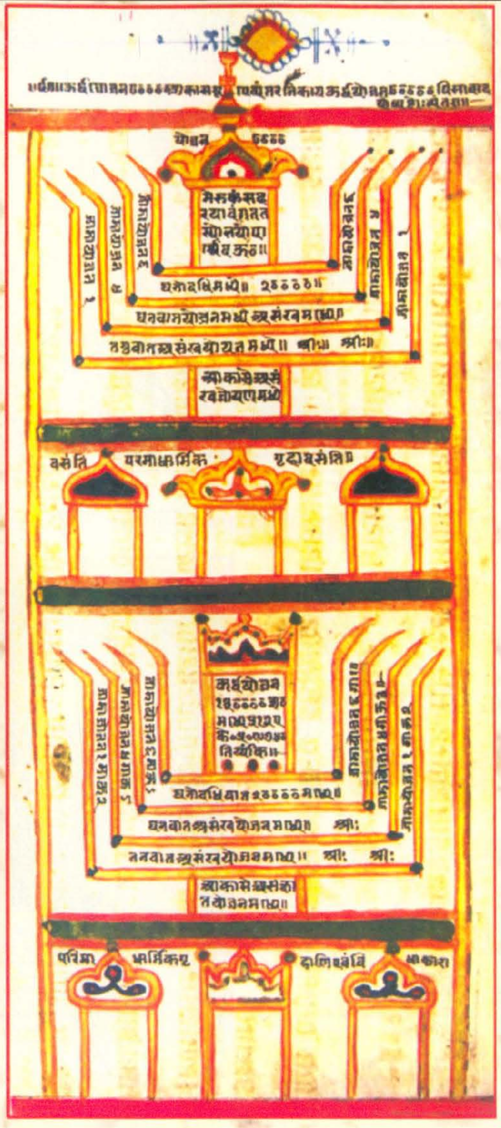

अढाईद्वीप,
१४ राजलोक
तथा
७ नरक रूप
अधोलोक....

सातों नरकों
के
भयंकर दुःख
अनुभवते
नारकी जीव...

१० प्रकार
के
भवनपति
देवों की
आवास
व्यवस्था.....

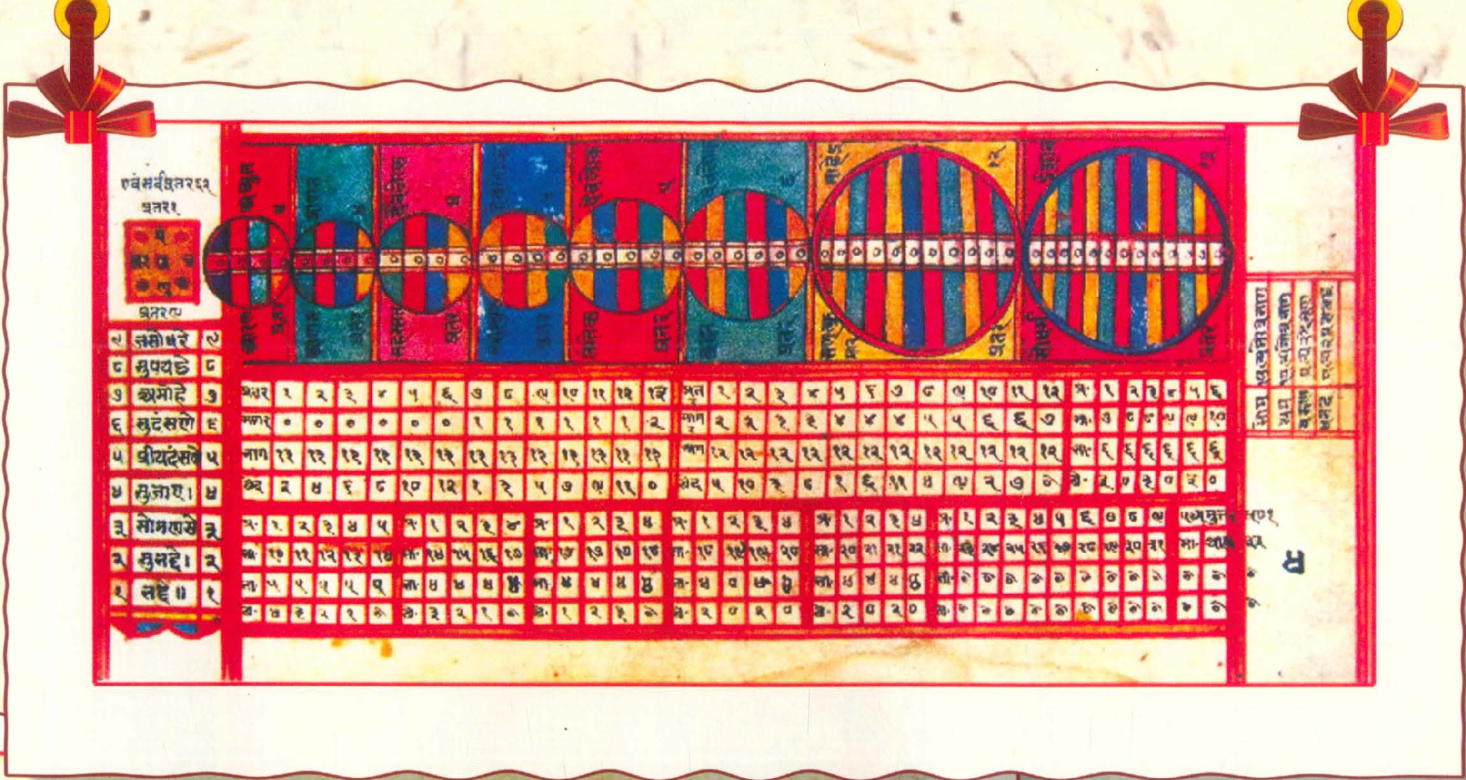

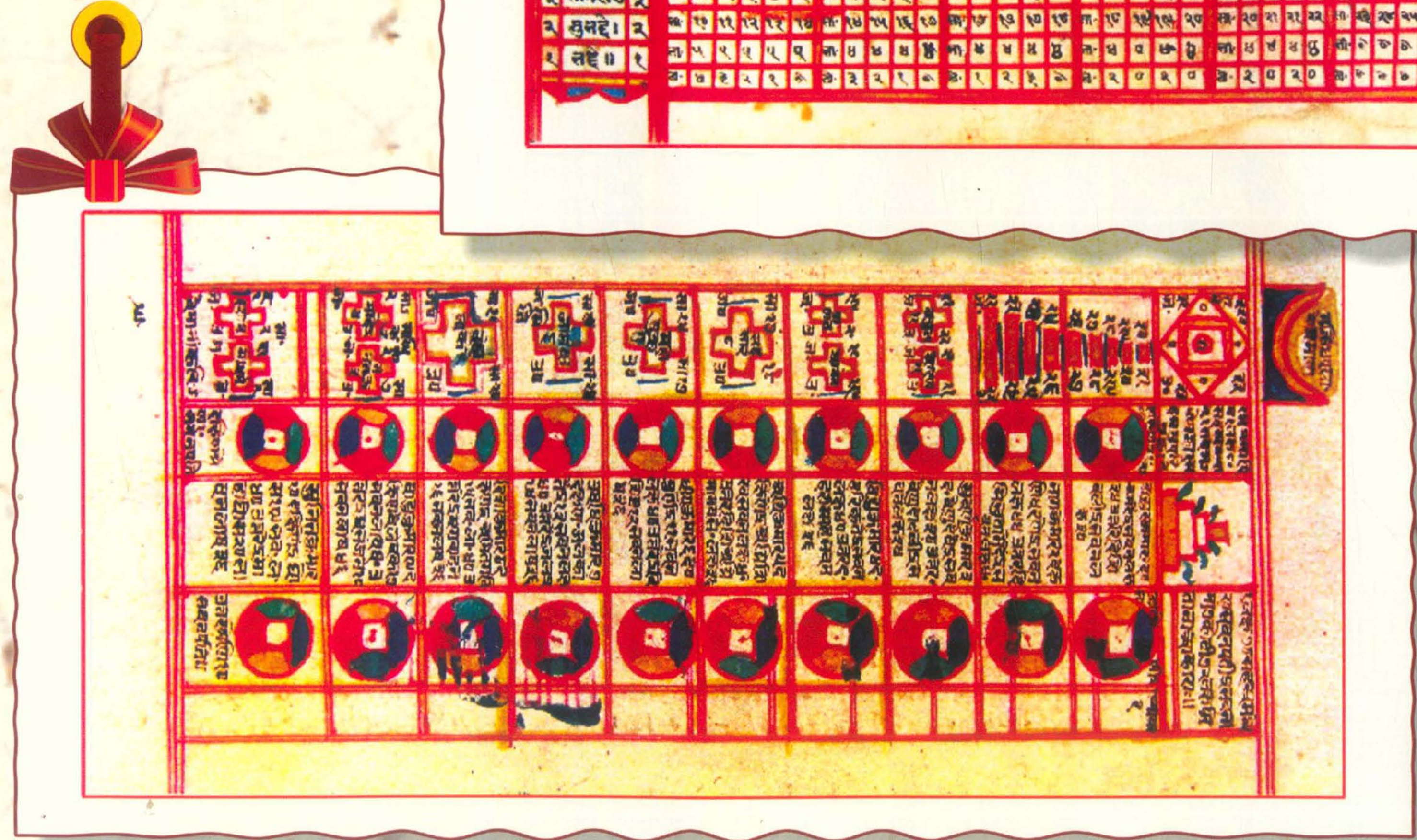

ऊर्ध्वलोक के
१२ देवलोक,
९ ग्रैवैयक
एवं
५ अनुतर विमानों
के कुल
६२ प्रतर...

(ऊर्ध्वदेवलोक का अनुपम दृश्य)

१२ देवलोक, ९ ग्रैवैयक एवं ५ अनुतर विमान एवं
सिद्धशिला पर बिराजीत सिद्ध परमात्मा....

लेश्या स्थिति दिप्ति सुख ज्ञाने, एक से एक सवाया ।
मान ममत्वे हीना हीना, क्रम से सर्व मनाया ॥

अनुत्तरवासी देव

अपूर्व स्वर्ग का वर्णन,
जिनेश्वर देव फरमावे ।
अनुत्तर देव द्वि चरमां,
एक चरमां पंचम थावे ।।

विजय और विजयंत है,
जयंत अपराजित ।
सरवारथ सिद्ध पांच ए,
सम्यगदृष्टि पुनीत ।।

अनुत्तरवासी देव

(१) समचतुरस्र

(२) न्यग्रोध

(३) सादि

(४) वामन

(५) कुब्ज एवं

(६) हुंडक

रूप ६ संस्थान......

चक्रवर्ती के

सात पंचेन्द्रिय रत्न

एवं

सात एकेन्द्रिय रत्न.....

मधुबिंदु का दृष्टांत

नगारा वागे माथे मोतना रे,
तु निश्चिंत थई केम सूतो रे ।
मधुबिंदु सुखनी लालचे,
संसार कीचडमां तु केम खूच्यो रे ॥

छः लेश्या का भाव

परम पूज्य वाचकवर्य श्री उमास्वातिजी महाराजने कहा हैं कि... (१) राग (२) द्वेष और (३) मोह... इन तीन कारणो से ही असत्य बोला जाता हैं । परन्तु सर्वज्ञ परमात्मा में तो इन तीन कारणो में से एक भी कारण का अस्तित्व है ही नहीं, अर्थात् सर्वज्ञ परमात्मा का एक-एक वचन सौ टंच के सोने जैसा शुद्ध, सत्य और यथार्थ हैं, तर्क की परीक्षा में भी उत्तीर्ण हैं, पूर्वापर अबाधित और प्रमाण-नय से परिपूर्ण हैं।

इसलिए तार्किक पुरुषों का उद्‌गार है की... ''तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहिं पवेइयं...'' अर्थात् जो सर्वज्ञ पुरुषो द्वारा प्ररूपित है वही निशंक एवं सत्य हैं और इसलिए अन्य समस्त धर्मो से भी सर्वज्ञ कथित धर्म की महानता एवं शिरमोरता दुनिया में देखी जाती हैं।

इन सर्वज्ञ भगवंतों के वचनों का रसास्वाद प्राप्त करने का और इनपे न्योछावर हो जाने का एक सुंदर उपाय अर्थात्

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE

सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

इस ग्रंथ में सर्वज्ञ परमात्मा के द्वारा बताये गये अनेक अद्‌भुत पदार्थो का सुंदर संग्रह हैं... उसके उपरांत...

- अनेक धर्मो के साथ तुलना...
- अनेक धर्मो के विविध मंतव्यों का सुंदर निरूपण...
- कितनेक धर्मों की तर्कबद्ध समीक्षा...
- ''पृथ्वी गोल नहीं हैं'' उसकी सिद्धि के लिए १०१ प्रमाणादि...
- अनेक ग्रंथों के साक्षी पाठों सहित पदार्थ निर्देश...
- विविध पदार्थों का सुंदर निरूपण... इत्यादि...

ऐसी अनेकानेक विशेषताओ से सभर प्रस्तुत ग्रंथ का सौंदर्य... जिज्ञासुओ को अत्यंत आह्लादित कर देगा... और सर्वज्ञ परमात्मा के ऐसे अतीन्द्रिय पदार्थ विषयक ज्ञान पर फिदा-फिदा कर देगा... क्या आपको भी करना है ऐसा अनुभव... तो तो आज ही और वो भी अभी से पढ़ो... **The Real Universe (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड...)** के एक एक विषयो को... इन निर्मल पदार्थो के ज्ञान से मन भी निर्मल होकर ही रहेगा...

तो चलिए ! मेरे प्रिय मित्रो ! अब चलते हैं **(PART-4)** ''परिशिष्ट'' की सफर मैं...

please one minute

जिनशासन के साहित्यावकाश में सर्वप्रथम बार
श्री जिनगुण आराधक ट्रस्ट की और से...
जैन विज्ञान से संदर्भित पठनीय-मननीय-संग्रहणीय...

एक विराट ग्रंथ

सचित्र विज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE JAIN SCIENCE
सर्वज्ञ कथित विज्ञान

COMING SOON
COMING SOON
COMING SOON

પ.પૂ. મુનિરાજ શ્રી ચારિત્રરત્નવિજયજી મ.સા. દ્વારા સંપાદિત - સંયોજિત - સંકલિત ગ્રંથાવલિ......

વાંચશો તો નાચશો... **જૈનશાસનના આંગણે...** ચુકશો તો પસ્તાશો...

એક અણમોલ ગ્રંથનું ભવ્ય આગમન

સચિત્ર તત્વજ્ઞાનનું નવલું નજરાણું ILLUSTRATED

JAIN COSMOLOGY

સર્વજ્ઞ કથિત વિશ્વ વ્યવસ્થા

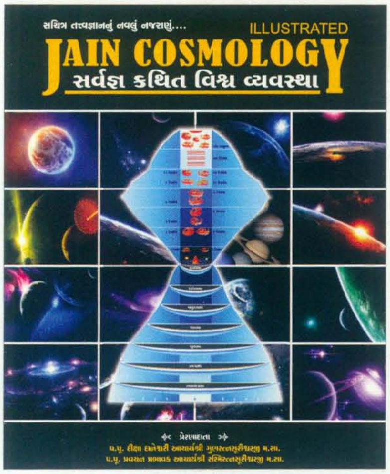

- શું તમે જાણો છો... પૃથ્વી દડા જેવી ગોળ છે કે થાળી જેવી ગોળ છે ?
- શું તમે જાણો છો... પૃથ્વી સ્થિર છે કે ફરે છે ?
- શું તમે જાણો છો... કે બ્રહ્માંડની ઉત્પત્તિ Big Bang માંથી થઈ છે? કે કોઈ અન્ય કારણોથી?
- શું તમે જાણો છો... સમુદ્રોમાં ભરતી-ઓટ શા કારણે આવે છે ?
- શું તમે જાણો છો... કે પૃથ્વી પર ભૂકંપો શા માટે સર્જાય છે ?
- શું તમે જાણો છો... કે આ વિશ્વ ૭ દ્વીપ સમુદ્રવાળો છે કે અસંખ્ય દ્વીપ સમુદ્રવાળો ?
- શું તમે જાણો છો... કે આ વિશ્વમાં ઉર્ધ્વલોક-અધોલોક વગેરે ક્યાં આવેલા છે?

આવા સૈંકડો સવાલોનો જવાબ આપતો જૈનશાસનનો એક અણમોલ ગ્રંથ એટલે જ...

સચિત્ર તત્વજ્ઞાનનું નવલું નજરાણું ILLUSTRATED

JAIN COSMOLOGY

સર્વજ્ઞ કથિત વિશ્વ વ્યવસ્થા

:: ગ્રંથની વિશેષતા ::

- ગુજરાતી ભાષામાં અને ૫૨૦ પાનાઓમાં તૈયાર થયેલ
- જૈન ધર્મ સંબંધી ભૂગોળ-ખગોળાદિની સચિત્ર માહિતી...
- જૈન ધર્મ સંબંધી ૧૦૮ વિષયોના વિશિષ્ટ લેખો...
- દરેક લેખોને સમજાવવા માટે પાને પાને ૨૦૦ જેટલા ચિત્ર (Picture) નો વિશાલ સંગ્રહ...
- ૧૫૦ થી વધારે આગમ-પ્રકરણાદિ ગ્રંથોનો આધાર
- ૧૦૦ પાનાઓમાં તૈયાર થયેલ દળદાર "જાણવા જેવી ભૂમિકા"
- ૬૮ જેટલા પ્રાચીન ચિત્રોની પ્રતિકૃતિઓનો વિશિષ્ટ સંકલન
- તારાતંબોલ જેવી અપ્રાપ્ય નગરીનો ઉલ્લેખ...
- પૃથ્વી દડા જેવી ગોળ નથી અને ફરતી નથી... તેના ૧૦૧ પુરાવાઓથી સભર... ઈત્યાદી ઘણુ બધુ...

આ તો માત્ર ઝાંખી છે...
ગ્રંથ વાચવાનો બાકી છે...

: શુભાજ્ઞા આશીર્વાદ :

પ.પૂ.ગચ્છાધિપતિ આ.શ્રી જયઘોષસૂરીશ્વરજી મ.સા.

: પાવન પ્રેરણા :

પ.પૂ.દીક્ષા દાનેશ્વરી આ.શ્રી ગુણરત્નસૂરીશ્વરજી મ.સા.
પ.પૂ.પ્રવચન પ્રભાવક આ. શ્રી રશ્મિરત્નસૂરીશ્વરજી મ.સા.

: સંશોધક :

પ.પૂ.પંન્યાસ શ્રી મેઘદર્શનવિજયજી મ.સા.

: સંપાદક :

પ.પૂ.મુનિરાજ શ્રી હીરરત્નવિજયજી મ.સા.ના શિષ્યરત્ન
પ.પૂ.મુનિરાજ શ્રી ચારિત્રરત્નવિજયજી મ.સા.

:: કાયમી પ્રાપ્તિ સ્થાન ::
સંપર્ક સૂત્ર
અરૂણભાઈ (સાબરમતી)
૯૪૨૭૫ ૨૨૧૦૧, ૯૪૦૮૨ ૫૨૨૦૧

મૂલ્ય : ૩૫૦/-

: પ્રાપ્તિસ્થાન :

અમદાવાદ	પાલીતાણા	શંખેશ્વર	ભાયંદર	થાને
શાહ બાબુલાલ સરેમલ 'સિધ્ધાચલ' સેન્ટ એસ સ્કુલની સામે હીરા જૈન સોસાયટી, સાબરમતી અમદાવાદ - ૩૮૦૦૦૫. ૯૪૨૬૫ ૮૫૯૦૪ ૦૭૯ - ૨૨૧૩૨૫૪૩ ૦૭૯ - ૨૭૫૦૫૭૨૦	સુઘોષા કાર્યાલય સોમચંદ ડી. શાહ તળેટી રોડ, પાલીતાણા મો. ૦૯૮૯૮૩૩૨૨૪૫ (મુકેશભાઈ)	વંદના બુક સ્ટોર્સ યાત્રિકભવન પાસે, શંખેશ્વર (ગુજ.) મો. ૦૯૩૭૪૧૬૯૬૧૮ ૦૯૪૨૯૨૯૭૭૪૦ ૦૯૯૦૪૭૮૬૯૬૨	ચેતનભાઈ એચ. મહેતા A/303, પવનકુંજ, નાકોડા હોસ્પીટલની બાજુમાં, ૬૦ ફીટ રોડ, ભાયંદર (વેસ્ટ) ૯૮૬૭૦ ૫૮૯૪૦ ૦૨૨-૨૮૧૪૦૭૦૬	માંગીલાલજી પારેખ નાકોડા કિચેશન દુકાન નં-૧, ક્ષીરસાગર એપાર્ટ., માલતીબાઈ હોસ્પીટલની સામે, સેન્ટ જહોન સ્કુલ રોડ, થાને, (વેસ્ટ) (M)૦૯૭૭૩૩૨૫૫૦૩,(M)૦૯૩૨૪૨૮૬૪૮૧ (O)૦૨૨-૨૫૩૦૯૬૫૫

- जो आगमों के अर्थ-भावना-परमार्थ को यथार्थ रूप से बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो आश्रितवर्गों में दोषों का निकास एवं गुणों का विकास कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जड वस्तुओं के प्रति अखंड वैराग्यवान् बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जीवमात्र के प्रति ''सवि जीव करु....'' की भावना धराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संघ + शासन पर आती आपत्तिओं के लिए लालबत्ती बने उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पुण्याई और प्रभुता का सुभग समन्वय कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सर्व गुणों में प्रधान गुर्वाज्ञाकारी बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पंचविध मिथ्यात्व से सदा मुक्त कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो उपशम-उपकरण एवं स्थिरहस्तलब्धि के धारक बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो प्रतिदिन परोपकार करने के व्यसनी बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो स्वस्वार्थ गौण कर परार्थ करने के कोड जगाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो महापुरुषों के आदर्शों को सामने लाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सर्वतोमुखी सिद्धि के स्वामी बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अकाट्य तर्कशैली से लोको के शंसयों को तोड़े उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो हरहंमेश वीतराग भाव प्राप्त करने की इच्छा प्रगटाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सर्व समस्याओं का समाधान दिलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो प्रतिकुलता में भी प्रसन्नता बढ़ाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जीवनपर्यंत द्रव्य / भाव समाधियुक्त जीवन बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो आत्मा के हित की अपेक्षा रखे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो आत्मा के अहित की उपेक्षा करे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अप्रमत्त भाव से पठन-पाठन में लीन बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सेवा-समर्पण का प्रतिदिन योग कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो उन्मार्ग में स्थित लोगों को सन्मार्ग में लाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो परमात्मा का सिद्धांत समझाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो विविध विषयो के मोह रूप झेर को उतारे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो तारक तत्त्वों तरफ रुचि उत्पन्न कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान

- जो शाश्वत सुखों की प्राप्ति तरफ लक्ष कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संसार में महेमान बनकर रहना सिखाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो हृदय में व्रत और मुख में अमृत लाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संपूर्ण पापो की उपेक्षा कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो एक मात्र मोक्ष के प्रति ही अपेक्षा कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो विरति में सफल और भक्ति में पागल बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो शोक संताप रहित अनंत सुख का मालिक बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो कठोर वचन के त्याग से सर्वजीवों को वश कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो कृतघ्नता नाशक और कृतज्ञता धारक बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो शारीरिक और आत्मिक आनंदता के लिए सामर्थ्यता धराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो आत्मा को परमात्मा बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सर्वजीवों प्रति दोष दृष्टि छोडाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो गृहपाश को छोड़ गुरुपाश से बंधाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो नास्तिकों को आस्तिक बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो आश्रव के रोधक और संवर के चाहक बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अंत समय तक समाधिभाव रखाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो दुःखमय अगारभाव (संसार) को छोडाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सुखमय अणगारभाव (संयम) को दिलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अमोघ गुरुकृपा को प्राप्त कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मूर्तिपूजा के द्वेषीयों को मूर्तिपूजक बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो चार निक्षेप से भव्य जीवों को तारे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जिज्ञासुवृंद की ज्ञानपिपासा को तृप्त कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सकल चतुर्विध श्री संघ की आराधना की अनुमोदना कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो देव-गुरु की भक्ति में विशिष्टशक्ति दिलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो परलोक एवं परमलोक तरफ दृष्टिपात कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान

- जो बाह्यभावों में विरागता के साथ आभ्यंतर भावो में लीनता लाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जीवन की साधना में सफल बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जीवकरुणा और जातकठोरता का आदर्श जीवन बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संयम और तप का मधुर मिलन कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो ज्ञान और क्रिया का सुभग समन्वय कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो भक्तिराग और विषयविराग की प्रधानता बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो गुरुविनय और शिष्य वात्सल्यता बढाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो प्रकृष्ट मेघा और भावनाशील उर्मीयों का स्वामी बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सकलागम रहस्यवेदी और जिनाज्ञा मर्मवेदी बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो नित्य सुकृतानुमोदना एवं दुष्कृतर्गहा कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सर्वजीवों को समदृष्टि से देखनेवाला बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो १८ प्रकार के पापस्थानों को छोडाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सवि जीव करु शासनरसी की भावना भावित कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अप्रतिबद्ध बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो आंतरशत्रुओं को नाश करने के लिए हरपल सावधान उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो उपशमरस का उपासक बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सिद्धत्व का साधक बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो प्रेम की सुगंध फैलाकर स्नेह की सरगम बजाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो दिव्यदृष्टि का दान और प्रेरणा का अमृतपान कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो काया के नाम को भी अमरत्व प्रदान कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सत्यपक्ष का सदा पक्षपाती बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सर्व साधर्मिकों प्रति प्रेम-वात्सल्यवान् बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो आध्यात्मभाव में सदा निमग्न बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो प्रमाद रूप पर्वतों का हंमेशा चूरेचूरा करे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मति (बुद्धि) को तीक्ष्ण बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान

- जो श्रुतज्ञान को समृद्ध बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अवधिज्ञान की महिमा बढ़ाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मनःपर्यवज्ञान की महत्ता बढ़ाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो केवलज्ञान की सूक्ष्मता बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो दर्शनावरणीय कर्म से मुक्त कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो वेदनीय रूप शाता-अशाता का विभाग बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मोहनीय कर्म का नशा उतारे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो एकांत से शुभ आयुष्य बंधाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो तीर्थंकर नामकर्म तक ले जाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो उच्च गोत्र में जन्म दिलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- संपूर्ण अंतराय कर्मो का नाश करे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो षड्दर्शन की जानकारी दिलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो नवतत्त्वों के चिंतन में निपूणमति बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जीवविचार के द्वारा जगत् के सर्वजीवों का ज्ञान कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो लघुसंग्रहणी के द्वारा विश्व का किञ्चित् स्वरूप बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो दंडक द्वारा २४ द्वारों से ज्ञान बढ़ाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो प्रथम कर्मग्रंथ से कर्मो के भेदों को बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो द्वितीय कर्मग्रंथ से १४ गुणस्थानक समझाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो तृतीय कर्मग्रंथ से बंध कैसे होता है ? इत्यादि बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो चतुर्थ कर्मग्रंथ से कर्म का मर्म समझाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पंचम कर्मग्रंथ से १०० गाथा का रहस्यार्थ बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो षष्ठम (छठ्ठे) कर्मग्रंथ से ८ कर्मो के भांगे बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो क्षपकश्रेणी और उपशमश्रेणी पर मंडाण कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो बंध-उदय-उदिरणा-सत्ता का अस्तित्व बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो २४ तीर्थंकरों का जीवन बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान

ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
SRI MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA
Koba, Gandhinagar-382 009
Phone : (079) 23276252, 23276204-05

- जो गणधरों के उत्कृष्ट गुणों का ज्ञान कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो शुभ और अशुभ विपाकों का ज्ञान कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो गंभीर ऐसे नय / निक्षेपादि के भांगे बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो श्रमणोपासको के आचारादि व्यवस्था बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संयमी जीवन के आचार-विचार बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो क्रियावादी का मंडन और अक्रियावादी का खंडन करे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जैनदर्शन के मुख्य तत्त्वों का निरूपण करे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो द्वादशांगी और ६३ शलाकापुरूषों का निरूपण करे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो गौतमस्वामी के ३६००० प्रश्नों का उत्तर बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो आनंदादि १० महाश्रावकों की जीवनचर्या बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो उत्सर्ग एवं अपवाद का संतुलन बनाए रखे उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो खगोलीय सूर्य-चंद्रादि की भ्रमणकक्षा बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो शास्त्रीय रीत से ७ नरकों की व्यवस्था बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सुख में निमग्न ऐसे देवताओं का स्वरूप बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो ज्योतिष एवं निमित्तशास्त्रों का ज्ञान धराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो इन्द्रादि की उत्कृष्ट समृद्धि का स्वामी बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जीवों की १० प्रकार से अवस्था बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अंतिम समय में अनशन के भाव कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अरिहंतादि ४ शरणों का अस्तित्व बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पापों के प्रति आलोचना-प्रायश्चित्त के भाव जगाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो श्रावक के दैनिक ६ कर्तव्यों पर भार दिलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पर्युषण के ५ कर्तव्य बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो चातुर्मासिक ९ कर्तव्य बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो १३ प्रकार के मानसिक गुणों का विकास कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सर्व जीवों के साथ क्षमापना कराए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो आत्मकल्याण के तरफ ले जाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मृत्यु को महोत्सव बनाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पंचम आरे के अंत तक रहनेवाला उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो दशविध चक्रवाल समाचारी पलाए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो स्थितकल्प-अस्थितकल्प के भेद बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अरिहंत पद के १२ गुण बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो सिद्ध पद के ८/३१ गुण बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो आचार्य पद के ३६ गुण बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो उपाध्याय पद के २५ गुण बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो साधु पद के २७ गुण बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो दर्शन पद के ६७ गुण बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो ज्ञान पद के ५१ गुण बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो चारित्र पद के ७० गुण बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो तप पद के ५० गुण बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो जीव-तत्त्व के १४ भेद बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो अजीव तत्त्व के १४ भेद बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पुण्य तत्त्व के ४२ भेद बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो पाप तत्त्व के ८२ भेद बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो आश्रव तत्त्व के ४२ भेद बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो संवर तत्त्व के ५७ भेद बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो बंध तत्त्व के ४ भेद बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो निर्जरा तत्त्व के १२ भेद बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मोक्ष तत्त्व के १४ भेद बताए उसका नाम तत्त्वज्ञान
- जो मान रूपी पर्वत को भेदने में वज्र समान उसका नाम तत्त्वज्ञान

Printed By
NAVRANG
9428 500 401

Design By
Omkargraphics